

जैन साहित्य मे  
श्रीकृष्ण-चरित

श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री

प्राकृत भारती अकादमी. जयपुर,  
श्रीतारक गुरुजैन ग्रन्थालय उदयपुर

2823

श्रीकृष्ण का चरित वैदिक साहित्य परम्परा में विस्तार से निरूपित है। जैन साहित्य में भी इस युग पुरुष का गौरवपूर्ण स्थान है, परन्तु वैदिक परम्परा से कुछ भिन्न है। जैन परम्परा में श्रीकृष्ण एक श्लाघनीय पुरुष हैं। उनका जीवन भगवान् अरिष्टनेमि के सम्पर्क से अहिंसा की भावना से ओतप्रोत है वे वासुदेव है। एक सात्त्विक गृहस्थ हैं, अपने पुत्र पुत्रियों एवं धर्मपत्नियों को संयम-साधना की प्रेरणा देते हैं प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विद्वान् लेखक ने श्रीकृष्ण के जीवन चरित के विभिन्न पक्षों को प्राकृत आगम, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी जैन साहित्य में वर्णित प्रसंगों के आधार पर तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया है और नवीन एवं मौलिक तथा प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है।

मूल्य १००.००

# जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित

(प्रयाग द्वारा साहित्य महोपाध्याय उपाधि हेतु  
स्वीकृत शोध ग्रन्थ)

लेखक  
उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी  
के सुशिष्य  
श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री  
एम०ए०, साहित्यरत्न, साहित्य महोपाध्याय

संयोजक  
महोपाध्याय विनयसागर

प्रकाशक  
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर  
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर

\*प्रकाशक

**देवेन्द्रराज मेहता**

सचिव,

प्राकृत भारती अकादमी,

३८२६, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता,

जयपुर-३०२००३

\*

**सम्पत्ति लाल बोहरा**

अध्यक्ष,

श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय,

शास्त्री सर्कल

उदयपुर-३१३००१

\*प्रथम संस्करण १९९१

\*मूल्य-१०० रु०

\*मुद्रक

अमर कम्पोजिंग एजेंसी

शाहदरा दिल्ली-११००३२



## समर्पण



श्रद्धालोक के देवता परम पूजनीय सद्गुरुवर्य  
श्रमण संघ के उपाचार्य

श्री देवेन्द्र मुनि जी म०  
के

पावन कर-कमलों में  
सादर समर्पित

राजेन्द्र मुनि



## प्रकाशकीय

“जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित” पुस्तक प्राकृत भारती पुष्प ७६ के रूप में प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर एवं श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर के संयुक्त प्रकाशन में प्रकाशित करते हुए हमें आनन्दानुभूति हो रही है।

इस पुस्तक के लेखक श्रद्धेय उपाध्यायवर्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के पौत्र शिष्य उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज के शिष्य हैं। श्री राजेन्द्र मुनि जी एक अध्ययनशील एवं साहित्यरसिक हैं। नियमित रूप से साहित्य लेखन का भी कार्य करते रहे हैं। इनकी लगभग पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनका शोध प्रबंध है जिसे उन्होंने साहित्य महोपाध्याय के लिए प्रस्तुत किया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन—हिन्दी विश्वविद्यालय, प्रयाग ने इन्हे इस शोध प्रबंध पर साहित्य महोपाध्याय पद प्रदान किया था।

लेखक ने जैन साहित्य को आधार मानकर श्रीकृष्ण के संबंध में जो कुछ भी संदर्भ प्राप्त होते हैं उनका गहन परिश्रम पूर्वक संकलन कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। श्रीकृष्ण के साथ बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ का अनन्य संबंध होने के कारण भ० नेमिनाथ एवं उग्रसेन पुत्री राजीमती के संदर्भों का भी इसमें समावेश हो गया है।

लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक को आठ अध्यायों में विभक्त किया है जिसमें उन्होंने प्राकृत जैन आगम साहित्य, आगमेतर प्राकृत जैन साहित्य, संस्कृत, अपभ्रंश भाषा में रचित कृष्ण साहित्य, राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य एवं मुक्तक साहित्य में संदर्भित संदर्भों को प्रस्तुत करते हुए श्रीकृष्ण की महनीयता को सगौरव प्रतिष्ठापित एवं प्रतिपादित किया है। अन्त में प्रथम परिशिष्ट में भागवत पुराणादि के आधार पर वंश परिचय-तालिकाएँ एवं परिशिष्ट दो में राधा और राजीमती के संबंध में भी सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

जैन साहित्य में नौवें वासुदेव श्री कृष्ण का क्या स्थान है ? यह समझने के लिए प्रस्तुत पुस्तक अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगी, ऐसी हमारी मान्यता है ।

सम्पत्ति लाल बोहरा

अध्यक्ष

श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय,  
उदयपुर

देवेन्द्रराज मेहता

सचिव

प्राकृत भारती अकादमी,  
जयपुर



## लेखकीय

कर्मयोगी श्रीकृष्ण का पावन पुण्य स्मरण, उनकी मधुर स्मृतियाँ हमारे अन्त-मनिस को आनन्द विभोर कर देती हैं। वे युगपुरुष थे। उनका जीवन क्षीरसागर की तरह विराट् है। चाहे बाल्यकाल लें, चाहे युवावस्था लें, चाहे वृद्धावस्था लें सर्वत्र मधुरता है, कर्तव्यनिष्ठा है। चाहे जैन परम्परा हो, चाहे वैदिक परम्परा हो, चाहे बौद्ध परम्परा हो, सभी ने उस महापुरुष के गुणों का उत्कीर्तन किया है। सत्य है कि महापुरुषों की जीवन-गाथा देशातीत और कालातीत होती है। वे व्यष्टि नहीं समष्टि होते हैं। उनका चिन्तन और जीवन विशाल होता है। उसमें 'स्व' और 'पर' का भेद नहीं होता। वे सबके होते हैं और सब उनके होते हैं। यही कारण है कि वे जन्मगत कुल-परम्परा से ऊपर उठकर 'वसुधैव कुटुम्बक' के परिचायक बन जाते हैं। उनका जीवन सीमातीत होता है। वे सभी के लिए आदर्श होते हैं। उनकी जीवन गाथाओं को लिपिबद्ध करने का एक मात्र यही उद्देश्य होता है कि उनके उदात्त जीवन से मानव प्रेरणा प्राप्त करे।

श्रीकृष्ण के जीवन के विविध-प्रसंग वैदिक परम्परा के साहित्य में विस्तार से चर्चित हैं। उनके बाल्यकाल को लेकर विपुल साहित्य निमित्त हुआ है। उनकी युवा-वस्था और रास लीला को लेकर विधि कवियों ने कमनीय कल्पना की तुलिका से उनका चित्रण किया है। वे राजनीति-विशारद हैं। महाभारत के युद्ध को टालने के लिए शान्तिदूत बनकर जो उन्होंने प्रयास किये, वे आज भी प्रेरणाप्रद हैं। श्रीकृष्ण वैदिक परम्परा में विष्णु के अवतार के रूप में रहे हैं। पूर्ण कला का उनके जीवन में विकास हुआ है। वैदिक परम्परा के श्री कृष्ण के रूप से जन-मानस अली-भाँति परिचित है।

जैन साहित्य में भी श्रीकृष्ण का निरूपण है। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। मेरे पूज्य गुरुदेव उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने 'भगवान् अरिष्टनेमि और कर्म-योगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन' ग्रन्थ में विस्तार के साथ सर्व प्रथम प्रकाश डाला। तब जन-मानस को ज्ञात हुआ कि जैन परम्परा में श्रीकृष्ण का गौरव पूर्ण स्थान है। साहित्यरत्न परीक्षा के पश्चात् जब महोपाध्याय परीक्षा देने हेतु विचार उद्बुद्ध हुआ तो मैंने जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित्र पर शोध का कार्य प्रारम्भ किया। और, ज्यों-

ज्यों शोध करता गया त्यों-त्यों मुझे कई अज्ञात अभिनव ग्रन्थ भी प्राप्त हुए; जिन्हें पढ़कर मेरा मन मयूर नाच उठा और हृदय कमल खिल उठा ।

यह स्मरणीय है कि वैदिक परम्परा के श्रीकृष्ण का जो रूप है उससे जैन परम्परा के श्रीकृष्ण का रूप कुछ पृथक् है । जैन परम्परा में श्रीकृष्ण एक श्लाघनीय पुरुष हैं । भगवान महावीर ने उन्हें उत्तम पुरुष कहा है । प्रारम्भ से लेकर जीवन की सान्ध्य वेला तक किसी भी प्रकार की स्खलना उनके जीवन में नहीं है । भगवान अरिष्टनेमि के सम्पर्क में आकर उनका जीवन अहिंसा की भावना से ओत-प्रोत है । मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन में शिकार आदि का प्रसंग देखने को मिलता है पर श्रीकृष्ण के जीवन में ऐसा कोई प्रसंग नहीं है । वासुदेव होने के कारण उन्हें ३६० संग्राम करने पड़ते हैं, पर वे युद्ध प्रेमी नहीं हैं । वे सदा ही युद्ध को टालने का प्रयास करते रहे हैं । उन्होंने कभी भी मांसाहार किया ही ऐसा प्रसंग नहीं मिलता । वे पूर्ण शाकाहारी थे । वासुदेव होने के कारण विविध सुन्दरियों के साथ विवाह उन्होंने अवश्य किया था, पर वे भोग को श्रेष्ठ नहीं मानते थे । उन्होंने अपने पुत्र-पुत्रियों व धर्मपत्नियों को संयम-साधना ग्रहण करने की प्रेरणा दी थी । जो संयम-साधना स्वीकार करते थे उन्हें वे पूर्ण सहयोग प्रदान करते । वे पूर्ण गुणानुरागी हैं । किसी के भी दुर्गुण देखना उन्हें पसन्द नहीं है । उन्होंने कुत्ते के चमचमाते हुए दांतों को देखकर प्रसन्नता व्यक्त की, किन्तु कीड़ों से कुलबुलाते हुए तन की ओर उनका ध्यान नहीं गया और न भयंकर दुर्गन्ध की ओर ही उन्होंने ध्यान दिया । उनका जीवन परोपकार से मण्डित है । लड़खड़ाते हुए वृद्ध की दयनीय स्थिति देखकर उनका हृदय कण्ठा से आप्लावित हो उठा और उन्होंने स्वयं ईंट उठाकर एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया । अर्धचक्री होने पर भी उनके अन्तर्मानस में मातृभक्ति अत्यन्त प्रबल है । वे माँ को नमस्कार करते हैं और माँ की व्यथा को दूर करने के लिए साधना भी करते हैं । उनका सम्पूर्ण जीवन प्रकाश-स्तम्भ की तरह प्रकाशित है । भूले भटके जीवन-राहियों का मार्ग-दर्शन देता है ।

मैंने अपने शोध-प्रबन्ध में जैन प्राकृत आगम साहित्य में, प्राकृत आगमेतर साहित्य में, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी जैन साहित्य में श्रीकृष्ण का चरित्र जहाँ-जहाँ आया है, उन सभी ग्रन्थों का तुलनात्मक दृष्टि से परिचय भी दिया है । कुछ ऐसे तथ्य भी प्रस्तुत किये हैं जो सर्वथा नवीन और मौलिक हैं ।

शोध-प्रबन्ध लिखने में परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म० और गुरुदेव उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म० का सतत सहयोग तथा मार्ग-दर्शन मुझे मिला है । पूना के डा० न० चि० जोगलेकर जी निदेशक ने भी मुझे समय-समय पर सहयोग प्रदान किया है । पूजनीया मातेश्वरी महासती श्री प्रकाशवती जी म० तथा ज्येष्ठ बन्धु श्री रमेश मुनि जी, श्री सुरेन्द्र मुनि व डॉ०

साध्वी दिव्यप्रभाजी का हार्दिक सहयोग भी मेरे साहित्य-लेखन के लिए सम्बल रूप रहा है ।

प्राकृत भारती अकादमी के सचिव श्री देवेन्द्रराज जी सा० मेहता का आग्रह रहा कि प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन प्राकृत भारती के द्वारा हो । उनके स्नेह भरे आग्रह को सम्मान देकर प्रकाशन किया जा रहा है । प्रतिभामूर्ति महोपाध्याय विनयसागर जी ने बहुत ही श्रम से ग्रन्थ का प्रूफ संशोधन कर ग्रन्थ को सर्वाधिक सुन्दर बनाने का प्रयास किया है, अतः उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ । ग्रन्थ का अधिकाधिक प्रचार हो इस दृष्टि से श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर का सहयोग भी इसके प्रकाशन में रहा है ।

ज्ञात और अज्ञात रूप में जिन-जिन के ग्रन्थों का तथा लेखों का मैंने उपयोग किया है उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है यह शोध प्रबन्ध प्रबुद्ध पाठकों को रुचिकर लगेगा । जैन साहित्यकार विराट् और उदात्त विचारों के धनी थे । उन्होंने विपुल परिमाण में विविध भाषाओं और विविध विषयों में साहित्य का सृजन किया है । सम्प्रदायवाद, प्रान्तवाद और भाषावाद से ऊपर उठकर सत्य तथ्य को उजागर किया है । ऐसे उन सभी प्राचीन साहित्यकारों का मैं उपकृत हूँ । मैं आशा करता हूँ यह ग्रन्थ शोधार्थियों के लिए मील के पत्थर की तरह उपयोगी होगा ।

जैन स्थानक

पाली, ५ जनवरी १९९१

राजेन्द्र मुनि 'शास्त्री'

## प्रस्तावना

विश्व में अनन्त प्राणी हैं। इन अनन्त प्राणियों में मनुष्य भी एक प्राणी है किन्तु मनुष्य इन सब प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि वह बुद्धिमान/विवेकमान है। विवेक या बुद्धि अन्य प्राणियों के पास नहीं है। यही एक तत्त्व ऐसा है जो मनुष्य को अन्य समस्त प्राणियों से अलग करता है और श्रेष्ठता प्रदान करता है, परन्तु सब मनुष्य भी समान नहीं होते। बौद्धिक दृष्टिकोण से कुछ मनुष्य उच्चकोटि के विद्वान् होते हैं, कुछ औसत बुद्धि वाले होते हैं और कुछ मन्द बुद्धि वाले होते हैं। क्षमता के अनुसार भी मनुष्यों का वर्गीकरण किया जा सकता है। वर्गीकरण में शास्त्रीय दृष्टिकोण की बातें करते हैं तो स्थानांगसूत्र के पुरुषजात-सूत्र के अनुसार—

“पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—नाम पुरुष, स्थापना पुरुष और द्रव्य पुरुष। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञान पुरुष, वेद पुरुष और चारित्र्य पुरुष। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—वेद पुरुष, चिन्ह पुरुष और अभिलाष पुरुष। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और जघन्य पुरुष। उत्तम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—धर्म पुरुष (अरहन्त), भोग पुरुष (चक्रवर्ती) और कर्मपुरुष (वासुदेव)। मध्यम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—उग्र, भोग और राजन्य। जघन्य पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—दास, भूतक और भागीदार।”

उपर्युक्त वर्गीकरण में प्रायः सभी प्रकार के पुरुष आ जाते हैं। अरहन्त—तीर्थंकर धर्मपुरुष के अन्तर्गत हैं, चक्रवर्ती भोग पुरुष हैं और वासुदेव कर्मपुरुष हैं। वैदिक परम्परा में ‘वासुदेव’ श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त होता है—वासुदेव के पुत्र होने से वासुदेव। किन्तु, जैन परम्परा में वासुदेव भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है।

स्थानांगसूत्र के ऋद्धिमत् सूत्र के अनुसार ऋद्धिमान अर्थात् वैभवशाली/ऐश्वर्यशाली मनुष्य पांच प्रकार के बताए गये हैं, यथा—

१. अरहन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव, ४. वासुदेव और ५. अणगार।

समवायांग सूत्र के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव और ६ वासुदेव हुए और आगामी उत्सर्पिणी काल में भी २४



तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव और ६ वासुदेव होंगे । सन्दर्भित ग्रन्थ में इनके नामों का भी उल्लेख किया गया है । इस प्रकार प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में ५४-५४ महापुरुष होते हैं । इन चौपन महापुरुषों का विस्तृत विवरण जैन साहित्य में पाया जाता है । आचार्य शीलांक ने तो इन महापुरुषों की संख्या पर आधृत 'चउपन्न महापुरिस चरिय' की रचना भी की है । यदि इस चौपन की संख्या में नौ प्रति वासुदेवों की संख्या और जोड़ दी जावे तो महापुरुषों की यह संख्या तिरसठ हो जाती है और इस आधार पर 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित्र' नामक ग्रन्थ की रचना हुई ।

श्रीकृष्ण नौवें और अन्तिम वासुदेव हुए तथा वे बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के समय हुए । दोनों एक ही परिवार में हुए । अरिष्टनेमि के पिता समुद्र-विजय और श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव—दोनों भाई थे । श्रीकृष्ण महाभारत और जैन परम्परा के ग्रन्थों में पाण्डवों के सहायक के रूप में हमारे सामने आते हैं । उनका व्यक्तित्व अतिविराट् था, अलौकिक था । उनके इस अलौकिक व्यक्तित्व का जितना वर्णन महाभारत में हुआ है, उतना जैन ग्रन्थों में नहीं हुआ है । युद्ध रोकने के लिए जब श्रीकृष्ण शान्तिदूत बनकर कौरवों की सभा में हस्तिनापुर जाते हैं, तो प्रसंगानुसार वे वहां अपने विराट् रूप का प्रदर्शन करते हैं । ऐसे विराट् रूप का वर्णन जैन ग्रन्थों में नहीं किया गया है । उनके अन्य रूपों/गुणों का वर्णन लगभग समान रूप से जैन ग्रन्थों में पाया जाता है ।

जैन ग्रन्थों के अनुसार वे गुण-सम्पन्न और सदाचार-निष्ठ थे, अत्यन्त ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी महापुरुष थे । उन्हें ओघबली, अतिबली, महाबली, अप्रतिहत और अपराजित कहा गया है । उनके शरीर में अपार बल था । वे महारत्न वज्र को भी चुटकी से पीस डालते थे ।<sup>१</sup>

श्रीकृष्ण के बाह्य व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए साहित्य मनीषी उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री<sup>२</sup> ने लिखा है कि श्रीकृष्ण का शरीर मान, उन्मान और प्रमाण पूरा, सुजात और सर्वांग सुन्दर था । वे लक्षणों, व्यंजनों और गुणों से युक्त थे । उनका शरीर दस धनुष लम्बा था । देखने में बड़े ही कान्त, सौम्य, सुभग-स्वरूप और अत्यन्त प्रियदर्शी थे । वे प्रगल्भ धीर और विनयी थे । सुखशील होने पर भी उनके पास आलस्य फटकता नहीं था ।

उनकी वाणी गम्भीर, मधुर और प्रतिपूर्ण थी । उनका निनाद क्रीच पक्षी के घोष, शरद् ऋतु की मेघध्वनि और दुन्दुभि की तरह मधुर व गम्भीर था । वे सत्यवादी थे ।

उनकी चाल मदमत्त श्रेष्ठ गजेन्द्र की तरह ललित थी । वे पीले रंग के कौशेय

१. भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण पृ० १६२

२. वही, पृ० १६३

वस्त्र पहना करते थे। उनके मुकुट में उत्तम धवल, शुक्ल, निर्मल कौस्तुभ मणि लगी रहती थी। उनके कान में कुण्डल, वक्षस्थल पर एकावली हार लटकता रहता था। उनके श्रीवत्स का लांछन था। वे सुगन्धित पुष्पों की माला धारण किया करते थे।

वे अपने हाथ में धनुष धारण करते थे, वे दुर्धर धनुर्धर थे। उनके धनुष की टंकार बड़ी ही उद्घोषणकर होती थी। वे शख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते थे। ऊंची गरुड़ ध्वजा के धारक थे।

वे शत्रुओं के मद को मर्दन करने वाले, युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने वाले अजित और अजितरथ थे। एतदर्थ वे महारथा भी कहलाते थे।

श्रीकृष्ण के अद्वितीय बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का दिग्दर्शन ज्ञाता-सूत्र के १६वें अध्ययन में होता है। यह विवरण उनके अमरकंका गमन के सन्दर्भ में है, जहां वे द्रौपदी के उद्धार के लिए जाते हैं। उनके अमरकंका जाने का प्रसंग जैन इतिहास में एक आश्चर्य के रूप में माना जाता है।

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व बहु आयामी था। वे एक समाज सुधारक थे, तो एक राजनीतिज्ञ/कूटनीतिज्ञ भी थे। वे कर्मयोगी थे, तो एक कुशल सेनापति और सारथी भी थे। वे शान्ति के अग्रदूत थे, तो युद्ध में पीछे हटने वाले भी नहीं थे। वे गोपालक थे, कुशल निर्माता थे, संगीतज्ञ (बांसुरी वादक) थे और एक श्रेष्ठ उपदेशक/दार्शनिक भी थे। समाज सुधारक के रूप में उन्होंने उन दिनों प्रचलित अन्धविश्वास और थोथी रूढ़ियों का विरोध कर नवीन मान्यताओं की स्थापना की थी। युद्ध को टालने और समस्या का शान्तिमय समाधान करने के लिए उन्होंने अन्तिम समय तक प्रयास किया था, किन्तु जब युद्ध करना पड़ा तो वे अर्जुन के सारथी के रूप में प्रस्तुत हुए। युद्ध के मैदान में जब अर्जुन ने अपने सम्मुख अपने ही बन्धु-बांधवों को देखा तो वह युद्ध विमुख हो गया। इस अवसर पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो सारगर्भित उपदेश दिया वह एक अनुपम ग्रन्थ 'गीता' के रूप में आज सर्वत्र उपलब्ध है। श्रीकृष्ण ने इस ग्रन्थ में आत्मा की अजर-अमरता और निष्काम कर्म का प्रतिपादन करते हुए अर्जुन की प्रत्येक शंका का समाधान कर उसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए तैयार किया था।

गीता में आत्मा तथा कर्म विषयक जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं, वे करीब-करीब जैन मान्यताओं के सदृश ही हैं। आत्मा की अजर-अमरता जैन दर्शन भी स्वीकार करता है और कर्मों के अनुसार फल प्राप्ति की बात को भी। परन्तु अवतारवाद जैन दर्शन को मान्य नहीं है, जैसा कि गीता में बताया गया है कि 'जब-जब धर्म की हानि होगी मैं जन्म लूंगा।' 'मैं' का तात्पर्य यहां श्रीकृष्ण रूपी भगवान से है। जैसा कि सर्व विदित है श्रीकृष्ण को वैदिक परम्परा में भगवान विष्णु का अवतार माना गया है। यहां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि महाभारत की पूरी

कथा भी श्रीकृष्ण के आसपास घूमती है। श्रीकृष्ण के अभाव में महाभारत का विवरण शून्य-सा प्रतीत होता है। इस प्रकार वे महाभारत की कथा के की-मैन (Key-Men) हैं। इस कथा के सब सूत्र उनके हाथ में रहते हैं। लेकिन इतना होते हुए भी वे इस युद्ध को टाल नहीं सके। शायद वे भी इस बात को जानते थे।

श्रीकृष्ण के जीवन के अनेक रोचक प्रसंग भी हैं। उनका चंचल बालपन विख्यात है। यौवन-कालीन प्रसंग भी महत्वपूर्ण है। उन सबसे मिलकर उनका समस्त व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक बन गया है।

द्वारिका नगरी का और श्रीकृष्ण का गहरा सम्बन्ध है। आज भी समुद्र में द्वारिका की खोज की जा रही है। उसके कुछ अवशेष मिलने के भी समाचार हैं। द्वारिका की खोज करने वाले विद्वानों को चाहिए कि इसकी खोज जैन साहित्य के सन्दर्भ में भी करने का प्रयास करें। कारण कि जैन साहित्य में भी द्वारिका का विस्तार से वर्णन उपलब्ध होता है। श्रीकृष्ण के पूर्व जो द्वारिका थी, वह समुद्र में डूबी हुई थी, उसी स्थान पर श्रीकृष्ण के लिए द्वारिका का निर्माण किया गया था। अस्तु, इस दिशा में कुछ रचनात्मक कार्य करने की अपेक्षा है, जिससे वास्तविकता का पता चल सके।

श्रीकृष्ण पर बहुत कुछ लिखा गया है। काल-क्रमानुसार प्रचलित भाषाओं में विद्वानों ने श्रीकृष्ण के चरित्र पर अपनी लेखनी चलाई है। श्रीकृष्ण पर स्वतन्त्ररूप से तो लिखा ही गया, साथ ही कौरव-पांडवों पर जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसमें भी श्रीकृष्ण पर लिखा गया है। कौरव-पांडव गाथा में श्रीकृष्ण की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण विषयक विवरण लोक-साहित्य में भी मिलता है, किन्तु समग्र लोक-साहित्य को संकलित कर पाना बड़ा कठिन कार्य है। आज भी अनेक ऐसे लोक-गीत/लोक-कथाएँ हैं जो संकलन से बाहर हैं। श्रीकृष्ण विषयक लोक-साहित्य का संकलन और अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। सम्बन्धित विद्वानों को इस दिशा में प्रयास करना चाहिए।

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व जितना आकर्षक था, उतना ही व्यापक उनका प्रभाव भी था। लगभग सभी धर्मों के विद्वानों ने उन पर अपनी कलम चलाई है। जैन धर्म में भी श्रीकृष्ण को महत्व दिया गया है, किन्तु जिस रूप में हिंदू धर्म में उनका स्थान है, उस रूप में नहीं। जैन धर्म के विद्वानों ने श्रीकृष्ण विषयक साहित्य की भरपूर रचना की, जो आज हमारी अमूल्य धरोहर है। इस प्रकार के समग्र साहित्य को एक स्थान पर संकलित करना बड़ा कठिन कार्य है। यह कार्य सम्पन्न किया है, साहित्य वाचस्पति धर्मणसंघीय उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म० सा० शास्त्री के सुयोग्य शिष्य-रत्न श्री राजेन्द्र मुनि जी ने। श्री राजेन्द्र मुनि जी ने कठोर परिश्रम करके 'जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित' नामक इस ग्रन्थ की रचना की है, जो उनकी अध्ययन-शीलता का प्रतीक है। प्रस्तुत ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

‘जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित’ नामक इस ग्रन्थ की रचना नौ अध्यायों में की गई है।

प्रथम अध्याय में शोध की अनुकूलता बताई गई है और प्रतिपाद्य विषय का परिचय दिया गया है। इसमें आपने विषय की व्यापकता को स्वीकार करते हुए इस विषय को शोध के अनुकूल बताया है।

द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण विषय पर प्राकृत जैन आगम साहित्य का परिचय दिया गया है। इस अध्याय के प्रारम्भ में आगम शब्द की परिभाषा करते हुए आगम के पर्यायवाची शब्दों पर प्रकाश डाला है। इसके पश्चात् आगम साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इनमें उन स्थलों की ओर भी संकेत किया गया है, जहां श्री कृष्ण विषयक विवरण आया है।

तृतीय अध्याय में प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य का बिन्दुवार परिचय दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय में श्रीकृष्ण से सम्बन्धित संस्कृत जैन साहित्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें काव्यों और महाकाव्यों का विस्तार से परिचय देने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय में अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण साहित्य का विवरण है। षष्ठ अध्याय में प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत तथा हिन्दी पर आधारित जैन श्रीकृष्ण कथा का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह अध्याय काफी समृद्ध है और विषय विवेचन भी यथेष्ट रीत्यनुसार किया गया है।

सप्तम अध्याय में हिन्दी और जैन श्रीकृष्ण रास-पुराण साहित्य व अन्य साहित्य का परिचय दिया गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत समाहित साहित्य की विस्तार से चर्चा भी की गई है। आठवें अध्याय में हिन्दी जैन श्रीकृष्ण मुक्तक साहित्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार ‘जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित’ नामक इस शोध प्रबन्ध के उपर्युक्त आठ अध्यायों में श्रीकृष्ण विषयक जैन परम्परा में रचित समस्त ज्ञात साहित्य का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह मुनिश्री का श्लाघनीय कार्य है। श्रीकृष्ण पर शोध करने वाले अध्येताओं के लिए यह ग्रन्थ अत्यधिक सहायता प्रदान करने वाला सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसी प्रकार के अन्य परम्पराओं में रचित साहित्य पर भी यदि कार्य किया जाता है तो वह उपयोगी होगा और समस्त भारतीय परम्पराओं में श्रीकृष्ण पर उपलब्ध सामग्री एक स्थान पर एकत्र हो सकेगी। श्रीकृष्ण के विषय में विदेशी विद्वानों ने भी जो कुछ लिखा है, यदि उसे भी इस प्रकार के साहित्य के साथ जोड़ लिया जाये तो वह भी उपयोगी होगा।



प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अन्तिम नौवां अध्याय है, तुलनात्मक निष्कर्ष, तथ्य एवं उपसंहार । प्रारम्भ के आठ अध्यायों में तो मुनिश्री ने श्रीकृष्ण विषयक जैन परम्परा के उपलब्ध साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया है, किन्तु इस अन्तिम अध्याय में आपने अपने अध्ययन का निचोड़ प्रस्तुत किया है जो इस शोध प्रबन्ध का महत्वपूर्ण भाग है । इस अध्याय का एक महत्वपूर्ण भाग वैदिक परम्परा और जैन परम्परा में श्रीकृष्ण कथा का तुलनात्मक विवेचन भी है । तुलनात्मक अध्ययन से अनेक महत्वपूर्ण बिन्दुओं का समाधान तो होता ही है, अन्तर का भी ज्ञान हो जाता है, साथ ही मान्यता भेद भी स्पष्ट हो जाता है ।

इस पुस्तक के पूर्व मुनिश्री की और भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं; जिनमें उनकी विद्वत्ता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है । उसी कड़ी में यह शोध प्रबन्ध मुनिश्री को एक गम्भीर अध्येता के रूप में प्रस्तुत करता है । मैं कामना करती हूँ कि मुनिश्री की लेखनी निरन्तर प्रवहमान रहे और वे इसी प्रकार उच्च कोटि के ग्रन्थ-रत्न मां भारती के भण्डार की अभिवृद्धि के लिए प्रस्तुत करते रहें ।

उज्ज्वल भविष्य की कामनाओं के साथ ।

**जैन साध्वी डॉ० दिव्यप्रभा**  
एम० ए०, पी-एच० डी०

## विषयानुक्रमणिका

अध्याय	नाम	पृष्ठांक
१.	विषय की शोधानुकूलता और भूमिका	१-८
२.	प्राकृत जैन आगम—श्रीकृष्ण साहित्य	९-२१
३.	प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य	२२-३७
४.	संस्कृत जैन श्रीकृष्ण साहित्य	३८-१११
५.	अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण साहित्य	११२-१२९
६.	प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत तथा अन्य (हिन्दी) पर आधारित जैन श्रीकृष्ण कथा का विवेचन	१३०-१८७
७.	हिन्दी जैन श्रीकृष्ण रास, पुराण साहित्य और अन्य	१८८-२२३
८.	हिन्दी जैन श्रीकृष्ण मुक्तक साहित्य	२२४-२४७
९.	तुलनात्मक निष्कर्ष, तथ्य एवं उपसंहार	२४८-२६८
	परिशिष्ट-१	२६९-२७७
	वंश-परिचय तालिकायें	
	परिशिष्ट-२	२७८-२८७
	राधा और राजीमती	
	सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची	२८८-२९६

## विषय की शोधानुकूलता और भूमिका

### विषय की शोधानुकूलता

श्रीकृष्ण “वासुदेव” विश्व की महानतम विभूतियों में अग्रगण्य हैं। साहित्य जीवन की समस्त गतिविधियों, स्वरूपों और प्रवृत्तियों का दर्पण होता है। साहित्य ही समाज, संस्कृति, दर्शन और आदर्शों का सफल वाहक होता है। ऐसी स्थिति में किसी विभूति के वर्चस्व कसौटी पर श्रीकृष्णचरित सौ-फीसदी खरा सिद्ध होता है। इस देश में साहित्य की अत्यन्त प्राचीन और अति समृद्ध परम्परा रही है। श्रीकृष्ण इस परम्परा में आद्योपांत विद्यमान हैं। वैदिक साहित्य से लेकर अधुनातन साहित्य तक की इस विषय यात्रा में हमारा साहित्य सदा गतिमान रहा है। इस यात्रा में अनेक मोड़ आए, अगणित पड़ाव आए। प्रत्येक मोड़ और प्रत्येक पड़ाव में हमें श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं। भारतीय वाङ्मय का स्वरूप बदल गया, कथ्य और प्रमुख लक्ष्यों में परिवर्तन होते गए। काव्यरूप और कलेवर बिगड़ते बनते गए, भाषाओं के माध्यम नव-नवीन होते चले गए किन्तु कृष्ण-चरित्र की परंपरा अखिलित और अक्षुण्ण बनी रही है।

वेदों में व इतर संस्कृत साहित्य में पिंगल, अपभ्रंश और ब्रज आदि सभी भाषाओं में श्रीकृष्ण संबंधी विपुल साहित्य रचा गया है। यह तथ्य इस बात का प्रबल द्योतक है कि भारत का जन-जीवन कितना कृष्णमय है। लोक जीवन पर श्रीकृष्ण का प्रभाव अत्यन्त गहन रूप में अंकित हैं—इसका प्रमाण हमारा लोक साहित्य है। भारत के लोक जीवन और भारतीय संस्कृति को जितनी दूर तक श्रीकृष्ण चरित प्रभावित कर पाया है, कदाचित् उतना प्रभाव किसी अन्य दिशा से ग्रहण नहीं किया जा सकता। समस्त प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य श्रीकृष्ण के रंग से रंजित है। श्रीकृष्ण के आदर्शों,

नीतियों और आचरण में एक-रसता है, एक आकर्षण है, एक समाजोपयोगिता है। श्रीकृष्ण चरित्र की लोकप्रियता के मूल में यही बातें प्रमुख रूप से हैं।

भारत में वैदिक मान्यताओं के अतिरिक्त अन्य भी नाना प्रकार के मत, विश्वास, पंथ और आध्यात्मिक सिद्धांत अस्तित्व में रहे हैं और आज भी हैं। इनमें से अधिकांश ने अपने-अपने ढंग में अपने-अपने आदर्शों के अनुरूप श्रीकृष्ण चरित्र को महत्व प्रदान किया है। उदाहरण के लिए बौद्ध धार्मिक साहित्य में भी श्रीकृष्ण चरित्र अपने विशिष्ट रूप में मिलता है। पर, मेरे अध्ययन का यह विषय नहीं है।

जैन श्रीकृष्ण साहित्य अपनी परम्पराओं से अनेक दृष्टियों में विशिष्ट कोटि का माना जा सकता है। भारतीय वाङ्मय की विशद यात्रा के सहचर के रूप में जैन साहित्य का अति गरिमायुक्त स्थान है। संस्कृत साहित्य अपनी श्री और समृद्धि के लिए निश्चय ही अद्भुत महत्व रखता है, किंतु इसके साथ ही यह भी एक तथ्य है कि जैन साहित्य ने संस्कृत साहित्य की श्री एवं समृद्धि की वृद्धि में उल्लेखनीय योगदान दिया है। जैन संस्कृत साहित्य की अपनी निराली ही छवि है और उससे समग्र संस्कृत वाङ्मय को एक अद्भुत निखार मिला है। इसके पश्चात् भी साहित्य के प्रत्येक मोड़ पर हमें जैन साहित्य की महत्ता के दर्शन होते हैं। अपने इस विशाल साहित्य भंडार में जैन साहित्य ने श्रीकृष्ण चरित्र को जिस प्रकार सहेज कर रखा है उससे स्वयं उसकी भी गरिमा अभिवर्धित हुई है।

### श्रीकृष्ण का विभूतिमत्त्व

यह अति सामान्य सी धारणा है कि श्रीकृष्ण वैदिक परंपरा की विभूति है और वैदिक साहित्य में ही श्रीकृष्ण के चरित्र को स्थान प्राप्त हुआ है। वास्तविकता इससे भिन्न है। जैन साहित्य को इस यथार्थ के प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमें श्रीकृष्ण चरित्र को अत्यन्त महत्व और विपुलता के साथ ग्रहण किया गया है।

जैन श्रीकृष्ण साहित्य की समग्र निधि पूरे जैन साहित्य में एक बड़ा अंश व्याप लेती है। मेरे शोध अध्ययन का एक हेतु इस जैन श्रीकृष्ण साहित्य का अनुशीलन करना है।

यह भी प्रमुख रूप से ध्यातव्य है कि जैन साहित्य ने एक अनूठे ढंग से ही श्रीकृष्ण चरित्र को अपनाया है। श्रीकृष्ण का स्वरूप जैन आदर्शों एवं मान्य-



ताओं के अनुरूप है। वैदिक परम्परा में श्रीकृष्ण का जो स्वरूप है, जैन साहित्य में उसकी ही अनुकृति मिलती होगी यह कल्पना भ्रांति ही सिद्ध होगी। श्रीकृष्ण चरित को जैन वाङ्मय में जिस प्रकार स्थान प्राप्त हुआ है, उसकी गौरवगाथा निराली ही है। जैन वाङ्मय का आदि रूप आगम ग्रन्थ है। इन आगम ग्रन्थों से ही किसी न किसी रूप में श्रीकृष्ण चरित का चित्रण आरम्भ हो गया था।

### नेमिनाथ और श्रीकृष्ण

२२ वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के समकालीन श्रीकृष्ण रहे हैं। श्रीकृष्ण के ताऊ समुद्रविजय जी के आत्मज ही भगवान् अरिष्टनेमि थे। इनके पश्चात् २३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ हुए। तब कालान्तर में इस अवसर्पिणी काल के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी का उद्भव हुआ। भगवान् महावीर स्वामी अपने धर्म की शिक्षाओं और सिद्धांतों का प्रचार अद्भुत रीति से किया करते थे। धार्मिक सिद्धांतों के प्रतिपादन के प्रयत्न में वे उनके समर्थन में वे तत्कालीन प्रचलन प्राप्त लोकाख्यानों का आश्रय लेते थे। इस प्रकार भगवान् के प्रवचनों में श्रीकृष्ण जीवन के प्रसंग भी उतर आए।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि भगवान् के लिए श्रीकृष्ण प्रसंग का कभी भी लक्ष्य नहीं रहा, ये प्रसंग तो साधन स्वरूप स्वीकार किए गए थे, और उनका साध्य तो जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन और प्रचार ही था, यही साध्य था। साधना का स्वरूप साध्यानुकूल ही होता है। अस्तु, श्रीकृष्ण चरित का ऐसा स्वरूप उभरा जो कि जैन धर्म के आदर्शों, नीतियों और सिद्धांतों के अनुरूप था। भगवान् के उपदेशों को लेखबद्ध और विशेष क्रम युक्त करने के सुनियोजित प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप जैनागम ग्रन्थ अस्तित्व में आए। आगमों के आदर्शानुरूप ही आगमेतर जैन साहित्य विकसित होता चला गया। परिणामतः समग्र जैन साहित्य श्रीकृष्णमय हो गया। जैन आगमेतर श्रीकृष्ण साहित्य में भी मेरे शोध विषय की सामग्री आ गयी है।

जैसा कि संकेतित किया गया है श्रीकृष्णचरित को एक विशिष्ट स्वरूप में जैन साहित्य के द्वारा ग्रहण किया गया है, तो यह जिज्ञासा भी बड़ी सहज और स्वाभाविक प्रतीत होती है कि वह विशिष्ट स्वरूप कौन सा है? जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित की क्या विशेषताएँ हैं? और वह वैदिक परंपरा के श्रीकृष्ण चरित से किस प्रकार भिन्न है? इस जिज्ञासा की तुष्टि अन्वेषण,

गवेषण और शोध की अपेक्षा रखती है और यह अपेक्षा भी प्रस्तुत शोध कार्य के मूल में एक सबल प्रेरणा रही है।

वस्तुतः जैन साहित्य में श्रीकृष्ण के चरितगत वैशिष्ट्य और उनका वैदिक श्रीकृष्ण की चारित्रिक विशेषताओं के साथ आपेक्षिक अध्ययन गवेषणा का एक व्यापक पट प्रस्तुत कर देता है। इन शोधों के परिणाम-स्वरूप श्रीकृष्ण चरित के विभिन्न आयाम तो प्रकाशित हुए ही हैं, साथ ही जैन धर्म के अनेक मूल सिद्धांतों को भी पुनर्बल प्राप्त हुआ है जो इन विशेषताओं के मूल में रहे हैं और जिनकी अनुरूपता में श्रीकृष्ण चरित के इस नव्य रूप को आकार प्राप्त हुआ है। निःसंदेह जैन साहित्य के श्रीकृष्ण जैन मान्यताओं के धरातल पर अवस्थित परम शक्तिशाली महापुरुष हैं और वैदिक मान्यताओं से भिन्न स्वरूप के वाहक हैं।

वैदिक परंपरा में श्रीकृष्ण को “वासुदेव” कहा गया है। जैन परंपरा में भी वे वासुदेव हैं। किन्तु, श्रीकृष्ण के साथ संयुक्त किए गए इस अपर नाम का प्रयोजन दोनों मान्यताओं में भिन्न-भिन्न रहा है। वासुदेव के पुत्र होने के नाते श्रीकृष्ण वैदिक परम्परा में वासुदेव कहलाते हैं। इसके विपरीत जैन परम्परा में श्रीकृष्ण को एक विशेष प्रयोजन से वासुदेव कहा जाता है। वासुदेव इस मान्यता में किसी व्यक्ति विशेष के नाम के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। यहाँ यह श्रीकृष्ण के लिए एक पद है। वासुदेव जातिवाचक संज्ञा है। वासुदेव एक वर्ग विशेष अथवा श्रेणी विशेष है। वैदिक परंपरा में अकेले श्रीकृष्ण को वासुदेव कहा गया है जबकि जैन परम्परा में वासुदेवों की एक परंपरा रही है—जैसे तीर्थंकरों की एक परंपरा है। वासुदेवों की इस परंपरा में श्रीकृष्ण अन्तिम अर्थात् ९वें वासुदेव हैं। स्पष्ट है कि इनके पूर्व भी ८ अन्य महापुरुषों को वासुदेव होने का गौरव प्राप्त हो चुका है। जैसे लक्ष्मण वासुदेव इत्यादि।

यहाँ सहज ही यह जिज्ञासा पुनः बलवती हो जाती है कि यदि वासुदेव कोई पद अथवा वर्ग या श्रेणी विशेष है तो इस वर्ग या श्रेणी की क्या विशेषता है? वस्तुतः यह जैन मान्यता से संबद्ध एक विशिष्ट पक्ष है। परिवर्तनशील समय के साथ-साथ धर्म भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त करते हुए अपने चरम स्तर पर पहुँचकर आकर्षोन्मुख होता है और अंततः पुनः अपकर्षोन्मुख हो जाता है। जैन मान्यतानुसार उत्कर्ष और अपकर्ष काल को क्रमशः उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी काल के नाम से जाना जाता है और इन दोनों को मिलाकर एक कालचक्र कहा जाता है। प्रत्येक उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी काल में एक-एक तीर्थंकर परम्परा रहती है। प्रत्येक परम्परा में २४ तीर्थंकर

होते हैं। इनके अतिरिक्त १२ चक्रवर्ती, ६ वासुदेव तथा ६ प्रतिवासुदेव होते हैं, और ६ बलदेव होते हैं, इस प्रकार ६३ श्लाघनीय महापुरुष प्रत्येक काल में होते हैं। वर्तमान अवसर्गणी काल में इन परमपूज्य महापुरुषों का वर्णन “त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित” में किया गया है।

### जैन साहित्य में श्रीकृष्ण वासुदेव हैं

वासुदेव महान वीर और अपराजेय होते हैं। वे ३६० युद्ध करते हैं और कभी पराजित नहीं होते हैं। २० लाख अष्टापद जानवरों की ताकत शक्ति रखने वाले वासुदेव कभी भी अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करते। बलशाली होकर भी वे उपास्य नहीं होते। उपास्य तो केवल तीर्थंकर ही होते हैं और स्वयं वासुदेव भी तीर्थंकरों की उपासना करते हैं। वासुदेव अपने समय के सर्वश्रेष्ठ अधिनायक होते हैं। अध्यात्म क्षेत्र में निदानकृत होने के कारण वे चौथे गुणस्थान से आगे नहीं बढ़ पाते। तीर्थंकरत्व की सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि उनके लिए संभव नहीं होती। प्रत्येक वासुदेव के पूर्व कोई प्रतिवासुदेव होता है, जिसका तीन खण्डों पर आधिपत्य होता है, और जीवन के अन्तिम भाग में वह सत्ता और शक्ति के मद में उन्मत्त रहने लगता है। ऐसी स्थिति में प्रतिवासुदेव अन्यायी और अत्याचारी हो जाता है। इस अत्याचार को समाप्त करने एवं दुर्बलजनों की रक्षा करने के लिए वासुदेव उससे युद्ध करता है और प्रतिवासुदेव का विनाश होता है। वासुदेव ही प्रति-वासुदेव के त्रिखंड साम्राज्य का स्वामी हो जाता है।

श्रीकृष्ण वासुदेव थे। जरासंध प्रतिवासुदेव था। बलदेव सदा वासुदेव का सहायक होता है और इस त्रिपुटी में बलराम ही बलदेव थे। जैन साहित्य में श्रीकृष्ण का चरित स्वरूप इसी प्रकार वासुदेव के रूप में उभरा है। वे पराक्रमी शक्तिशाली और शूरवीर हैं। वासुदेव के रूप में श्रीकृष्ण महापुरुष हैं।

वासुदेव होने के नाते जैन परम्परा में श्रीकृष्ण उपास्य नहीं अपितु तीर्थंकर के उपासक हैं। इसके विपरीत श्रीकृष्ण वैदिक परम्परा में आराध्य हैं, उपास्य हैं। वे भागवत धर्म के प्रवर्तक हैं। वे विष्णु के अवतार हैं। श्रीकृष्ण निराकार परमात्मा के सगुण रूप हैं। अवतारवाद का मूल आधार यही रहा है कि परमात्मा दुष्टों के दलन एवं दुर्बलों के रक्षण हेतु मानव देह धारण कर धरती पर अवतरित होते हैं। मनुष्य तो इस परम्परा में ईश्वर नहीं बन

सकता, परन्तु ईश्वर अवश्य मनुष्य बन सकता है और धर्म की पुनर्स्थापना करता है।

वासुदेव के रूप में श्रीकृष्ण को मान्य समझने वाली जैन परम्परा उन्हें अवतार नहीं मानती। जैन परम्परा अवतारवाद को ही स्वीकार नहीं करती। यह परम्परा उत्तारवाद का समर्थक व अवतारवाद की विरोधक रही है। आध्यात्मिक क्षेत्र के शिरोमणी तीर्थंकर भी अवतार नहीं माने जाते। जैन दर्शन में तो मनुष्य ही सर्वोपरि महत्ता संपन्न है। ईश्वर की परिकल्पना जैन दर्शन में कभी नहीं रही है। मनुष्य ही सन्मार्गानुसरण से उत्तरोत्तर उन्नत होता हुआ चरमस्थिति का लाभ कर सकता है। जैन धर्म उत्तारवाद का विरोधक नहीं है। वैदिक परम्परा में ईश्वर मानवदेह धारण कर ऊपर से नीचे की ओर आता है, निवृत्ति से प्रवृत्ति की ओर बढ़ता है, निर्विकार से विकार की ओर अग्रसर होता है। इसके विपरीत जैन परम्परा में मनुष्य नीचे से ऊपर की ओर बढ़ता है, प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर, विकार से निर्विकार की ओर अग्रसर होता है। यह भी मेरे शोध अध्ययन के अंतर्गत आया है।

इस दृष्टि से जैनादर्शों को श्रीकृष्ण चरित्र में भिन्न-भिन्न भाषाओं के साहित्य में किस प्रकार अपनाया गया है यह भी एक खोज की दिशा हो सकती है। मेरे सामने जैन श्रीकृष्ण साहित्य की अध्येतव्य सामग्री प्राकृत आगम, प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य और संस्कृत तथा अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण साहित्य के साथ-साथ हिंदी जैन श्रीकृष्ण साहित्य रहा है। अतः मैंने अपने अनुशीलन की सुविधा की दृष्टि से इस शोध अध्ययन के इस विषयप्रवेश के अतिरिक्त कुल नौ अध्यायों में इस शोध सामग्री को विभाजित किया है। इनके समग्र अध्ययन से यह बिखरा हुआ जैन श्रीकृष्ण साहित्य एक उपयोगी दिशा निर्देश कर श्रीकृष्ण के अध्ययन में एक नया मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

इसीलिए इसी गवेषणा के सूत्र को पकड़कर मैं अपने शोध अध्ययन में प्रवृत्त हुआ। एक जैन मुनि होने के नाते भी इस जैन श्रीकृष्ण साहित्य से जैनादर्शों का अध्ययन करने में मेरी स्वाभाविक रुचि भी रही थी जिसने मुझे इसके अनुशीलन की प्रेरणा दी। जैसा मैं पूर्व में कह चुका हूँ मैंने अपने शोध का आरम्भ इसकी शोधानुकूलता के कारण सहित इस अध्याय में बताकर द्वितीय अध्याय में प्राकृत जैन आगम श्रीकृष्णसाहित्य का अनुशीलन प्रस्तुत किया है।

तृतीय अध्याय में मैंने प्राकृत आगमेतर श्रीकृष्ण साहित्य को परखा और समझा है तथा अपने तथ्य प्रस्तुत कर दिए हैं। चतुर्थ अध्याय में कुछ विस्तृत रूप में संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य की मैंने गवेषणा की है तथा कुछ अपने निष्कर्ष भी प्रस्तुत कर दिए हैं। पंचम अध्याय में मैंने अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण साहित्य का आलोड़न करते हुए जो तथ्य हाथ लगे उनका अध्ययन प्रस्तुत कर दिया है।

इस तरह मेरे पास जैन परम्परा में श्रीकृष्ण साहित्य की अब तक बहुत सी ऐसी सामग्री प्रस्तुत हो गई थी जिसके आधार पर इन जैन आचार्यों के साथ में आगम, आगमेतर, पुराण चरित, महाकाव्य जैसे कथाओं को प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं में उपलब्ध जैन श्रीकृष्ण कथा को संक्षिप्त रूप से उपलब्ध कर सकता था। षष्ठ अध्याय में मैंने यही कार्य कर दिया है। ऐसा करते हुए मैंने इस कथा के संदर्भ भी यथास्थान दे दिए हैं।

सप्तम और अष्टम अध्यायों में मैंने क्रमशः हिंदी जैन श्रीकृष्ण रास और पुराण साहित्य का और हिन्दी जैन श्रीकृष्ण मुक्तककाव्यों का अनुशीलन प्रस्तुत किया है। दोनों अध्यायों के अंत में मैंने अपनी खोज में उपलब्ध तथ्यों और निष्कर्षों को भी दे दिया है।

नवम अध्याय में मैंने उपसंहार के रूप में अपने शोधात्मक निष्कर्षों को देकर एक तुलनात्मक तथ्यपरक विवेचन प्रस्तुत कर दिया है। अंत में तीन परिशिष्टों में मैंने क्रमशः जैन श्रीकृष्ण कथा के संदर्भ में (१) भौगोलिक परिचय, (२) वंश परिचय (३) राज और राजनीति और अन्त में (४) संदर्भ ग्रन्थ सूची दे दी है। इस तरह मेरे शोध कार्य की यह विनम्र भूमिका है।

श्रीकृष्ण चरित्र को प्रतिपाद्य विषय बनाकर जैन लेखकों ने एक दीर्घ परम्परा में इसे साहित्य की अनेक विधाओं में विशेषतः चरित्र महाकाव्यों, पौराणिक महाकाव्यों, खण्डकाव्यों और स्फुट या मुक्तक काव्यों के रूपों में इसे प्रस्तुत किया है। इसमें श्रीकृष्ण के साथ २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि या नेमिनाथ, बलराम, प्रद्युम्न, गजसुकुमाल, जरासंध, कंस, रुक्मिणी और पंच पांडवों का भी समावेश है। इन प्रमुख पात्रों के साथ अन्य गौण पात्र भी अनेक आये हैं। इनका यथासंभव यथास्थान मैंने अपने इस शोध प्रबंध में यथोचित ढंग से विवेचन प्रस्तुत कर दिया है। जैन दार्शनिक दृष्टि जीवन में संयम, वैराग्य सिखाकर, मोक्षगामी बनाकर कैवल्य की प्राप्ति कराती है। इस अध्ययन में श्रीकृष्ण चरित्र के संदर्भ-संपर्क में जो प्रमुख और गौण पात्र आए

हैं वे अधिकतम ऐसे हैं जो इस ध्येय पथ पर अग्रसर हुए हैं और उसे प्राप्त कर चुके हैं।

विषय अति व्यापक है और निश्चय ही शोधकार्य के अनुकूल भी। अतएव इसके सर्व संभावित पक्षों को पूर्णतः व्यवस्थित कर पाना एक कठिन कार्य है। सारे जैन स्रोतों का आश्रय लेते हुए उन्हें स्वीकार किया गया है। जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित का एक सर्वपक्षीय चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न यहाँ पर किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध जैन जैनेतर सभी के लिए विशिष्ट लाभकारी प्रतीत होगा इसी में शोधकार्य का साफल्य भी निर्भर है, ऐसी मेरी विनम्र धारणा है।



## प्राकृत जैन आगम—श्रीकृष्ण साहित्य

भारतीय जन मानस में कृष्ण का व्यक्तित्व अनेक रूपों में आया और उभरा है। इसमें कृष्णचरित्र का जो ताना-बाना गूँथा गया उसमें वैदिक, बौद्ध और जैन विचार के अनुसार ही कृष्ण के व्यक्तित्व में अनेक रंग और अनेक विशेषताएं आकर के घुलमिल गई हैं। इस परिस्थिति में शोधकर्ता के सामने अनेक समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। कृष्णचरित्र और उसके जीवन के प्रसंग भिन्न-भिन्न भाषाओं में और भिन्न-भिन्न कालों में संग्रहीत हुए हैं। इसलिए उसका एक सूत्रबद्ध विकास क्रम प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य है। शोध की अपनी एक विशिष्ट पद्धति हुआ करती है। शोधक जिस पद्धति को लेकर अपना शोधकार्य आगे बढ़ाना चाहता है उसमें कुछ आधारभूत तथ्य लेकर चलना पड़ता है। मैंने अपने विषय प्रवेश में इस शोध विषय के महत्व को आंका है। यहाँ पर इस अध्याय में मैं प्राकृत आगम जैन साहित्य में “श्रीकृष्ण” इस विकास का अनुशीलन प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यहाँ पर ‘आगम’ शब्द जैन साहित्य में एक विशेष महत्व रखता है। इसलिए प्रथम आगम शब्द की परिभाषा और उसकी व्याप्ति पर मैंने विचार किया और बाद में आगम के जिन पर्यायों का प्रयोग जैन साहित्यकारों ने कृष्ण जीवन के प्रसंगों और जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि के जीवन के प्रसंगों के साथ किया है और उसे लेकर श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के साथ मिलाया है। इसमें कुछ गुण साम्य हैं, कुछ गुण सामर्थ्य साम्य और कुछ अपनी विशेषताएं और वैषम्य भी। इन सब को आगम और आगमेतर की भिन्न-भिन्न विधाओं में जैन साहित्यकारों ने सजित किया है। इनकी भाषा प्राकृत रही है। यहाँ पर मैं केवल ‘आगम’ को लेकर ही अपनी बात कहूँगा। आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य का विवेचन तृतीय अध्याय में किया जायेगा।

## आगम शब्द-मीमांसा

आगम शब्द “आ” उपसर्ग और गम् धातु से निष्पन्न हुआ है। “आ” उपसर्ग का अर्थ समंतात् अर्थात् पूर्ण है तथा गम् धातु का अर्थ गति प्राप्त करना है। ‘आगम’ शब्द की अनेक परिभाषाएं आचार्यों ने की हैं, जैसे :—

(१) जिससे वस्तुत्व या पदार्थ रहस्य का परिज्ञान हो जाय वह आगम है।<sup>१</sup>

(२) जिससे पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो वह आगम है।<sup>२</sup>

(२) जिससे पदार्थों का परिपूर्णता के साथ मर्यादित ज्ञान हो जाय वह आगम है।<sup>३</sup>

(४) आप्तवचन से उत्पन्न अर्थ या पदार्थ ज्ञान आगम कहलाता है।<sup>४</sup>

(५) आप्त का कथन आगम है।<sup>५</sup>

(६) उपचार से आप्तवचन भी आगम माना जाता है।<sup>६</sup>

जिससे सही शिक्षा प्राप्त होती है, विशेष ज्ञान उपलब्ध होता है, वह ‘शास्त्र-आगम’, ‘श्रुतज्ञान’ कहलाता है।

## आगम के पर्यायवाची शब्द

मूल वैदिक शास्त्रों को जैसे वेद और बौद्ध शास्त्रों को जैसे पिटक कहा जाता है, वैसे ही जैनशास्त्रों को ‘श्रुत’ ‘सूत्र’ या ‘आगम’ कहा जाता है। जैनागमों में दर्शन और जीवन का आचार एवं विचार की भावना

१. आसमन्तात् गम्यते वस्तुतत्त्वमनेनेत्यागमः ।

२. आगम्यते मर्यादयाऽवबुध्यन्तेऽर्थाः अनेनेत्यागमः—रत्नाकरावतारिकावृत्ति ।

३. आ-अभिविधिना सकलश्रुतविद्याव्याप्तिरूपेण मर्यादया वा यथावस्थितरूपया-गम्यन्ते-परिच्छिद्यन्ते अर्थायने स आगमः ।

—आवश्यक मलयगिरिवृत्ति; नन्दीसूत्रवृत्ति ।

४. आगच्छत्याचार्यपरम्परयार्थविधारणमित्यागमः ।

—सिद्धसेनगणीकृत-तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी टीका

५. आप्तोपदेशः शब्दः —न्यायसूत्र १-१७

६. आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः उपचारादप्तवचनं च ।

—स्याद्वादमंजरी-२ श्लो० टीका



तथा कर्तव्य का जैसा सुन्दर समन्वय हुआ है वैसा अन्य साहित्य में दुर्लभ है ।<sup>7</sup>

आजकल 'आगम' शब्द का प्रयोग अधिक होने लगा है किन्तु अतीत काल में 'श्रुत' शब्द का प्रयोग अधिक होता था । श्रुतकेवली, श्रुतस्थविर जैसे शब्दों का प्रयोग भी आगमों में अनेक स्थलों पर हुआ है ।<sup>8</sup> किन्तु कहीं पर भी आगम केवली या आगम-स्थविर का प्रयोग नहीं हुआ है ।

सूत्र, ग्रंथ, सिद्धान्त, प्रवचन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापन, आगम, आप्तवचन, ऐतिह्य आमनाय और जिन वचन, श्रुत ये सभी शब्द आगम के ही पर्यायवाची शब्द हैं । श्रमण भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य इंद्रभूति गौतम ने इस जिनवाणी को १२ अंग ग्रंथों तथा १४ पूर्वों के रूप में संयोजित किया था । अंग ग्रंथों तथा पूर्वों के नाम इस प्रकार हैं :—

१२. अंग-ग्रंथ—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्या-प्रज्ञप्ति (भगवती), ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोप-पातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवाद ।

१४ पूर्व—उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्या-नुवाद, अवध्य, प्रणायु, क्रियाविशाल, लोकविन्दुसार ।

जो मुनि उपरोक्त सम्पूर्ण वाणी की अवधारणा कर सका उसे श्रुत-केवली कहा गया । श्रुतकेवली शब्द से यह प्रतिभासित होता है कि जिन वाणी प्रारम्भ में श्रुतरूप में ही सुरक्षित रही । जिस प्रकार वेद-वेदांग लम्बे समय तक श्रुति-रूप में बने रहे । यही स्थिति प्रारम्भ में जैन साहित्य की बनी रही । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि श्रुतकेवली ६ हुए हैं जिनमें से भद्रबाहु अंतिम थे ।<sup>10</sup>

७. सा सिज्झइ जेण वयं सत्थं तं वा विसेसियं नाणे ।

आगम एव य सत्थं आगमसत्थं तु सुयनाणं ।

८. नन्दीसूत्र—विशेषावश्यकभाष्य गा० ४४६

९. सुयसुत्तगन्थ-सिद्धं तपवयणे आणवयणउवएसे पण्णवण्ण आगमे या एकट्ठा पज्जवा-सुत्ते—अनुयोगद्वार, विशेषावश्यक भाष्य

१०. प्रभवस्वामी, शयम्भव, यशोभद्र, सम्भूतिविजय और भद्रबाहु (श्वेताम्बर परंपरा-नुसार)

भद्रबाहु के समय यानि ई०पू० ३२५ में मगध में १२ वर्ष का दुष्काल पड़ा था, उस समय ससंघ भद्रबाहु मगध से प्रस्थान कर गये थे। दुर्भिक्ष के पश्चात् भद्रबाहु की अनुपस्थिति में मुनिवर स्थूलभद्र के सान्निध्य में पाटलीपुत्र नगरी में लुप्त होते जा रहे आगमों की गंभीर समस्या को लेकर मुनि-सम्मेलन आयोजित किया गया था।<sup>११</sup> इसमें लुप्त होते जा रहे आगमों को व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया। इस प्रयास क्रम में ११ अंग ही एकत्रित किए जा सके। १२वाँ दृष्टिवाद तथा १४ पूर्वों का ज्ञान निःशेष हो गए। जो अंग एकत्रित किए गए उन्हें लेकर भी मतभेद खड़े हुए कि ये प्रामाणिक हैं या नहीं। भद्रबाहु के साथ मगध से जो साधुसंघ चला गया उसने प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं किया और इस प्रकार सूत्रों की प्रामाणिकता को लेकर दो भागों में यह संघ विभक्त हो गया। एक वर्ग (श्वेताम्बर संप्रदाय) ११ अंगों को प्रामाणिक मानता है तो दूसरा वर्ग (दिगंबर संप्रदाय) संपूर्ण आगम साहित्य को विच्छिन्न मानता हुआ इसे अस्वीकार करता है। यह संप्रदाय आगमों के आधार पर रचित कतिपय ग्रंथों को आगम साहित्य के रूप में स्वीकार करता है।<sup>१२</sup>

ये ग्रंथ क्रमशः इस प्रकार हैं :

- (१) षट्खण्डागम—इसकी रचना प्राकृत भाषा में आचार्य धरसेन के शिष्य आचार्य भूतबलि ने और आचार्य पुष्पदन्त ने वीर निर्वाण की सातवीं शताब्दी में याने ई० सन् दूसरी शताब्दी में की।
- (२) कषाय प्राभृत—इसके रचनाकार आचार्य गुणधर ने लगभग इसी समय इसकी रचना की।
- (३) महाबन्ध—यह षट्खण्डागम का ही अंतिम खण्ड है। इसके रचनाकार आचार्य भूतबलि हैं।
- (४) धवला तथा जयधवला—इनके टीकाकार वीरसेनाचार्य हैं। ये प्रथम दो ग्रंथों की टीकाएं हैं।

---

आर्य-विष्णुनन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, आचार्य-गोवर्धन, भद्रबाहु (दिगंबर परंपरानुसार) देखें—जैनधर्म का मौलिक इतिहास, खण्ड २ पृ० ३१५

ले० आचार्य हस्तिमलजी महाराज, जयपुर

११. जैन धर्म—पं० कैलाशचन्द शास्त्री, पृ० ४०-५०

१२. जैन धर्म—ले० पं० कैलाशचन्दशास्त्री, पृ० २४६, ४५

(५) सिद्धान्तों के परम मर्मज्ञ कुन्दकुन्दाचार्य ने भी मूल आगमों को संलक्ष्य में रखकर कई ग्रंथों का निर्माण किया है—जिनमें से प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय तथा विभिन्न पाहुड ग्रन्थ हैं ।

समय-समय पर आगम ग्रन्थों का संकलन होता रहा है जो क्रमशः इस प्रकार जाना जा सकता है—

- (१) प्रभु महावीर निर्वाण के १६० वर्ष बाद (ई० पू० सन् २६७ में) स्थूलभद्राचार्य के सान्निध्य में हुआ ।
- (२) ई० सन् ३२७-३४० के मध्य मथुरा में स्कन्दिलाचार्य की अध्यक्षता में हुआ ।
- (३) ई० सन् ४५३-४६६ के मध्य वल्लभी में आचार्य देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में हुआ ।

वर्तमान में उपलब्ध संकलन आचार्य देवर्द्धि गणी की अध्यक्षता में आयोजित श्रमण समुदाय (ई० सन् ४५३ से ४६६ स्थान वल्लभीनगर काठियावाड़) द्वारा किया गया था । अस्तु, श्वेताम्बर संप्रदाय द्वारा मान्य किया जाने वाला आगमिक साहित्य प्रभु महावीर निर्वाण के लगभग एक हजार वर्ष बाद संकलित हुआ था ।

मूल आगम साहित्य ११ अंगों के रूपों में ही अवशिष्ट समझा जा सकता है । परन्तु, मूल आगमों के आशय को संलक्ष्य में रखकर अनेकों आचार्यों ने जो ग्रन्थ व टीकाएँ लिखी हैं वे आगमिक साहित्य में गिनी जाती हैं । इस प्रकार महावीर निर्वाण के पश्चात् आगमिक साहित्य की वृद्धि होती रही । वल्लभी में आयोजित समय में आगमिक साहित्य के ग्रन्थों की संख्या ८४ तक पहुँच गयी थी, जिनके नाम नन्दीसूत्र में निम्न रूप से हैं ।<sup>१३</sup>

### अंगग्रंथ

आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञाता-धर्म-कथा, उपासकदशा, अंतकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवाद (विलुप्त हो गया) ।

१३. जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा, ले० देवेन्द्रमुनि शास्त्री, पृ० १४

प्रकाशक—तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर ।

## उपांग

औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, सूर्यप्रज्ञप्ति, चंद्र-  
प्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, निरयावलिका (कल्पिका) कल्पावतंसिका, पुष्पिका,  
पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा ।

## मूलसूत्र

उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र, आवश्यक  
सूत्र ।

## छेदसूत्र

बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, निशीथ, महानिशीथ,  
पंचकल्प ।

## प्रकीर्णक

चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान, भक्त परिज्ञा, संस्तारक, तंदुलवैचारिक,  
चंद्रवैध्यक, देवेन्द्रस्तव, गणिविद्या, महाप्रत्याख्यान, वीरस्तव, अजीवकल्प,  
गच्छाचार, मरणसमाधि, सिद्धप्राभृत, तीर्थोद्गालिक, आराधनापताका,  
द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरंडक, अंगविद्या, तिथिप्रकीर्णक, पिण्डनिर्युक्ति,  
सारावली, पर्यन्तसाधना, जीवविभक्ति, योनिप्राभृत, वृद्धचतुःशरण, जम्बू-  
पयन्ना ।

## चूलिका

अंगचूलिका, वंगचूलिका ।

## निर्युक्तियाँ

आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, बृहत्कल्प,  
व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, कल्पसूत्र, पिण्ड, ओघ, संसक्त ।

## शेषसूत्र

कल्पसूत्र, यतिजीतकल्प, श्राद्धजीतकल्प, पाक्षिकसूत्र, खामणासूत्र,  
वंदित्सूत्र, ऋषिभाषितसूत्र ।

वर्तमान स्थिति में श्वेतांबर जैनो के विभिन्न संप्रदायों में भी आग-  
मिक साहित्य की संख्या को व प्रामाणिकता को लेकर मतैक्य नहीं है,

श्वेतांबर मूर्तिपूजक इनमें से ४५ आगमों को व श्वेतांबर स्थानकवासी ३२ व तेरापंथी ३२ आगमों को मान्य करते हैं, जो निम्न हैं—

श्वेतांबर मूर्तिपूजक इनको मानते हैं—११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ६ छेदसूत्र, १० प्रकीर्णक, २ चूलिकासूत्र कुल ४५ हैं।

श्वेतांबर स्थानकवासी व तेरापंथी नीचे दिये आगम मानते हैं—  
११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक कुल ३२ हैं।

इन आगमों में से श्रीकृष्ण चरित्र की दृष्टि से निम्नलिखित ७ सूत्रों का प्रमुख स्थान है :—(१) स्थानांग, (२) समवायांग, (३) ज्ञाताधर्मकथा, (४) अन्तकृद्दशा, (५) प्रश्न-व्याकरण, (६) निरयावलिका, (७) उत्तराध्ययन।

आगमों में श्रीकृष्ण के चरित्र की दृष्टि से निम्नोक्त आगमों का प्रमुख स्थान है—

### (१) स्थानांग

स्थानांग सूत्र के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण संबंधी प्रसंग वर्णित है। इस अध्याय में श्रीकृष्ण की आठों पटरानियों का अर्थात् अग्रमहिषियों का परिचय दिया गया है। इन अग्रमहिषियों के नाम यहाँ पर दिए गए हैं—पद्मावती, गौरी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, गांधारी और रुक्मिणी।<sup>१४</sup>

### (२) समवायांग

इस चतुर्थ सूत्र में ५४ उत्तम पुरुषों का वर्णन है। इन श्लाघनीय शलाका पुरुषों में श्रीकृष्ण का विस्तृत वर्णन किया गया है। वासुदेव के रूप में प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण द्वारा तत्कालीन प्रतिवासुदेव जरासंध के वध का

१४. कण्हस्स णं वासुदेवस्स अट्ठ अगमहिंसिओ अरहो णं अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुंडा भवेत्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया सिद्धाओ-जाव-सव्वदुक्खपहीणाओ तं जहा—पउमावइ, गौरी, गंधारी, लक्खणा, सुसीमा, जंबवई, सच्चभामा, रुप्पिणी; कण्हअगमहिंसिओ।

—स्थानांग अ० ८ सूत्र ६२६, पृ० ३८७, संपादक—पूज्य कन्हैयालालजी कमल, आगम अनुयोग-प्रकाशन, साण्डेराव (राज०) अक्टूबर १९७२।

समवायांग सूत्र में विस्तार से वर्णन किया गया है। वासुदेव प्रतिवासुदेव का आचरण भी वर्णित है। वासुदेव और प्रतिवासुदेव परस्पर प्रतिद्वंद्वी होते हैं। प्रतिवासुदेव अत्याचारी, दुष्ट व प्रजापीडक होता है। वासुदेव द्वारा प्रति वासुदेव का हनन होता है और इस प्रकार पृथ्वी को भारमुक्त किया जाता है। श्रीकृष्ण ने इस प्रकार वासुदेव की भूमिका का पूर्णतः निर्वाह किया है।<sup>15</sup> सूत्र २०७ का प्रतिपाद्य विषय यही प्रसंग रहा है।

### (३) ज्ञातधर्मकथा (णायधम्मकहाओ)

यह भी एक षष्ठ अंगवर्गीय आगम है। दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले स्कन्ध के १६वें अध्ययन में श्रीकृष्ण का वर्णन मिलता है। दूसरे स्कन्ध के पाँचवें अध्ययन में भगवान् अरिष्टनेमि के साथ-साथ श्रीकृष्ण के कथा सूत्र भी आए हैं। भगवान् का रेवतक पर्वत पर आगमन होता है। वासुदेव (श्रीकृष्ण) भगवान् के दर्शनार्थ यादवकुमारों और कुटुम्बीजनों के साथ उपस्थित होते हैं और भगवान् के उपदेशों का श्रद्धासहित श्रवण करते हैं। इसी अध्ययन के अन्तर्गत थावच्चापुत्र द्वारा भगवान् के सान्निध्य में प्रवज्या ग्रहण का प्रसंग भी विवेचित हुआ है।<sup>16</sup> सोलहवें अध्ययन में पांडवों का वर्णन आया है। इस अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि पांडवों की जननी कुन्ती श्रीकृष्ण की बुआ (अर्थात् वसुदेव की बहन) थी। इस आधार

१५. भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए उस्सप्पिणीए ओसप्पिणीए चउवन्नं २ उत्तमपुरिसा उप्पज्जिति वा, उप्पज्जिस्संति वा, तंजहा—चउवीसं तित्थकरा, बारस चक्कवट्ठी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा ।

—समवायांग ५४वां समवाय, पृ० ८४—संपादक—पूज्य कन्हैयालालजी कमल, आगम अनुयोग प्रकाशन, साण्डेराव (राज०) सन् १९५६ में प्रकाशित ।

१६. तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवतीनामं नगरी होत्था.....तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसई.....

—ज्ञाताधर्मकथा अ० ५, पृ० १५६, १५७, प्रधानसंपादक युवाचार्य मधुकर मुनिजी, प्रका० आगम प्रकाशन समिति, व्यावर ई० सन् १९८१ । (राज०)

तएणं से कण्हे वासुदेवे समुद्धविजयपामुक्खेहि.....वारवई नयरि मज्झं मज्झेणं निग्गच्छई । तएणं से कण्हे वासुदेवे ते पउमनाभं रायाणं एज्जमाणं पासइ—पृ० ४५

तएणं से कण्हे वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी —पृ० ५४

तएणं से कण्हे वासुदेवे लवण समुद्धं मज्झं मज्झेणं वीइवइए, —पृ० ४६१

तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे तेणेव उवागच्छई । —पृ० ४६३

पर पांडवों और श्रीकृष्ण के मध्य पारिवारिक सम्बन्ध बताया गया है तथा अमरकंका जाने का वर्णन भी प्राप्त है ।<sup>17</sup>

### (४) अन्तकृद्दशांग

इस आठवें अंग आगम में अंतकृत्केवलियों की कथाएं वर्णित हैं । ग्रन्थ अनेक अध्ययनों में विभक्त है और अध्ययनों के आठ वर्ग (समूह) हैं । प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में द्वारका का वैभव एवं गौतम की दीक्षा, तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन में श्रीकृष्ण के अनुज गजसुकुमार की कथा है । पाँचवें वर्ग के प्रथम अध्ययन में वैभवपूर्ण द्वारका के विनाश का और श्रीकृष्ण के देहत्याग का वृत्तान्त है । द्वारावती नगरी के शक्तिशाली राजा के रूप में श्रीकृष्ण को बतलाया गया है । कृष्ण के भावी जन्म विषय वृत्तांत, कृष्ण की पर-दुःखकातरता का चित्रण हुआ है ।<sup>18</sup>

यथा—

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईनामं नयरी होत्था । दुवाल-  
सजोयणायामा नव जोयणविस्थिणा । —प्रथम वर्ग पृ० ६

तत्थणं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसई ।

—प्रथम वर्ग पृ० १०

तएणं सा देवई कण्हे वासुदेवं एवं वयासी । एवं खलु अहं पुत्ता ।

—तृतीय वर्ग पृ० १०

तएणं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव बिभूसिए ।

—तृतीय वर्ग, पृ० ५६

तएणं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिठ्ठनेमिणं अब्भणुण्णाए अरहं ।

—तृतीय वर्ग पृ० ७७

कहण्णं भंते तेणं परिसेणं गयसुकुमालस्य अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?

तएणं अरहा अरिठ्ठनेमि कण्हं वासुदेवं एवं वयासी । —तृतीय वर्ग, पृ० ८४

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिठ्ठनेमी समोसडे जाव एवं खलु कण्हा ।

इमीसे बारवइए नयरीए नवजोयण विस्थिन्नाए जाव देवलोगभूयाए सुरगिग-  
विवाय-मूलाए विणासे भविस्सइ । —पंचमवर्ग, पृ० ६४-६५

१७. वही.....ज्ञाताधर्मकथा

१८. अन्तकृद्दशांग—प्रधानसंपादक—युवाचार्य श्रीमधुकरमुनिजी

### (५) प्रश्नव्याकरण

यह दशम अंग ग्रन्थ है। ५ धर्म द्वार तथा ५ अधर्मद्वार के रूप में प्रश्न व्याकरण के दो खंड हैं। पूर्वखण्ड में ५ आस्रवद्वार हैं और उत्तरखंड में संवर-द्वार हैं जिनकी संख्या भी ५ हैं। स्वमणी एव पद्मावती के साथ विवाह के लिए श्रीकृष्ण को जो युद्ध करने पड़े उनका वर्णन प्रश्नव्याकरण के पूर्व खण्ड के चतुर्थ आस्रवद्वार में किया गया है।<sup>19</sup>(क)

कृष्ण के चरित्र का श्रेष्ठ अर्द्ध चक्रवर्ती राजा के रूप का, उनकी रानियों, पुत्रों तथा परिवारजनों का वर्णन तथा श्रीकृष्ण को चाणूरमल्ल, रिष्टबैल तथा काली नामक महान विषैले सर्प का हन्ता, यमलार्जुन के नाश करने वाले, महाशकुनि एवं पूतना के रिपु, कंसमर्दक, जरासन्ध नष्टकर्ता आदि उनके विविध गुणों को दर्शाया गया है। और, इस प्रकार उनके व्यक्तित्व के महानता के दर्शन इस आगम के द्वारा हमें दिखलाई देते हैं।<sup>19</sup> (ख)

### (६) निरयावलिका

इसमें ५ वर्ग हैं। ५ वर्गों में ५ उपांग अन्तर्निहित हैं। पाँचवे उपांग वृष्णी-दशा के १२ अध्ययन हैं। प्रथम अध्ययन में द्वारकाधिपति वासुदेव श्रीकृष्ण का वर्णन मिलता है। चित्रित प्रसंग उस समय का है जब भगवान नेमिनाथ का आगमन रैवतक पर्वत पर होता है और श्रीकृष्ण उनकी उपदेश-सभा में जाते हैं। इस प्रसंग में श्री कृष्ण की धर्मप्रियता और भगवान के प्रति श्रद्धा की भावना अभिव्यक्त हुई है।<sup>20</sup>

१९. (क) भुज्जो भुज्जो बलदेव-वासुदेवा य पवरपुरिसा महाबलपरवकमा, महाधनु वियट्ठका, महासत्तसागरा दुद्धरा।—प्रश्नव्याकरणसूत्र चतुर्थअध्याय, संपादक—अमरमुनिजी, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा।

(ख) मेहुणसण्णासंपगिद्धाय मोहभरिया सत्थेहि हणंति एक्कमेक्कं। विसयविस उदीरएसु अवरे परदारेहि हम्मंति × × × मेहुणमूलं य सुव्वए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणक्खयकरा सीयाए दोवईए कए, रुप्पिणीए पउमावईए।

—प्रश्न-व्याकरण सूत्रचतुर्थअध्ययन, पृ० 407 संपादक वही।

२०. एवं खलु जंबू तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था, दुवालस जोयणायामा जावपक्कचक्खं देवलोयभूया।...तत्थणं बारवईए नयरीए कण्हे नामं



प्रथम अध्ययन निषधकुमार का है, जो कृष्ण के बड़े भ्राता राजा बलदेव तथा रेवती के पुत्र थे। निषध कुमार भगवान् अरिष्टनेमि की सेवा में प्रवज्या ग्रहण कर आत्म कल्याण करते हैं। यह उपांग सूत्र है।

### (७) उत्तराध्ययन

इस आगम ग्रन्थ में भगवान् महावीर के अंतिम समय महानिर्वाण काल में दिए गए उपदेश संकलित हैं। उत्तराध्ययन में कुल ३६ अध्ययन हैं, और इसके २२वें अध्ययन में श्रीकृष्ण कथा के सूत्र मिलते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा अरिष्टनेमि के विवाहोत्सव का प्रबंध किया जाना, विवाह में एकत्रित अतिथियों के आहार हेतु एकत्रित मूक पशुओं की पुकार सुनकर अरिष्टनेमि का विरक्त हो जाना, रेवतक पर्वत पर जाकर उनका तपस्या करना आदि प्रसंग विस्तार से विवेचित हैं। इस अध्ययन से यह तथ्य भी प्रकट होता है कि श्रीकृष्ण का जन्म सौरियपुर में हुआ था।<sup>21</sup> कृष्ण के माता-पिता, उनका वासुदेव राजा होना, नेमि के लिए उनके द्वारा राजीमती की याचना करना आदि उल्लेख हैं।

### निष्कर्ष

मैंने इस अध्याय में जैन प्राकृत श्रीकृष्ण साहित्य के कतिपय ग्रंथों को लेकर अपना अनुशीलन प्रस्तुत किया है। इसमें क्रमशः सात ग्रंथ हैं। (१) स्थानांग में श्रीकृष्ण सम्बन्धी कुछ प्रसंग और उनकी आठ पटरानियों का उल्लेख मिला है। (२) समवायांग में ५४ उत्तमपुरुषों का विवेचन है। इनमें

वासुदेवे राया होत्था जाव पसासेमाणे विहरई।—वणिहदसाओ, —पृ० ७१२  
संपादक—पुष्पभिक्षू, प्रकाशक सूत्रागमप्रकाशन समिति, गुडगांव (पंजाब)।

२१. सौरियपुरम्मिनयरे आसिराया महद्दिण्णं ।

वसुदेवत्ति नामेणं रायलक्खणसंजुए ॥

तस्स भज्जा दुवे आसि रोहिणी देवई तहा ।

तासि दोण्हं दुवे पुत्ता इट्ठा रामकेसवा ।

वज्जरिसहसंघयणे समचउरंसो झसोयरो ।

तस्स राईमई कन्नं भज्जं जायई केसवो ॥

उत्तराध्ययनसूत्र अ० २२, संपादक—स्वयंशोधकर्ता (राजेन्द्रमुन्द्रि)

गाथा—१, २, ३, ६, ८, १०, ११, २५ व २७ में कृष्ण संबंधी उल्लेख उपलब्ध हैं।

वासुदेव के रूप में प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण का विस्तार से विवेचन है। प्रति वासुदेव का हनन उनके द्वारा किया गया है। यह ठीक अवतारी पुरुष कृष्ण से मिलता है। (३) ज्ञाताधर्म कथा में २२ वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में बतलाया गया है। पांडव भी इसमें चर्चित हैं। कुन्ती पांडवों की जननी और श्रीकृष्ण की बुआ हैं। थावच्चापुत्र प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं। (४) अन्तकृद्दशांग में द्वारकावैभव, श्रीकृष्ण वासुदेव तथा गौतमकुमार की दीक्षा तथा श्रीकृष्ण पुत्र गजसुकुमार की कथा आई है। अंत में द्वारका विनाश और श्रीकृष्ण का देहत्याग भी विवेचित है। कृष्ण एक शक्तिशाली राजा और परदुःखकातर बतलाये गए हैं। उनके भावी जन्म पर प्रकाश डाला गया है। (५) प्रश्नव्याकरण ग्रंथ में दो खंड हैं। उत्तरखंड में ५ संवर द्वार हैं। पूर्वखंड में रुक्मिणी और पद्मावती से विवाह करने के लिए जो युद्ध श्रीकृष्ण को करने पड़े उनका विवेचन है। श्रीकृष्ण एक अर्धचक्रवर्ती राजा बताये गए हैं तथा उनकी कुछ बाललीलाएं जैसे रिष्ट बैल और कालिय नामक विषैले नाग की हत्या, पूतना मर्दन, कंस हनन और जरासंध वध का वर्णन तथा उनमें विद्यमान गुणों का विवेचन और उनकी रानियों का वर्णन तथा उनकी महानता दिखाई है। (६) निरयावलिका में रैवतक पर्वत पर नेमिनाथ का आगमन और द्वारकाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव का वर्णन तथा नेमिनाथ की उपदेश सभा में श्रीकृष्णागमन दिया गया है। श्रीकृष्ण की धर्मप्रियता और २२ वें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ के प्रति श्रद्धा का वर्णन तथा राजा बलदेव और उनकी रानी रेवती के पुत्र निषधकुमार का नेमि की सेवा में जाना और प्रव्रज्या ग्रहण इत्यादि विवेचन है। (७) उत्तराध्ययन में भगवान् महावीर का उपदेश संकलित है। कुल ३६ अध्ययनों में से २२ वें अध्ययन में श्रीकृष्ण कथा के सूत्र हैं। श्रीकृष्ण के द्वारा अरिष्टनेमि के विवाहोत्सव का प्रबंध, बारातियों के आहार के लिए जुटाये गये पशुपक्षियों को देखकर नेमी को वैराग्य उत्पन्न होना, रैवतक पर्वत पर तपस्या के लिए जाना, राजीमती द्वारा नेमी से याचना और श्रीकृष्ण का जन्म सोरियपुर में हुआ। यह तथ्य भी हमारे हाथ लगता है।

इस प्रकार इस अध्याय में मैंने अपने शोधाध्ययन के सूत्र जुटाये हैं । विशेष अध्ययन के लिए श्री देवेन्द्रमुनि की “भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन” यह पुस्तक दृष्टव्य है ।<sup>२२</sup>

अगले अध्याय में इससे थोड़ा सा विस्तृत अध्ययन प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य का मैं कर रहा हूँ ।



२२. भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण, एक अनुशीलन पृ० ३४० (परिशिष्ट) से ३६० तक तथा ३६७, देवेन्द्र मुनि शास्त्री,

## प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य

### भूमिका

श्रीकृष्ण चरित्र को समग्र जैन साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जैन साहित्य और श्रीकृष्ण चरित का पारस्परिक सम्बन्ध बड़ा मूल्यवान रहा है। जहाँ श्रीकृष्ण की चारित्रिक विशेषताओं तथा उनकी महत्ता के प्रचार प्रसार का श्रेय जैन साहित्य को प्राप्त होता है, वहाँ यह भी सत्य है कि श्रीकृष्ण के विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धांतों के प्रतिपादन और जन सामान्य में उसके प्रचार के कार्य में भी किसी सीमा तक सहायता मिली है। जैसा कि पूर्व में वर्णित किया जा चुका है, श्रीकृष्ण जीवन के प्रसंग जैन साहित्य में सर्वप्रथम आगमों में समाविष्ट हुए हैं। आगम ग्रन्थों का स्वरूप समझने के क्रम में यह सारा तथ्य स्वयं स्पष्ट हो जाता है। प्रस्तुत अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का एक अत्यंत स्तुत्य, समर्थ और सफल प्रयत्न यह रहा है कि उन्होंने अपने धार्मिक विचारों का जनता में प्रचार करने के लिए तत्कालीन जनप्रिय लोक भाषाओं और कथाओं का आश्रय लिया। इन कथाओं को जनता पीढ़ियों से समझी हुई थी तथा इन्हें हृदयंगम किये हुए थी। अतः इनमें पाया जाने वाला साम्य स्थिर करके भगवान ने अपने विचारों को सुगमता के साथ जनमानस का अंग बना दिया। जिन लोक प्रचलित और जनप्रिय कथाओं के चुनाव का अपने प्रयोजन से भगवान ने चयन किया और जिनका उपयोग किया, उनमें श्रीकृष्ण के जीवन की कथाएं भी सम्मिलित रहीं। ऐसा होना श्रीकृष्णचरित्र की तत्कालीन लोकप्रियता के आधार पर स्वाभाविक ही लगता है।

## स्रोत

इस प्रकार जब भगवान महावीर ने श्रीकृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओं का उल्लेख अपने उद्देश्यों के अन्तर्गत, अपने ही ढंग से किया तो उनके प्रवचनों में श्रीकृष्ण के जीवन का कोई क्रमबद्ध वृत्तांत उभरकर प्रकट नहीं हो सकता था। जहाँ जिस सिद्धांत के स्पष्टीकरण एवं प्रतिपादन के लिए या पुष्टि के लिए भगवान ने श्रीकृष्ण जीवन की जिस घटना का प्रयोग वांछनीय समझा और अनुभव किया, उसे उपयुक्त स्थान जैन कथा में दिया। कालांतर में भगवान के शिष्य गणधरों ने भगवान के उपदेशों को संग्रहीत किया, उन्हें लिखित रूप देने का प्रयास भी किया। ये लिखित अलिखित रूप ही जैन आगम हैं।

## उल्लेख विशृङ्खलनीय

स्पष्ट है कि जैन आगम ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंगों को यद्यपि अति महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त अवश्य ही हुआ है किन्तु ये उल्लेख विशृङ्खलित रूप में हैं। आगमों में श्रीकृष्ण के जीवन चरित का कोई क्रमिक विकास दृष्टि गोचर नहीं होता। न ही यह कहा जा सकता है कि आगमों में श्रीकृष्ण के जीवन को सम्पूर्णतः ग्रहण कर लिया गया है। केवल प्रतिपाद्य विषयों में सहायक रहने की क्षमता वाले प्रसंग ही इसमें समाविष्ट हुए हैं। आगमेतर ग्रन्थों (परिवर्ती ग्रंथों) में श्रीकृष्ण जीवन की इन बिखरी-बिखरी घटनाओं को क्रमिक और व्यवस्थित रूप दिया गया है। यथावश्यकतानुसार शून्य स्थलों की पूर्ति का भी मूल्यवान उपक्रम हुआ है। परिणामतः इन परवर्ती ग्रन्थों में श्रीकृष्ण चरित्र जैसी कोई वस्तु मेरे दृष्टिगत होने लगी है। श्रीकृष्ण के भव्य चरित्र की एक झांकी प्रस्तुत होने लगी है। इनके माध्यम से श्रीकृष्ण सम्बन्धी जैन मान्यता स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त हुई। यह मान्यता इस पक्ष में पायी जाती है कि श्रीकृष्ण एक अत्यन्त बलशाली, पराक्रमी, तेजस्वी महामानव थे। वैदिक परम्परा के श्रीकृष्ण के अवतारी और चमत्कारी दिव्य रूप को जैन मान्यता ने स्वीकार्य नहीं समझा। जैन श्रीकृष्ण साहित्य में उल्लेखित सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक रूप एवं मूलाधार को स्वीकारते हुए जैन परम्परा में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन बड़े ही व्यापक रूप में हुआ है। वे सर्वत्र शक्तिशाली रूप में वर्णित हुए। जैन परम्परानुसार श्रीकृष्ण गुणशील, सदाचारी, ओजस्वी, वर्चस्वी एवं यशस्वी महापुरुष थे। उन्हें जैन ग्रन्थों में अमोघबली, अतिबली, महाबली, अप्रतिहत और अपराजित रूप में चित्रित

किया गया है। उनका शारीरिक बल इतना विपुल था कि वे सुगमता के साथ महारत्न वज्र को भी चुटकी से मसलकर चूर्ण कर देते थे।

### महापुरुषों का आभ्यंतर सौन्दर्य

बाह्य एवं आभ्यंतरिक सौन्दर्य अन्योन्याश्रित हुआ करता है। महापुरुषों में भव्य आंतरिक सौंदर्य होता है। इसकी प्रतिच्छवि स्वरूप उनका बाह्य व्यक्तित्व भी सौन्दर्य सम्पन्न एवं आकर्षक होता है। ये ओज तेज से युक्त व परमशक्ति सम्पन्न होते हैं। जैन मान्यता भी इस तथ्य की समर्थक रही है। यही कारण है कि इस परम्परा में मान्य सभी विशिष्ट पुरुष आकर्षक व प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले हैं। प्रज्ञापना सूत्र (२३) के अनुसार जैन दृष्टि से जो ६३ श्लाघनीय पुरुष (शलाका पुरुष) हुए हैं वे सभी अत्युत्तम शारीरिक संस्थान वाले थे। 'हारिभद्रीयावश्यक' में उनके शरीर की प्रभा को निर्मल स्वर्णरेखा के समान वर्णित किया गया है। जैन परंपरा में ६३ शलाका पुरुषों में श्रीकृष्ण की भी गणना होती है। वे नवम वासुदेव हुए हैं।

शलाका पुरुषों की भांति ही श्रीकृष्ण का शरीर मान, उन्मान और प्रमाण में पूरा सुजात और सर्वांग सुन्दर था। वे लक्षणों और गुणों से युक्त थे। उनका शरीर दस धनुष लम्बा था। वे बड़े ही कान्त, सौम्य, सुभग स्वरूप वाले अत्यन्त प्रियदर्शी थे। वे प्रभल्म, धीर और बिनयी थे। वे सुखशील थे, किन्तु प्रमादी नहीं अपितु उद्योगी प्रवृत्ति के थे। उनकी वाणी गंभीर, मधुर और स्नेहयुक्त थी, और वे सत्यवादी थे। उनकी गति श्रेष्ठ गजेन्द्र-गति सी लगती थी। उनका मुकुट कौस्तुभ मणि जटित था। उनके कानों में कुंडल और वक्ष पर एकावली सुशोभित रहती थी। वे धनुर्धर थे। वे शंख चक्र गदा शक्ति और पद्म धारण करते थे। वे उच्च गरुड़ ध्वजा के धारक थे। 'प्रश्नव्याकरण' के एक उल्लेख के अनुसार श्रीकृष्ण शत्रुओं का मर्दन करने वाले, युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने वाले, अजित और अजितस्थ थे। एतदर्थ वे महारथी भी कहलाते थे।<sup>१</sup> श्रीकृष्ण सर्वगुण संपन्न, श्रेष्ठ चरित्र वाले, दयालु, शरणागत-वत्सल, धर्मात्मा, कर्तव्यपरायण, विवेकशील और नीतिवान थे।

## वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण जैनियों की दृष्टि में

उपर्युक्त स्वरूप में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व जैन ग्रन्थों में चित्रित मिलता है। जैन दृष्टि से श्रीकृष्ण 'वीरश्रेष्ठ' रूप में सम्मान्य हैं। वे शलाका-पुरुष<sup>२</sup> व नवम वासुदेव हैं।<sup>३</sup> वासुदेव परम्परा का प्रत्येक महापुरुष महान वीर, अर्द्धचक्रवर्ती शासक होता है। श्रीकृष्ण का भी यही स्वरूप रहा है। वैयासकिरी (विन्ध्याचल) से समुद्र पर्यन्त समस्त दक्षिण भारत के वे एक-छत्र-अधिपति थे।

बारवइए नयरीए अद्वभरहस्स य समस्स य आहेवच्चं जाव विहरइ ।

—अन्तकृद्वशा सूत्र

दक्षिण भरताद्ध के स्वामी श्रीकृष्ण का उत्तर भारत की राजनीति में भी वर्चस्व रहा। उन्होंने अपने सशक्त प्रतिद्वन्दी जरासंध व उसके सहायक कौरवों को पराभूत करके हस्तिनापुर के राज्यासन पर पांडवों को प्रतिष्ठित कर दिया था। यही नहीं, अपितु ३० भारत के तथा अन्य अनेक अनीतिकारी और अत्याचारी शासकों का नाशकर उनके स्थान पर अनेक उत्तराधिकारियों को शासक बनाकर भी श्रीकृष्ण ने अपना यह वर्चस्व सिद्ध कर दिया था। एक प्रकार से उन्हें अखिल भारतीय राजनैतिक महत्ता प्राप्त थी। उन्होंने देश की विशृंखलित राजनैतिक शक्तियों को संगठित करने का स्तुत्य और सफल प्रयत्न भी किया। जैन साहित्य की एक ओर भी यह उपलब्धि रही है कि इसके माध्यम से भारतीय इतिहास के कतिपय ऐसे तथ्य प्रकाश में आए हैं, जो सामान्यतः लुप्त प्राय रहे हैं। ये सामान्य ऐतिहासिक तथ्य इस प्रकार हैं:

- (१) तत्कालीन जैन धर्म के उच्चतम नेता भगवान अरिष्टनेमि वासुदेव श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे।
- (२) ये २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के रूप में इतिहासख्यात रहे हैं। यह बात और है कि कतिपय विद्वज्जन भगवान महावीर

२. शलाकापुरुष का तात्पर्य महापुरुष से है। जैन परंपरा में ६३ शलाका पुरुष हुए हैं। इसमें से २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ वासुदेव, ६ बलदेव, ६ प्रतिवासुदेव भी होते हैं।

३. नवमो वासुदेवोयमिति देवा जगुस्तदा ।

—हरिवंशपुराण ५५।६०

स्वामी के पूर्व के २३ तीर्थंकरों के विषय में प्रामाणिकता नहीं मानते।

- (३) वस्तुतः यह हमारे इतिहास का अपूर्णताजनित भ्रम है।  
 (४) अन्यथा भगवान् पार्श्वनाथ एवं भगवान् नेमिनाथ की ऐति-  
 सिक प्रामाणिकता में संदेह के लिए अब कोई अवकाश ही नहीं  
 रह गया है। ऋग्वेद और यजुर्वेद जैसे प्राचीन ग्रन्थों में अरिष्ट-  
 नेमि के संदर्भ प्राप्त होते हैं।

### भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण अन्योन्याश्रित

वस्तुस्थिति यह है कि श्रीकृष्ण के प्रसंगों के बिना भगवान् अरिष्ट-  
 नेमि चरित अपूर्ण ही रह जाता है। साथ ही जहाँ श्रीकृष्ण चरित वर्णित हुआ  
 है वहाँ अरिष्टनेमि प्रसंग उसके अनिवार्य-अंग के रूप में विद्यमान रहा है।  
 कतिपय ग्रन्थों में तो श्रीकृष्ण की महत्ता भगवान् अरिष्टनेमि की अपेक्षा भी  
 अधिक उभरी है। उनकी अपनी गरिमा तो रही है, साथ ही भगवान्  
 नेमिनाथ के जीवन और परिवार से संबद्ध रहने के कारण भी जैन साहित्य  
 में श्रीकृष्ण को पर्याप्त सम्माननीय स्थान और गौरव प्राप्त हुआ है।  
 भगवान् के अत्युच्च गरिमापूर्ण धर्मव्यक्तित्व के प्रति श्रीकृष्ण के मन में  
 सदा श्रद्धा का स्थान रहा है। भगवान् द्वारा संकेतित करुणा और अहिंसा  
 के मार्ग पर श्रीकृष्ण भरसक गतिशील रहे। यह इस बात का प्रतीक  
 है कि श्रीकृष्ण धर्म के प्रति अतिशय रुचिशील थे। वे करुणा, मैत्री और  
 अहिंसा की महती भावनाओं से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने  
 हिंसापरित यज्ञों का विरोध करते हुए उन यज्ञों की उत्तमता का समर्थन  
 किया जिनमें जीवहिंसा का समावेश नहीं था। यहीं नहीं, उन्होंने यज्ञों की  
 अपेक्षा कर्म को अधिक महत्वपूर्ण माना और कर्म के लिए वे सबल प्रेरक बने।  
 जब जब भगवान् नेमिनाथ स्वामी का द्वारका आगमन हुआ, श्रीकृष्ण समस्त  
 राजकाज छोड़कर भगवान् के दर्शनार्थ उनकी सभा में जाते थे। ऐसे अनेक  
 प्रसंग आगमतर ग्रन्थों में वर्णित मिलते हैं।<sup>४</sup> वासुदेव होने के नाते वे स्वयं  
 संयम मार्ग के अनुयायी नहीं हो सके, किंतु उन्होंने स्वयं ही भगवान् के  
 समक्ष संकल्प ग्रहण किया था कि “मैं इस मार्ग के अनुसरण हेतु अधिकाधिक

४. अन्तगड सूत्र—३, २३, ५२, ६८ देखिए।



जनों को प्रेरित करता रहूंगा।” उनकी पुत्रियों द्वारा संयम ग्रहण इसका सबल प्रमाण है। उनके कुटुंब के अनेक सदस्यों ने भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की जिनमें उनकी रानियाँ पुत्रादि भी सम्मिलित हैं। श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का यह उज्ज्वल पक्ष उन्हें जैन साहित्य में प्रमुख स्थान दिलाने में बड़ा सहायक रहा है। यही कारण है कि पांडवों, प्रद्युम्नकुमार, गजसुकुमाल आदि से संबद्ध इन रचनाओं में भी श्रीकृष्ण का वृत्तांत सविस्तारपूर्वक दिया गया है। श्रीकृष्ण में जो धर्मानुराग की विशेषता है, उसके कारण जैन ग्रन्थकारों ने उनका चरित्र अपने अनुरूप पाया और उसका खूब बखान किया। प्राचीन और अर्वाचीन सभी भाषाओं के जैन साहित्य में कृष्ण-चरित्र विवेचन मिलता है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिंदी व कन्नड, तमिल तेलगु, गुजराती, मराठी आदि प्रादेशिक भाषाओं में भी ऐसे जैन ग्रन्थों की भरमार है जिनमें श्रीकृष्ण चरित्र किसी न किसी रूप में अपनाया गया है।

### श्रीकृष्ण महत्व

आगमेतर प्राकृत जैन साहित्य में श्रीकृष्ण को समुचित महत्व दिया गया है। एतएव इसी स्तर पर यहाँ विवेचन है। इस वर्ग के साहित्य में भी श्रीकृष्ण का वैसा ही शुभ्र धवल करुणाशील और पराक्रमी स्वरूप स्थापित हुआ है, जो आगमों में प्रतिष्ठित हो चुका था। आगमेतर साहित्य के लिए आगम ही आदर्श और आधारभूत स्रोत रहे हैं। अतः मूल ग्रन्थों के साथ इन आगमेतर ग्रन्थों में इतना साम्य भी स्वाभाविक ही लगता है। आगमेतर ग्रन्थों का एक सारा विभाग तो ऐसा है जिसमें आगमों की व्याख्या के ही अनेक रूप मिलते हैं। यथा—निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका, आदि। इनके अतिरिक्त भी अनेक स्वतंत्र आगमेतर ग्रन्थों में श्रीकृष्ण चरित्र उपलब्ध होता है, ऐसे ग्रन्थों में ‘हरिवंश चरिय’ सर्वप्रथम ग्रन्थ माना जाता है जिसके रचनाकार विमल सूरि थे, किंतु यह कृति अनुपलब्ध है। श्री नाथूराम प्रेमी के मतानुसार (जैन साहित्य और इतिहास के पृ० ८७) चरिय साहित्य की परंपरा में लेखक की रचना ‘पउम चरिय’ को भी उल्लेखनीय स्थान प्राप्त है।

### (१) वसुदेव हिण्डी-संघवास गणी

प्रस्तुत ग्रन्थ आगमेतर रचनाओं में ऐसी प्राचीनतम उपलब्ध कृति है जिसमें श्रीकृष्ण जीवन के प्रसंगों का चित्रण है। वसुदेव हिण्डी का रचना-

काल ईसा की ५वीं शताब्दी माना जाता है।<sup>५</sup> ग्रन्थ के पूर्वभाग के रचनाकार संघदास गणि वाचक रहे हैं, किंतु इसके उत्तरभाग की रचना धर्मसेन गणि द्वारा हुई ऐसी मान्यता रही है। वसुदेव श्रीकृष्ण के पिता थे। उन्हीं का भ्रमण वृत्तांत प्रस्तुत ग्रन्थ में है। देवकी लम्बक में श्रीकृष्ण के जन्म आदि का वर्णन है। पीठिका में प्रद्युम्न, शांबकुमार की कथा और श्रीकृष्ण की ६ अग्रमहिषियों का वर्णन है। साथ ही रुक्मिणी से प्रद्युम्नकुमार का जन्म, उसका अपहरण, माता-पिता से उसका पुनर्मिलन आदि की घटनाओं का भी वर्णन मिलता है। प्रद्युम्नकुमार के पूर्वभवों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार जाम्बवती से शाम्बकुमार का जन्म और उसके जीवन की अन्यान्य घटनाएं भी वर्णित की गयी हैं। इसके अतिरिक्त हरिवंश की उत्पत्ति, कंस के पूर्वभव और कौरव पांडवों का वर्णन भी किया गया है।

वसुदेव हिण्डी के पूर्व भाग में २६ लंभक और ११ हजार श्लोक और उत्तर भाग में ७१ लंभक और १७ हजार श्लोक हैं। इस ग्रन्थ की शैली में गुणाढ्य कृत बृहत्कथा की शैली के दर्शन होते हैं। कथासरित्सागर की भूमिका में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी इस वास्तविकता की ओर संकेत किया है।<sup>६</sup> वसुदेव हिण्डी की भाषा प्राचीन महाराष्ट्रीय प्राकृत है।<sup>७</sup>

कथा का विभाजन ६ अधिकारों में किया गया है—कहुप्पत्ति (कथा-उत्पत्ति), पीढिया (पीठिका), मुँह (मुख), पडिमुह (प्रतिमुख), सरीर (शरीर) और उवसहार (उपसंहार)। कथोत्पत्तिपूर्ण होने पर धम्मिल्ल-हिण्डी (धम्मिल चरित) प्रारंभ होता है और इसके पूर्ण होने पर क्रमशः पीठिका मुख प्रतिमुख प्रारंभ होते हैं। उसके बाद प्रथम खण्ड के प्रथम अंश में सात लंभक हैं। यहीं से शरीर विभाग प्रारंभ होता है जो दूसरे अंश के २६वें लंभक तक चलता है। वसुदेव के परिभ्रमण की आत्मकथा का विस्तार इसी

५. प्राकृत साहित्य का इतिहास—डॉ० जगदीशचंद्र जैन, पृ० ३८२।

६. कथा सरित्सागर की भूमिका : लेखक—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल।

७. वसुदेव हिण्डी : मुनि पुण्यविजय जी द्वारा संपादित, आत्मानंद जैन ग्रंथ माला भावनगर की ओर से सन् १९३०-३१ में प्रकाशित। इसका गुजराती भाषांतर प्रोफेसर सांडेसरा ने किया है जो उक्त ग्रंथमाला की ओर से ही भावनगर से वि० सं० २००३ में प्रकाशित हुआ है। देखिये गुजराती अनुवाद।

विभाग से प्रारंभ होता है। उक्त लंभकों में १६ और २०वें लंभक अनुपलब्ध हैं तथा २८वां लंभक अपूर्ण है।

इसके द्वितीय खण्ड में नरबाहनदत्त की कथा वर्णित है। उसमें शृंगार-कथा की मुख्यता है तथापि इस कथा में धर्म का उपदेश भी यथास्थान सम्मिलित किया गया है। कुल मिलाकर दोनों खण्डों में १०० लंभकों का समावेश है। द्वितीय खण्ड के अनुसार वसुदेव १०० वर्ष तक परिभ्रमण करते हैं तथा १०० कन्याओं के साथ उनका विवाह होता है। गद्यात्मक समासांत पदावलि में लिखी गयी इस विशिष्ट रचना की भाषा सरल, स्वाभाविक व प्रसादगुण युक्त है। मुख्य कथा के साथ अनेक अंतर्कथाएँ तीर्थकर शलाका-पुरुषों की भी हैं। साथ ही जैन धर्म संबंधी महाव्रतों का स्वरूप, परलोक सिद्धि, मांसभक्षण दोष आदि तत्त्वों का विवेचन भी किया गया है। कहुप्पत्ति के अंत में वसुदेव चरित की उत्पत्ति बतलाई गयी है। मुख नामक अधिकार में शंब और भानु की क्रीडाओं का वर्णन है। भानु के पास शुक था और शंब के पास सारिका, दोनों सुभाषित कहते हैं। यथा :

उष्कामिव जोइभालिणीं सुभुयंगामिव पुष्पियं लतं ।

विबुधो जो कामवर्त्तिणि, मुयइ सो सुहिओ भविस्सइ ॥

अर्थात् अग्नि से प्रज्वलित उल्का की भाँति और भुजंगी से युक्त पुष्पित लता की भाँति जो पंडित कामवर्त्तिनी (काममार्ग) का त्याग करता है वह सुखी होता है।

प्रतिमुख में अंधकवृष्णि का परिचय देते हुए कवि ने उसके पूर्वभव का संबंध बताया है।

शरीर अध्ययन प्रथम लंभक से आरंभ होकर २६वें लंभक तक पूर्ण होता है। सामा विजया नाम के प्रथम लंभक में समुद्रविजय आदि नौ वसुदेवों के पूर्वभवों का वर्णन है। वसुदेव घर का त्यागकर चलते हैं। सामली का परिचय सामली लंभक में दिया गया है। विष्णुकुमार का चरित गंधर्वदत्ता लंभक में है। नीलांजना लंभक में ऋषभदेव का वर्णन करते हुए उनके जन्म, राज्याभिषेक, प्रव्रज्या आदि का वर्णन है। उग्र, भोग, राजन्य और नाग ये चार गण कौशल जनपद में राज्य करते थे। ऋषभदेव ने प्रजा को अनेक प्रकार की कलाएँ सिखलायी।

सोमसिरि लंभक में आर्य अनाय, वेदों की उत्पत्ति, ऋषभ का निर्वाण, बाहुबलि और भरत का युद्ध, नारद, पर्वत और बसु का संबंध तथा वसुदेव के वेदाध्ययन का प्ररूपण है। सप्तम लंभक के पश्चात् प्रथम खण्ड का द्वितीय अंश आरंभ होता है। पउमा लंभक में धनुर्वेद की उत्पत्ति बताई है। पुंडा लंभक में पौरागम (पाकशास्त्र) में विशारद नंद और सुनंद का नामोल्लेख है। पुंड्रा की उत्पत्ति तथा नमि जिनेन्द्र द्वारा प्रदत्त चातुर्यामि धर्म का उपदेश वर्णित है। सोमसिरि लंभक में इन्द्रमह का उल्लेख है। मयण गा लंभक में सनत्कुमार चक्रवर्ती का व्यायाम शाला में पहुँचकर तेलमर्दन कराना, कान्त्यकुब्ज की उत्पत्ति का वृत्तान्त, राम का जीवन वृत्त, आदि वर्णन उपलब्ध होते हैं। बालचंदा लंभक में मांसभक्षण निषेध का उपदेश दिया गया है। बंधुमती लंभक में वसुदेव द्वारा दिया गया तापसों को उपदेश व महाव्रतों का विवेचन है। साथ ही मृगध्वजकुमार तथा भद्रकमहिष के चरित-वर्णन भी हैं।

१६ व २०वाँ लंभक नष्ट हो गया है। केवल मती लंभक में शांतिजिन का जीवन चरित, त्रिविष्टप् तथा वासुदेव का परस्पर संबंध, मेघरथ के आख्यान में जीवन की प्रियता को बतलाते हुए कवि ने लिखा है:<sup>८</sup>

हंतूण परप्पाणे अप्पाणं जो करइ सप्पाणं।

अप्पाणं दिवसाणं, कएण नासेइ अप्पाणं॥

दुक्खस्स उन्वियेतो, हेतूण परेइ पडियाएँ।

पाविहिति पुणो दुक्खं, बहुययरं तन्निमित्तेण॥

अर्थात् जो दूसरों के प्राणों की हत्या करके अपने को सप्राण करना चाहता है, वह आत्मा का नाश करता है। जो दुःख से खिन्न हुआ, वह दूसरे की हत्या करके प्रतिकार करता है, वह उसके निमित्त से और अधिक दुःख पाता है।

पउमावती लंभक में हरिवंश कुल की उत्पत्ति का कथानक है। देवकी लंभक में कंस के पूर्वभव का विवेचन है।

अस्तु, भाव भाषा की दृष्टि से यह एक अति उत्तम कृति है जो जन धर्म की साहित्य गरिमा को उजागर करती है।

८. वसुदेव हिण्डी—मेघरथ आख्यान—वही।

## (२) चउप्पन्नमहापुरिस चरियं<sup>९</sup>

आचार्य शीलांक द्वारा रचित यह एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें ६३ शलाकापुरुषों में से ६ प्रतिवासुदेवों को छोड़कर ५४ महापुरुषों के जीवन-चरित वर्णित हुए हैं। ६ वासुदेवों के वर्णन के अंतर्गत ही प्रतिवासुदेवों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इसका रचनाकाल सन् ८६८ बताया जाता है। इसके ४६-५०-५१वें अध्याय में अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण वासुदेव के चरित वर्णित हुए हैं। ग्रन्थ की भाषा साहित्यिक प्राकृत है। यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि जैन साहित्य में महापुरुषों की मान्यता के स्वरूप को लेकर दो विचार धाराएँ प्रचलित रही हैं। प्रथम विचार-धारा में प्रतिवासुदेवों की वासुदेवों के साथ गणना करके ५४ शलाका पुरुष मानती है, और दूसरी विचारधारा प्रतिवासुदेवों की गणना स्वतंत्र रूप से करके ६३ शलाकापुरुषों को मान्यता प्रदान करती है। प्रस्तुत कृति में ५४ शलाकापुरुषों के जीवन-सूत्र ग्रथित किए गए हैं। रचनाकार शीलांक आचार्य निवृत्तिकुलीन मानदेवसूरि के शिष्य थे। इनके दूसरे नाम जैसे शीलाचार्य और विमलमति भी उपलब्ध होते हैं।

प्रस्तुत काव्य में भगवान् ऋषभदेव, भरतचक्रवर्ती, शान्तिनाथ, मल्लिस्वामी और पार्श्वनाथ के चरित पर्याप्त विस्तार पूर्वक वर्णित किए गए हैं। प्रस्तुत चरित काव्य की विशेषताओं को इस प्रकार देखा जा सकता है—

- (१) इसमें सूर्योदय, वसन्त, वन, सरोवर, नगर, राजसभा, युद्ध, विवाह, विरह, समुद्रतल, आदि के सुन्दर काव्यात्मक वर्णन मिलते हैं।
- (२) महाकाव्य की गरिमामयी शैली में वस्तुवर्णन है।
- (३) सांसारिक संघर्ष के बीच, जीवन के उन परमतत्वों का विवेचन किया गया है जिनके कारण जन्म-मरण, शुभाशुभ कर्मों का आवागमन बना रहता है।
- (४) पात्रों का चरित्र चित्रण सुन्दर है।
- (५) प्रसंगवश इसमें विबुधानन्द नामक एकांकी नाटक भी निबद्ध है।

(६) चरित में उदात्त तत्त्व उपलब्ध है। परिसंवादों में अनेक नैतिक तथ्यों का समावेश हुआ है। उदाहरणार्थ एक संवाद द्रष्टव्य है—

धन सार्थवाह के एक प्रधान कर्मचारी से एक वणिक के ईर्ष्याविशपूछने पर कि सार्थवाह के पास कितना धन है ? उसमें कौन-कौन से गुण हैं ? वह क्या दे सकता है ? इन प्रश्नों के उत्तर में मणिभद्र सार्थवाह के सम्बन्ध में उत्तर देता हुआ कहता है कि मेरे सेठ के पास एक वस्तु है—विवेक भाव। और, जो नहीं है वह वस्तु है—अनाचार। दो वस्तुएं—परोपकारिता तथा धर्म की अभिलाषा तो है, पर अहंकार व कुसंगति नहीं है। उनमें कुलशील एवं रूप तो है, पर दूसरे को नीचा दिखाना, ओध्दत्य और परदारागमन ये दोष नहीं हैं। यथा—

भणिओ य तेण मणिभद्रो जहा—अहो मुद्ध मुह ! किं तुम्ह सत्थवाहस्स अत्थ-  
जायमत्थि ? केरिसा वा गुणा ? किं पभूयं वित्ते, किं वा दाउं समत्थोत्ति । .....  
इह अम्ह सामियस्स एकं चेव अत्थि विवेइत्तं, एवकं च णत्थि अणायारो । ....<sup>10</sup>

अस्तु, भाव-भाषा व काव्य का विविध विधाओं से युक्त आचार्य शीलांक की यह एक महत्त्वपूर्ण कृति जैन साहित्य भण्डार को गौरव प्रदान करती है। इसका गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

### (३) ऋउप्पन्नमहापुरिस चरिय—आम्रकवि

प्राकृत भाषा में निबद्ध इस ग्रन्थ के १०३ अधिकारों में चौपन महा-पुरुषों के चरित्र वर्णित हैं। इसका मुख्य छन्द गाथा है। श्लोक परिमाण १००५० है जिसमें ८७३५ गाथाएं और १०० इतरवृत्त हैं। ग्रन्थ के आदि अन्त में अम्म शब्द के अलावा कवि ने अपनी कोई विशेष जानकारी नहीं दी है। ग्रन्थ समाप्ति के उपसंहार में बतलाया गया है कि ६ प्रतिवासुदेवों को जोड़ देने से तिरसठ शलाका पुरुष बनते हैं।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि वि० सं० ११६० में रचित 'आख्यान-मणिकोश' वृत्तिकार आम्रदेव और प्रस्तुत कृति के रचयिता एक ही हैं।

१०. सेठ देवचंद लालभाई, बंबई-सन् १९६८, अनु० आचार्य हेमसागरसूरि।

किन्तु उवत वृत्ति में अम्म और आम्नदेव के अभिन्न होने का कोई आधार नहीं मिलता है।<sup>११</sup>

इस ग्रन्थ की अनुमानतः १६वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रति खम्भात के विजयनेमिसूरि शास्त्र संग्रह में उपलब्ध है।<sup>१२</sup>

#### (४) भवभावना

मलधारी आचार्य हेमचन्द्र सूरि द्वारा रचित इस ग्रन्थ का रचना-काल विक्रम संवत् ११७० सन् ११२३ माना जाता है, ग्रन्थकर्त्ता ने इसमें १२ भावनाओं का विवेचन किया है। कृति में कुल ५३१ गाथाएं वर्णित हैं। इसमें हरिवंश का वर्णन सर्वास्तार मिलता है। कंस वृत्तांत, वसुदेव चरित, देवकी वसुदेव विवाह, कृष्णजन्म, कंसवध, नेमिनाथ चरित आदि विविध प्रसंग इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय हैं। उवत कृति में हरिवंश की उत्पत्ति को दस आश्रयों में गिनाया गया है। इस प्रसंग पर दशार्ह राजाओं का उल्लेख है। कंस का वृत्तांत, वसुदेव का चरित्र, चारुदत्त की कथा, देवकी का विवाह, कृष्ण का जन्म, नेमिनाथ का जन्म, कंसवध, राजीमती का जन्म, नेमिनाथ के वैराग्य आदि का वर्णन करते हुए कवि ने स्थान-स्थान पर अपनी काव्य प्रतिभा का भी परिचय दिया है। कथानक में भरत चक्रवर्ती को आर्यवेदों का प्रवर्तक, तथा मधुपिंग और पिप्पलाद को अनार्यवेदों का कर्त्ता बताया गया है। वसुदेव ने इन दोनों का अध्ययन किया। इसमें वाचा, दृष्टि, निजूह (मल्लयुद्ध) और शस्त्र इन चार प्रकार के युद्धों का उल्लेख है। मल्लों में निजूह-युद्ध, वादियों में वाक्युद्ध, अधम जनों में शस्त्रयुद्ध तथा उत्तमपुरुषों में दृष्टियुद्ध होता है। रैवतक पर्वत पर वसन्तत्रीडा, जलत्रीडा आदि का सुन्दर चित्रण है। १२ भावनाओं का इसमें सविस्तार से वर्णन करते हुए कवि ने अनेक सुभाषित दिए हैं जिनमें से कुछ द्रष्टव्य हैं—

जस्स न हिययंमि बलं कुणंति किं हंत तस्स सत्थई ।

निअसत्थेणज्वि निहणं पावंति पहीणमाहप्पा ॥

११. प्राकृत टैक्ट सोसायटी वाराणसी—आख्यानमणिकोश की भूमिका, पृ० ४२

१२. डॉ० गुलाबचन्द चौधरी, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग ६, पृ० ७२

जिसके हृदय में शक्ति नहीं, उसके शस्त्र किस काम में आएंगे ? अपने शस्त्र होने पर भी क्षीण शक्ति वाले पुरुष मृत्यु को प्राप्त होते हैं।<sup>१३</sup>

पद्मं वि आवयाणं चिन्तेयव्वो नरेण पडियारो ।

न हि गेहम्मि पलित्ते अवहं खणिउं तरइ कोई ।

—विपत्ति के आने के पूर्व ही उसका उपाय सोचना चाहिए। घर में आग लगने पर क्या कोई कुंआ खोद सकता है ?

### (५) उपदेशमाला (पुष्पमाला) प्रकरण

मलधारी आचार्य अपनी इस एक अन्य कृति के लिए भी प्रसिद्ध है, कृति के तप द्वार में वासुदेव के चरित का वर्णन हुआ है।<sup>१४</sup>

प्रस्तुत कृति विषय, शैली और कवित्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। दान, शील, तप और भावना इन ४ विषयों पर कवि का विवेचन अधिक मार्मिक दृष्टांतों के द्वारा विवेचित है। सुमात्रदान का फल अनेक दृष्टांतों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। शील द्वार में शील माहात्म्य के उदाहरण दिए गए हैं। तपद्वार में वसुदेव, दृढ़प्रहारी, विष्णुकुमार और स्कंदक आदि के चरित्र हैं। भावना के अंतर्गत सम्यकत्वशुद्धि आदि १४४ द्वारों का प्ररूपण है। इंद्रियज के उपदेश में ५ इंद्रियों के स्वरूप को समझाया गया है। कपाय निग्रह द्वार में कषायों के स्वरूपों का प्रतिपादन किया गया है। कुलवास-लक्षण द्वार में गुरु के गुणों का प्रतिपादन करते हुए शिष्य को विनीत बनने का उपदेश दिया गया है। उसे कहा गया है कि गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से प्रतिपालन करना चाहिए। गुरु के कुपित होने पर भी शांत रहना चाहिए। दोष-विघटन-लक्षण द्वार में आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत के भेदों से ५ प्रकार व्यवहार के बतलाये गये हैं। यहाँ आर्द्रकुमार का उदाहरण द्रष्टव्य है। विराग-लक्षण द्वार में लक्ष्मी को कुलटा नारी की उपमा दी गयी है।

१३. भवभावना, प्र० ऋषभदेवजी केशरीमल जी जैन श्वे० संस्था, रतलाम

१४. उपदेशमाला प्रकरण, प्र० ऋषभदेवजी केशरीमलजी संस्था, रतलाम सन् १९३६।



विनय लक्षण प्रतिद्वार में विनय का स्वरूप, स्वाध्याय-रति लक्षण द्वार में वैय्यावृत्य, स्वाध्याय और नमस्कार का माहात्म्य बतलाया गया है। अनायतन त्याग-लक्षण द्वार में कुसंग का फल, महिला संसर्ग के त्याग का प्रतिपादन है। पर-परिवाद निर्वृत्ति लक्षण में परदोष कथा को गहिंत कहा है। धर्म स्थिरता लक्षण द्वार में जिन पूजा आदि का महत्त्व दिखलाया गया है परिज्ञान लक्षण द्वार में आराधना की विधि का प्रतिपादन है। एक प्रकार से इस कृति में जैन आचार लक्षणों का प्रतिपादन हुआ है।

### (६) कुमारपालपडिबोह (कुमारपालप्रतिबोध)

कुमारपालपडिबोह के रचनाकार सोमप्रभसूरि आचार्य विजयसिंह सूरि के शिष्य थे। कुमारपाल प्रतिबोध की रचना सन् ११८४ संवत् १२४१ की मानी जाती है। आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने गुजरात के राजा कुमारपाल को समय-समय पर जो शिक्षाएँ और उपदेश दिए; उनका इन्होंने व्यवस्थित संकलन तैयार किया और प्रस्तुत ग्रन्थ ने आकार ग्रहण कर लिया। इस ग्रन्थ में दृष्टांत रूप में ५४ कथाएँ भी कही गयी हैं। इसी क्रम में मदिरापान के घातक परिणाम बताते हुए द्वारका दहन की कथा वर्णित हुई है और तप की महत्ता प्रतिपादित करने के प्रयत्न में हविमणी की कथा कही गई है।<sup>15</sup>

### (७) कण्हचरित (कृष्णचरित)

प्रस्तुत कृति के रचनाकार देवेन्द्रसूरि जगत्चंद्रसूरि के शिष्य माने जाते हैं। जैन पुराणों में वर्णित कृष्णकथा को ही प्रस्तुत कृति में स्थान मिला है। कण्हचरित के रचनाकाल के विषय में इतिहास मौन है। किंतु इस तथ्य से इस सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है कि रचनाकार देवेन्द्र-सूरि का स्वर्गवास सन् १२७० में हुआ था। कण्हचरित में कृष्णकथा की अतिव्यापक परिधि समाविष्ट है।<sup>16</sup> इसमें कोई संदेह नहीं है कि वसुदेव के

१५. कुमारपाल पडिबोह (कुमारपाल प्रतिबोध) सम्पा० मुनि जिनविजय जी, सन् १९२० में ओरिएण्टल गायकवाड सीरिज में प्रकाशित—बड़ौदा, गुजराती अनुवाद—प्र० आत्मानन्द सभा, बंबई।

१६. कण्हचरित—ले० देवेन्द्र सूरि, प्र० केशरीमल संस्था, रतलाम, सन् १९३०

पूर्वभव, कंस जन्म, वसुदेव का भ्रमण, अनेक कन्याओं के साथ उनका पाणि-ग्रहण, कृष्ण जन्म, कंस-वध, द्वारका निर्माण, कृष्ण की अग्र महिषियाँ, प्रद्युम्न जन्म, जरासंध के साथ युद्ध, नेमिनाथ और राजीमती के विवाह की चर्चा आदि अनेक प्रसंग चित्रित हुए हैं। इन मुख्य कथासूत्रों के साथ-साथ कतिपय गौण प्रसंग भी इस कृति के विषय बने हैं। जैसे—कृष्ण बलदेव के पूर्वभव, पाण्डवों का वर्णन, द्रौपदीहरण व श्रीकृष्ण द्वारा उसका उद्धार, गजसुकुमार चरित, थावच्चापुत्र का वृत्तांत, श्रीकृष्ण के देहावसान पर बलदेव का विलाप और नेमिनाथ का वर्णन आदि।<sup>17</sup>

अस्तु, उपर्युक्त कुछ ऐसी रचनाएँ हैं जो स्वतन्त्र व प्राकृत में रचित हैं और जिनसे श्रीकृष्ण के जीवन और चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। ये आगमेतर साहित्य के अंतर्गत परिगणित होती है। आगमेतर साहित्य के अन्तर्गत ही आगमों की टीका, भाष्यादि व्याख्यात्मक ग्रन्थ भी माने जाते हैं। इनका सम्बन्ध इनके मूल आगम ग्रन्थों से ही है और रचनाकार उसी सीमा में बद्ध रहे हैं। अतः इन्हें स्वतन्त्र साहित्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। ऐसे व्याख्यात्मक, साहित्यिक भाग में भी कतिपय महत्वपूर्ण ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं, जिनमें श्रीकृष्ण चरित की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार की उल्लेखनीय स्थान प्राप्त कतिपय रचनाएँ हैं—

- (१) कथाकोष प्रकरण।
- (२) कथारत्न कोष।
- (३) आख्यानमणि कोष आदि।

इन रचनाओं में श्रीकृष्ण जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रसंग की सामग्री यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है।

इस तरह यह देखा जा सकता है कि आगम जैन कृष्ण साहित्य में समग्र कृष्ण जीवन चरित में से कृष्ण जीवन के कुछ प्रमुख प्रसंग ही जैन कृष्ण साहित्य के विवेच्य विषय बने हैं। दूसरे और तीसरे अध्याय

१७. कण्ठ चरित—ले० देवेन्द्र सूरि, प्र० केशरीमल संस्था, रतलाम, सन् १९३०

में मैंने अपनी सुविधानुसार आगम और आगमेतर श्रीकृष्ण विषयक प्राकृत ग्रन्थों का सहारा लेकर अपने अनुशीलन के विषय को समझने और समझाने का प्रयास किया है। इसमें जो तथ्य उभरे हैं उन्हें मैंने यथासंभव यथास्थान यथोचित मात्रा में अभिव्यक्त कर दिया है। अगले अध्याय में संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य का विशद साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया जावेगा।

— — — — —

## संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य

जैन संस्कृत प्रतिनिधिक कृष्ण काव्य एक अध्ययन

भूमिका

अब तक हमने संस्कृत साहित्य में जैन कृष्ण काव्यों के योगदान पर ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत किया है, पर जिन प्रातिनिधिक जैन कृष्ण काव्यों को हमने अपने अध्ययनार्थ लिया है उनका विशेष अध्ययन अब यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

रविषेणाचार्य कृत “पद्मपुराण चरित” को चरित काव्य की दृष्टि से संस्कृत जैन काव्य का आदि ग्रन्थ माना गया है। जिनसेनाचार्य ने अपने हरिवंश पुराण की भूमिका में बतलाया है कि पद्मपुराण में रामचरित विवेचित है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० ८४० में की गयी थी। पर श्रीकृष्ण, चरित परंपरा को लेकर आचार्य जिनसेन का “हरिवंश पुराण” ही जैन संस्कृत कृष्ण काव्य का आदि ग्रंथ माना जाता है। मेरे इस कथन की पुष्टि श्री नाथूराम प्रेमी ने अपने प्रकाशित ग्रन्थ जैन साहित्य और इतिहास ग्रन्थ में कर दी है।<sup>१</sup>

संस्कृत साहित्य में काव्य की अनेक विधाएं मिलती हैं जो अपनी सरसता व काव्य के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध हैं। इनका प्रभाव जैन साहित्य-कारों पर भी पड़ा। उन्हीं के अनुकरण पर जैन लेखकों ने भी संस्कृत भाषा में भिन्न-भिन्न काव्य-विधाओं में श्रीकृष्ण साहित्य की सर्जना की। यहाँ

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४२०-२८, ले० नाथूराम प्रेमी

पर मैं इस अध्याय में काव्य-विधा की दृष्टि से निम्नलिखित रूप ले रहा हूँ जो क्रमशः इस प्रकार हैं।

चरित नामान्त महाकाव्य, इतर नामान्त महाकाव्य, सन्धान काव्य तथा अनेकार्थ पौराणिक महाकाव्य।

### चरित महाकाव्य

इस विधा में मेरे अध्ययन में केवल एकमात्र कृति उपलब्ध हुई है जिसका मेरे अध्येतव्य विषय से संबंध है। अन्य जैन रचनाकारों की अन्य चरित्रों पर कई रचनाएं उपलब्ध हैं पर मेरे लिए उनका अध्ययन मेरी परिधि से बाहर होने से मैंने उनको अपने अध्ययन का विषय नहीं बनाया। चरित महाकाव्यों की संस्कृत साहित्य में एक अपनी पद्धति रही है। जैन संस्कृत साहित्यकारों ने चरित्र विश्लेषण की अपनी एक मौलिक पद्धति को अपनाया है।

### (१) प्रद्युम्न चरित

लेखक ने प्रद्युम्न चरित के साथ पूरा न्याय किया है, प्रद्युम्न चरित का लेखक लाटवागड संघ के सिद्धांतों के पारगामी आचार्य जयसेन मुनि के शिष्य गुणाकर सेन और उनके शिष्य महासेन सूरि ही इस महाकाव्य के लेखक थे। महासेन सूरि सिन्धुराज मुंज के द्वारा सम्मानित किए गए, इनके महामात्य पर्यट ने भी इनके चरणों की पूजा करके इनका सम्मान किया था तथा इस कृति को रचने की प्रेरणा भी दी थी। प्रद्युम्न चरित के प्रत्येक सर्ग के अन्त में आने वाली पुष्पिका में इस प्रेरणा का उल्लेख मिलता है।<sup>२</sup>

इतिहास के अनुसार इस कृति का रचनाकाल वि० सं० १०३१ (६७४ ई०) अनुमानाश्रित है।<sup>३</sup> प्रमाण में यह बतलाया जाता है कि राजा मुंज ई० सं० ६७४ में अर्थात् वि० सं० १०३१ में परमारों की गद्दी पर आसीन हुआ था। मुंज के दो दान पत्र भी मिलते हैं जो इसी समय के हैं। कहा जाता है कि ई० सं० ६६३-६६८ के बीच तैलप्पदेव ने मुंज का वध किया था।

२. 'श्री सिन्धुराजसत्कमहामहत्वश्रीपप्पटगुरोः पण्डितश्रीमहासेनाचार्यस्य कृते' कवि आचार्य महासेन सूरि पप्पट के गुरु थे, ऐसा इससे पता चलता है।

३. प्रद्युम्न चरित, सं० नाथूराम प्रेमी, प्र० हिंदी ग्रंथ, रत्नाकर, बंबई

मुंज का उत्तराधिकारी उसका अनुज सिंधुल था। जिनका दूसरा नाम नव साहसांक सिंधुराज था। इसी सिंधुल का पुत्र भोज था। उसका वर्णन मेरुतुंग की रचित प्रबंध चिंतामणि में मिलता है। मुंज के दो दान पत्रों का उल्लेख क्रमशः ६७४ ई० सन् अर्थात् संवत् १०३१ और सन् ६७६ वि० सं० १०३६ मिलता है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि प्रद्युम्न चरित की रचना ६७४ ई० स० के आसपास हुई है, और महासेन सूरि का समय १०वीं शती का उत्तरार्ध है।<sup>४</sup> यह रचना संवत् १६७३ में प्रकाशित हुई है।<sup>५</sup> जयपुर के कई ग्रन्थ भण्डारों में इस कृति की हस्तलिखित प्रतियाँ उलब्ध हैं।<sup>६</sup>

### प्रद्युम्न चरित की कथावस्तु

#### प्रथम सर्ग

द्वारावती की वैभवशाली नगरी में पराक्रमी श्रीकृष्ण का शासन था। इनकी अतोव सुन्दरी पट्टरानी सत्यभामा थी। पृथुवंशोत्पन्न श्रीकृष्ण स्वयं भी अपूर्व सौंदर्यराशि के धारक थे। उनके समक्ष समस्त शत्रु नतमस्तक हो जाते थे :

#### द्वितीय सर्ग

नारद जी का द्वारका आगमन होता है और शृंगार व्यस्त सत्यभामा द्वारा उनकी उपेक्षा होती है। नारद जी ने सत्यभामा का रूपगर्व चूर करने के हेतु से श्रीकृष्ण का विवाह किसी अत्यंत रूपवती राजकन्या से कराने की योजना बनायी। वे कुण्डिनपुर के नरेश भीष्म के यहाँ पहुँचे। उसकी राजकुमारी कन्या रुक्मिणी नारद जी का स्वागत सत्कार करती है और उनको नम्रतापूर्वक नमन करती है। इससे प्रसन्न होकर वे उसे श्रीकृष्ण प्राप्ति का आशीर्वाद प्रदान करते हैं। इस अपरूप सुन्दरी का चित्रफलक लेकर वे पुनः श्रीकृष्ण के पास आ जाते हैं और श्रीकृष्ण रुक्मिणी पर अनुरक्त हो जाते हैं। वे मन ही मन उसे प्राप्त करने का संकल्प कर लेते हैं। रुक्मिणी ने भी

४. श्रीलाटवर्ग नभस्तलपूर्णचंद्र—जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ४११

५. माणिकचंद्र दिगंबर जैन ग्रंथमाला, बंबई

६. जिनवाणी मासिक पत्रिका, जुलाई १९६६ पृ० २६,

श्रीकृष्ण की छवि को अपने हृदय में अंकित कर लिया और मन ही मन उन्हें पति मान लिया। भोष्मपुत्र रुक्मिकुमार बहन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था। इस परिवर्तित परिस्थिति में वह शिशुपाल को विवाहार्थ निमंत्रित करता है। इस तथ्य की सूचना देते हुए नारद जी ने श्रीकृष्ण को रुक्मिणी हरण कर लेने का परामर्श दिया।

### तृतीय सर्ग

श्रीकृष्ण बलराम कुण्डिनपुर के उद्यान में पहुँचते हैं। उस समय कामदेवार्चनार्थ राजकुमारी रुक्मिणी भी उद्यान में आयी थी। श्रीकृष्ण उसका अपहरण कर लेते हैं। रुक्मि और शिशुपाल द्वारा पीछा किए जाने पर वे शिशुपाल का वध कर देते हैं और रुक्मिणी को द्वारकाले जाकर उसके साथ पाणिग्रहण करते हैं। इसी सर्ग में एक कौतुक और होता है, श्रीकृष्ण श्वेत वस्त्रों में सज्जित रुक्मिणी को उपवन में बैठा देते हैं और स्वयं उसके समीप ही छिप जाते हैं। सत्यभामा उपवन में आती है और इस श्वेतवस्त्रवृत्ता अलौकिक सुन्दरी को देवांगना समझकर उसकी अर्चना करती है। वह वरदान माँगती है कि श्रीकृष्ण उसी के हो जाएँ और रुक्मिणी की उपेक्षा करने लग जाएँ। तत्काल श्रीकृष्ण प्रकट हो जाते हैं और उनके मन्द-मन्द हास से यह रहस्य भी प्रकट हो जाता है कि वह देवांगना रूपी स्वयं रुक्मिणी ही है। इससे दोनों सपत्नियों में घनिष्ठ मैत्री निर्माण हो जाती है।

### चौथा सर्ग

श्रीकृष्ण और बलराम की उपस्थिति में रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों वचनबद्ध हो जाती हैं कि इनमें से जो भी पहले पुत्रवती होगी वह अपने पुत्र के विवाह के अवसर पर दूसरी का सिर मुण्डित करवा देगी। संयोग से रुक्मिणी को पहले पुत्र प्राप्ति हो जाती है। किंतु, जन्म के ५वें दिन ही घूमकेतु असुर द्वारा उसका अपहरण कर लिया जाता है और वह उस शिशु को वातरक्षक गिरि पर आरक्षित अवस्था में छोड़ जाता है। विद्याधर राज कालसंवर इस शिशु को अपना लेता है और घोषणा कर देता है कि उसकी रानी कनकमाला ने राजकुमार को जन्म दिया है। राजकुमार का नाम प्रद्युम्न रखा जाता है।

### पाँचवां सर्ग

पुत्र के अपहरण से दुःखित रुक्मिणी विलाप करने लगती है। समस्त द्वारका में तहलका-सा मच जाता है। धनी खोज की जाती है किंतु बालक के विषय में कोई सूत्र हाथ नहीं लगता है। सीमन्धर स्वामी का समवसरण जहाँ संयोजित था वहाँ नारद जी विदेह जाते हैं। वे स्वामी जी से रुक्मिणी के पुत्र के विषय में प्रश्न करते हैं और उन्हें उत्तर मिलता है कि धूमकेतु ने पूर्वभव के वैरवश उसका अपहरण कर लिया है। कालसंवर के राज-परिवार में बालक बड़ा हो रहा है और १६ वर्ष पश्चात् वह माता-पिता के पास लौट आएगा। केवली स्वामी प्रद्युम्न के पूर्वभव के वृत्तान्त भी सुनाते हैं। पूर्वभव की यह कथा सातवें सर्ग में आयी है।

### छठा सर्ग

अयोध्या नगरी में राजा अरिजय का शासन है। उसकी रानी प्रतिकर के दो पुत्र हैं—पूर्णभद्र और मणिभद्र। राजा मुनि के उपदेश से प्रतिबुद्ध होकर विरक्त हो जाता है और पुत्र को राज्यासन सौंप देता है। दो वणिक् पुत्र भी श्रावक धर्म स्वीकार करते हैं और मुनि द्वारा कुत्तियों एवं मातंग की पूर्वभव की कथाएं सुनकर वे भी दीक्षित हो अन्ततः स्वर्गलाभ करते हैं।

### सातवां सर्ग

कौसलनगरी का राजा हेमनाभ है। इसके दो पुत्र मधु और कैटभ हैं। मधु को राजा और कैटभ को युवराज बनाकर राजा अपनी रानी सहिता संन्यास ग्रहण कर लेता है। मधु कैटभ दोनों अपार पराक्रमी होते हैं। सभी राजा महाराजा उनके चरणों में नतमस्तक रहते हैं। भीम उनके राज्य में प्रवेश कर उत्पात मचाता है, नगर जला देता है और प्रजा को कष्ट देता है। अस्तु, मधु भीम पर आक्रमण करता है। मार्ग में अन्य राजा हेमरथ उसका समर्थन व स्वागत करता है और मधु हेमरथ की रूपवती रानी पर आसक्त हो जाता है, किंतु मंत्रियों के परामर्शानुसार वह पहले भीम का वध करता है और लौटते समय हेमरथ की रानी को भी अपने साथ ले आता है। प्रिया-विहीन राजा हेमरथ देवयोनि में जाते हैं। स्वर्ग से च्युत होकर मधु का जीव ही प्रद्युम्न रूप में जन्म लेता है और कैटभ का जीव जाम्बवती के पुत्र के रूप में जन्म लेता है। राजा हेमरथ का जीव धूमकेतु के रूप में जन्मता



हैं। पूर्वभव के इसी वैर के कारण धूमकेतु प्रद्युम्न का अपहरण करता है। नारद जी को पूर्वभव की इस कथा का ज्ञान सीमन्धरस्वामी कराते हैं।

### आठवाँ सर्ग

बालक प्रद्युम्न कालसंवर के राजपरिवार में बड़ा होने लगता है। कालसंवर के अनेक शत्रुओं को वह पराजित करता है। प्रसन्न कालसंवर अपनी पत्नी को दिए गए वचन को पूर्ण करते हुए प्रद्युम्न को युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर देते हैं। परिणामतः उसके ५०० पुत्र प्रद्युम्न से ईर्ष्या करने लगते हैं। प्रतिशोधवश वे उसे नाग, राक्षसादि के निवासवाली विजयाद्व कन्दरा में ले जाते हैं और अपने अपूर्व पराक्रम से प्रद्युम्न उन्हें अपने वश में कर लेता है।

प्रद्युम्न ज्यों-ज्यों आयु प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों वह रूप सौंदर्य और शक्ति-पराक्रम में अधिकाधिक निखरता चला जाता है। रानी कंचनमाला उसके रूप माधुर्य पर आसक्त हो जाती है और प्रणय प्रस्ताव करती है। इस अनौचित्य से प्रद्युम्न हतप्रभ रह जाता है। किंतु, कंचनमाला की काम प्रबलता देख कर वह युक्ति से काम लेता है। यदि वह कंचनमाला का प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है तो उसे कालसंवर और उसके पुत्रों से संघर्ष करना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में आत्मरक्षा के उपाय के बहाने से वह कनकलता से विद्याएं ग्रहण कर लेता है। अंततः जब कंचनमाला की मनो-कामना प्रद्युम्न द्वारा पूर्ण नहीं होती तो वह उस पर अपने साथ बलात्कार करने का आरोप लगा देती है। राजा और उसके पुत्र क्रुद्ध हो जाते हैं। तब तक प्रद्युम्न की इस परिवार में आवास की अवधि पूर्ण हो जाती है और द्वारका के लिए प्रस्थान करता है। उसे दंडित करने के लिए राजा सेना भेजता है। वह स्वयं भी जाता है, किन्तु विद्याबल से प्रद्युम्न की सारी कथा का विवेचन करते हुए कंचनमाला के षड्यंत्र का रहस्य प्रकट कर देता है। इसमें कालसंवर संतुष्ट होकर उस पर प्रसन्न हो जाता है।

### नौवाँ सर्ग

प्रद्युम्न नारद जी के साथ जब द्वारका पहुंचता है तो उस समय वहाँ विवाहोत्सव का वातावरण है। सत्यभामा के पुत्र भानु का पाणिग्रहण दुर्योधन की पुत्री उदधि से होने वाला था। वचनबद्धता के अनुसार रुक्मिणी को अपने

सिर के केश कतरवाने थे। वह पति और पुत्र के जीवित होते हुए भी इस आसन्न विवशता की परिस्थिति से बड़ी दुःखित हो जाती है। माता को इस संकट से उबारने के लिए प्रद्युम्न वनेचर के वेष में उदधि का हरण कर लेता है ताकि विवाह ही सम्पन्न न हो सके। नारद जी के समक्ष उदधि विलाप करती है और प्रद्युम्न अपना वास्तविक रूप प्रकट करता है। उदधि उस पर अनुरक्त हो जाती है। युद्ध में वह सत्यभामा के पुत्र भानु को पराजित कर देता है। मरकट रूप धारण कर वह उपवन और नगर के अनेक भागों को नष्ट कर देता है। मेष द्वारा बलराम को भी मूर्च्छित कर देता है। तब वह अत्यन्त कुरूप और मलिन वेश में माता रुक्मिणी के भवन में आता है। श्रीकृष्ण के निमित्त बने हुए सभी पकवान वह उसे खिलाती है। तब वह अपना वास्तविक रूप प्रकट करता है। विद्याबल से वह माता को बाल-क्रीडाओं के दृश्य दिखाता है। प्रद्युम्न इसके पश्चात् यादवों और दुर्योधन की सेनाओं के साथ मायावी युद्ध करता है।

### दसवाँ सर्ग

इसी भीषण युद्ध में प्रद्युम्न का बाण-कौशल देखकर श्रीकृष्ण चकित रह जाते हैं। वे उससे बाहुयुद्ध का प्रस्ताव करते हैं जिसे प्रद्युम्न स्वीकार कर लेता है। परस्पर सम्बन्ध से अपरिचित पिता श्रीकृष्ण अपने ही पुत्र प्रद्युम्न से बाहुयुद्ध के लिए उसके सामने खड़े होते हैं। पिता-पुत्र को आमने-सामने देखकर नारद जी बड़े कौशल से प्रद्युम्न का परिचय दे देते हैं। श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न होते हैं। आवभगत के साथ प्रद्युम्न का नगर प्रवेश होता है। श्रीकृष्ण उदधि के साथ प्रद्युम्न का विवाह कराते हैं। कालसंवर और कनकलता भी विवाहोत्सव में सम्मिलित होते हैं।

### ग्यारहवाँ सर्ग

श्रीकृष्ण जाम्बवती पुत्र शाम्ब को एक कुलीन स्त्री के शीलभंग के अपराध में निर्वासित कर देते हैं। वसन्तविहारार्थ वन को गए हुए प्रद्युम्न की भेंट शांब से होती है। वह शांब का विवाह सम्पन्न करता है, प्रद्युम्न के भी अन्य अनेक विवाह होते हैं। उसको अनिरुद्ध नामक पुत्र की प्राप्ति भी होती है।

### बारहवाँ सर्ग

तीर्थकर भगवान नेमिनाथ का पल्लव देश से विहार कर सौराष्ट्र में आगमन होता है। यादवों ने समवशरण में जाकर प्रभु की वंदना की। भगवान ने बलदेव के प्रश्न के उत्तर में व्यक्त किया कि द्वैपायन ऋषि, मदिरा और अग्नि के कारण द्वारका नष्ट हो जाएगी और जरत्कुमार के बाण से श्रीकृष्ण का निधन होगा। आत्मग्लानि वश जरत्कुमार वन में जाकर आखेटक जीवन बिताने लगता है। यादवगण प्रभु की इस भविष्य-वाणी से चिन्तित हो उठते हैं।

### तेरहवाँ सर्ग

श्रीकृष्ण अपनी राजसभा में आसीन थे। अन्य यादवकुमारों के साथ प्रद्युम्न हरि की सेवा में उपस्थित होता है और भगवान नेमिनाथ के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण कर लेने की अपनी अभिलाषा व्यक्त करता है। माता-पिता से अनुमति पाकर वह दीक्षा ग्रहण कर लेता है। सत्यभामा और रुक्मिणी भी दीक्षित हो जाती हैं।

### चौदहवाँ सर्ग

प्रद्युम्न मुनि घोर तपस्या करते हैं। गुणस्थानों का आरोहण करके और कर्म प्रकृतियों का क्षय करके वे केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। शांभ, अनिरुद्ध, काम आदि भी मुनि जीवन ग्रहण कर लेते हैं। अंततः मुनि प्रद्युम्न अधातिया कर्मों को नष्ट कर निर्वाण लाभ कर लेते हैं।

संक्षेप में चतुर्दश सर्गों में वर्णित प्रद्युम्न चरित की यही कथा है।

### आधार-ग्रन्थ कथानक-स्रोत

इस संस्कृत महाकाव्य के कथानक के आधार मुख्यतः दो जैन पौराणिक ग्रन्थ रहे हैं।<sup>७</sup> जिनसेनाचार्य (प्रथम) कृत हरिवंशपुराण एवं २ गुणभद्राचार्य विरचित उत्तरपुराण।<sup>८</sup> प्रस्तुत कथानक का संबंध हरिवंशपुराण के ४७ सर्ग (२०वें पद्य से) एवं ४८ वें सर्ग (३६वें पद्य तक) से है। इसी प्रकार उक्त कथावस्तु उत्तरपुराण के ७२वें पर्व में विवेचित है।

७. भारतीय ज्ञानपीठ काशी—हरिवंशपुराण प्र० सन् १९६२

८. भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित उत्तरपुराण प्र० सन् १९५४

कवि महासेन ने प्रद्युम्नचरितम् की कथावस्तु में कतिपय स्थलों पर परिवर्तन भी कर दिए हैं। उदाहरणार्थ हरिवंशपुराणानुसार अनुरक्ता रुक्मिणी श्रीकृष्ण को प्रणयपाती भेजकर बुलाती है, जब कि प्रस्तुत काव्य में श्रीकृष्ण नारद जी के परामर्श से स्वतः पहुंच जाते हैं और रुक्मिणी का हरण कर देते हैं। हरिवंशपुराण के अनुसार प्रद्युम्नकुमार कालसंवर के एक शत्रु सिंहरथ को ही वश में करता है। जब कि प्रस्तुत रचना में प्रद्युम्न द्वारा उसके सभी शत्रुओं का पराभव अंकित किया गया है। इसी से प्रसन्न होकर कालसंवर उसे युवराज घोषित कर देता है। यह उल्लेख तो दोनों ग्रन्थों में मिलता है किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुसार शिशु प्रद्युम्न को अपनाते समय ही कालसंवर उसे युवराज बनाने का वचन कंचनमाला को दे देता है। अब उसका पराक्रम देखकर वह अपना वचन पूरा करता है। दोनों काव्यों में वर्णित है कि कालसंवर के पुत्र प्रद्युम्न को अनेक वनों कन्दराओं का भ्रमण करना पड़ा है, जहाँ पर उसे नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र प्राप्त होते हैं। हरिवंशपुराण में यह प्रसंग पर्याप्त रूप से विस्तृत है। कतिपय वनों के नामों (कपित्थ, वल्लीक आदि) का उल्लेख भी है। प्रस्तुत काव्य में ऐसा नहीं किया गया।

उत्तरपुराण में प्रद्युम्न चरित संक्षेप में वर्णित है, किन्तु महासेन कवि ने (प्रद्युम्नचरितम्) काव्य में इसे ही पर्याप्त रूप से आधार के रूप में स्वीकारा है। धूमकेतु का वैर एवं उसके द्वारा प्रद्युम्नहरण, प्रद्युम्न को अपनाते समय कंचनमाला द्वारा कालसंवर से अनुरोध कि इस बालक को युवराज बनाया जाए। कालसंवर द्वारा प्रद्युम्न को वन भ्रमण कराया जाना और प्रद्युम्न द्वारा नाग, राक्षसादि को वश में किया जाना जैसे कई ऐसे प्रसंग हैं जो उत्तरपुराण और प्रस्तुत काव्य में समान रूप से उपलब्ध होते हैं। साथ ही इन दोनों रचनाओं में कतिपय अन्तर भी मिलते हैं। कालसंवर के परिवार में बालक का नाम प्रद्युम्न या मदन नहीं है। यहाँ पर एक नाम देवदत्त रखा जाता है। प्रद्युम्न को गौरी और प्रज्ञप्ति दो विद्याएँ प्राप्त होती हैं। उत्तरपुराण के अनुसार केवल एक प्रज्ञप्ति विद्या की प्राप्ति होती है। एक प्रमुख असमानता विशेष रूप से ध्यातव्य है।

वह यह कि कंचनमाला सर्व प्रकार से निराश होकर जब प्रद्युम्नकुमार पर शील भंग करने का मिथ्या आरोप लगाती है तो उत्तरपुराणानुसार

कालसंवर अपने पुत्रों को आदेश देता है कि प्रद्युम्न को वन में ले जाकर उसका वध कर दें। वे उसे वन में ले जाते हैं और अग्निकुंड में कूद पड़ने के लिए उसे प्रेरित करते हैं। देवी से उसे रत्नमय कुंडल प्राप्त होते हैं। एक अन्य देवी उसे शंख और महाजाल प्रदान करती है। कतिपय अन्य स्थानों के देवियों से भी उसे अनेक वस्तुएं प्राप्त होती हैं। प्रस्तुत काव्य का यह प्रसंग अन्य ही प्रकार का है। इसी प्रकार द्वारका लौटने पर प्रद्युम्न प्रस्तुत काव्यानुसार जो लीलाएं करता है वे उत्तरपुराण के प्रसंग से भिन्न रूप की हैं।

### प्रद्युम्नचरितम् का महाकाव्यत्व

प्रस्तुत कथाकाव्य महाकाव्यत्व की कसौटी पर सफल सिद्ध होता है। कथावस्तु नियमानुसार अनेक सर्गों में विभक्त है और सर्गों की संख्या भी १४ है। एक सर्ग में एक ही छंद प्रयुक्त हुआ है और सर्गान्त सूचक छंद-परिवर्तन भी मिलता है। काव्य की कथा वस्तु पुराण प्रसिद्ध है और इसमें करुण, वीर और शृंगार रस अंगी रूप में तथा शान्तरस अंग रूप में मिलता है। नगर, समुद्र, पर्वत, सन्ध्या, प्रातः, ऋतु, यात्रा, युद्धादि के प्रभावपूर्ण वर्णन हैं। महाकाव्य का नायक प्रद्युम्नकुमार है, उसकी गणना कामदेवों में की जाती है। यथा —

कालेसु जिणवराणां चउवीसाणं हवंति चउवीसा ।

ते बाहुबलिप्पमुहा कंदप्पाणिसमाणाय ॥<sup>९</sup>

प्रतिनायक इसमें नहीं मिलता। यद्यपि प्रद्युम्न का संघर्ष श्रीकृष्ण से होता है और कालसंवर से भी, किंतु इनमें से कोई भी खलनायक अथवा प्रतिनायक की कोटि में नहीं है। खलनायक तो नायक द्वारा फलाप्ति के मार्ग में पग-पग पर अवरोध उपस्थित करने वाला पात्र होता है। पाठकों की सहानुभूति भी उसके प्रति नहीं रहती। श्रीकृष्ण अथवा कालसंवर की यह स्थिति नहीं रहती। युवराज घोषित होने पर कालसंवर के पुत्र अवश्य ही प्रद्युम्न से ईर्ष्या रखते हैं किंतु वे भी निरन्तर विरोध नहीं करते।

९. चौबीस तीर्थकरों के समयों में अनुपम आकृति के धारक बाहुबली आदि चौबीस प्रमुखकामदेवों में माने गए हैं। कामदेव एक पद है जिस पर प्रत्येक तीर्थकर के काल में किसी पुण्यात्मा को प्रतिष्ठित किया गया है। भगवान नेमिनाथ के समय प्रद्युम्न को यह स्थान प्राप्त था।

नायक के जीवन को सर्वांश में ग्रहण करते हुए कथानक का गठन किया गया है। इस प्रकार कथानक महाकाव्योपयुक्त बन गया है, किंतु कथाक्रम का शास्त्रीय विकास इसमें नहीं मिलता। यह एक चरित काव्य ही है और सीधे-सीधे नायक के जीवन की घटनाओं को चित्रित करने की ओर ही कवि का ध्यान रहा है। यदि प्रद्युम्न द्वारा मोक्ष प्राप्ति को फल माना जाए तो इस फल को लक्ष्य मानते हुए कथानक का विकास ही नहीं हुआ। आद्योपांत इस फल की प्राप्ति का प्रयत्न नायक द्वारा नहीं होता और न इस प्राप्ति के मार्ग में व्यवधान आये हैं।

### वस्तु-व्यापार-वर्णन

देश-काल परिस्थिति के चित्रण में भी कवि का कौशल प्रकट हुआ है। महाकाव्य द्वारा सौराष्ट्र देश का बहुपक्षीय, सजीव चित्र उभरकर आया है। नदी-सरोवर, वन-उपवन, वनचर, जीवजन्तु आदि का यथास्थान सुंदर वर्णन हुआ है। वस्तु वर्णन से कथ्य भी काफी सरस हो गया है। महाकाव्य में यह वस्तु वर्णन दो रूपों में प्रस्तुत किया जाता है। कवि द्वारा शुद्ध वस्तु वर्णन और दूसरा पात्रों की भावनाभिव्यंजना के रूप में। दोनों स्वरूप प्रस्तुत काव्य में वर्णित हैं।

प्रथम प्रकार के वस्तुव्यापार वर्णन में सौराष्ट्रदेश के वस्तुव्यापार-वर्णन द्रष्टव्य है :

सहस्रसंख्यैः सितरक्तनीलैः सरांसि यस्मिञ्जलजैर्विरेजुः ।

कुतूहलेनेव मदीयलक्ष्मी द्रष्टुं समेतैः सुरराजनेत्रैः ।<sup>१९</sup>

जिस सौराष्ट्र देश के सरोवरों में श्वेत रक्त और नीलवर्ण के सहस्रों कमल विकसित हो सुशोभित हो रहे थे। उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो इन्द्र के सहस्र नेत्र कुतूहल के कारण इस देश की लक्ष्मी को देखने के लिए प्रस्तुत हो गए हों।

रमणियाँ अपने भवनों की छत पर बैठकर गीत गाती थीं, उनके मनोहर गीतों को सुनकर चन्द्रमा की गोद में रहने वाला हरिण मधुर गान

१०. प्रद्युम्नचरित्र, संपा०— नाथूराम प्रेमी, प्र० हिन्दीग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

से आकृष्ट होकर वहाँ चला आता था। अतएव चन्द्रमा को वहाँ से आगे चलाना कठिन था क्योंकि जिस स्थान पर चन्द्रमा स्वयं उपस्थित हो उस स्थान के सौन्दर्य का चित्रण करने के लिए कवि को उपमान नहीं मिला।

दूसरे प्रकार का वस्तुवर्णन चरित्र विवेचन के साथ आपाततः आ गया है। अतः यहाँ मैंने उसे नहीं लिया है।

### चरित्र-चित्रण

प्र स्तुत कथाकाव्य का नायक प्रद्युम्न राजवंशोत्पन्न कुलीन और गुण-शाली पुरुष है। वह २४ कामदेवों में स्थान प्राप्त प्रतिष्ठित बाहुबली और पुण्यपुरुष है। वह जितेन्द्रिय सत्पुरुष है। प्रद्युम्न में शास्त्रीय दृष्टि से एक धीरोदात्त नायक के समस्तगुण विद्यमान हैं। सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियों से घिर जाने पर भी वह कभी अधीर नहीं होता, और साहस नहीं खोता। विजयाद्रि की गुफा में उसकी इस विशेषता का परिचय मिलता है जब वह फुफकारते हुए प्रचंड विषधर से भिड़ जाता है और पूँछ पकड़कर वह उसे भूमि पर पटक देता है।<sup>११</sup> आम्नवृक्ष पर रहने वाले कपिरूपधारी धनद से भी प्रद्युम्न निर्भयता के साथ युद्ध करने लगता है।<sup>१२</sup> इसी प्रकार कपित्थवन में कपिरूपधारी भयंकर असुर से उसने बाहुयुद्ध किया और उसकी सूँड, दांत और पैर पकड़कर उसे ऐसा घुमाया कि वह मदहीन हो गया।<sup>१३</sup> वराहगिरि पर वराह के साथ भी उसने वीरता के साथ युद्ध किया।<sup>१४</sup> प्रद्युम्न संयम और प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करने वाला है। कंचनमाला के प्रणयप्रस्ताव में उसकी संयम-शीलता का स्पष्ट परिचय मिल जाता है। द्वारका-विनाश सम्बन्धी भविष्यवाणी से उसके मन में विरक्ति जागृत हो जाती है और वह दीक्षित होकर अंततः निर्वाण प्राप्त कर लेता है। कवि ने इस प्रकार प्रद्युम्न कुमार के चरित्र का एक उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया है।

अन्य पुरुष-पात्रों में श्रीकृष्ण, बलराम, नारद और कालसंवर के

११. प्रद्युम्न चरित ८।१५-१८

१२. " ८।५६-६२

१३. " ८।६४-६८

१४. " ८।७१-८२

उल्लेखनीय चित्रण मिलते हैं। कालसंवर उदात्त और दयालु स्वभाव का है। पर्वतशिखा पर असहाय शिशु को देखकर उसका हृदय द्रवित हो उठा और उसने उसे पुत्रवत् अपना लिया। कंचनमाला को यह आश्वासित किया कि उसके शिशु को युवराज बनाया जाएगा। कालसंवर वीर भी है। प्रद्युम्न के साथ के युद्ध में उसकी इस विशेषता का परिचय मिलता है।

नारी-पात्रों में रुक्मिणी और सत्यभामा को चित्रण में प्रमुखता मिली है। सत्यभामा के चरित्र में सपत्नी डाह का रंग विशेष रूप से उभरा है। इसके विपरीत रुक्मिणी को सद्गुण-सम्पन्न, सुशील और विवेकयुक्त दिखाया गया है। शिशु प्रद्युम्न के अपहरण के समय वह जिस प्रकार करुण-क्रन्दन और विलाप करती है उससे उसके वात्सल्यपूर्ण मातृत्व की झलक प्राप्त होती है। पुत्र के पुनर्मिलन से वह हर्षोन्मत्त हो बाल-लीलाओं से विभोर हो उठती है। इससे उसकी ममता की गहनता का परिचय मिलता है। कवि ने रुक्मिणी के चरित्र में नारी सुलभ सभी सद्गुणों का समावेश बड़ी कुशलता के साथ कर दिया है।

### रस, छंद और अलंकार योजना

प्रस्तुत काव्य प्रद्युम्नचरितम् में कवि महासेन ने स्थान-स्थान पर विभिन्न रसों की सृष्टि की है। शृंगार, करुण, वीभत्स, रौद्र, शान्त आदि का परिपाक इस रचना में दृष्टिगत होता है। भावों के स्वाभाविक उद्रेक एवं विभावों के प्रत्यक्षीकरण के निमित्त अलंकारों का आश्रय सार्थक रहता है। इस उद्देश्य से अलंकारों के प्रयोग में कवि प्रस्तुत कृति में सफल रहा है। काव्य में संगीत तत्त्व की अभिवृद्धि के लिए कवि ने अनुप्रासों का विशेष रूप से प्रयोग किया है। यमक, पुनरुक्ति, वीप्सा, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्रान्तिमान, सदेह, अपन्हुति, अतिशयोक्ति, असंगति, व्यतिरेक, अर्थान्तर-न्यास, परिसंख्या आदि अनेक प्रकार के अलंकार काव्याभूषण नगीनों की भाँति जड़े हुए हैं। इसी प्रकार प्रसंगानुरूप छंदों का प्रयोग भी व्यवस्थित ढंग से हुआ है। उपजाति, शार्दूल विक्रीडित, वसंततिलका, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, द्रुतविलंबित, पृथ्वी, अनुष्टुप्, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, ललिता, शालिनी आदि अनेक प्रकार के छंदों का कवि ने प्रयोग किया है।



रस

शृंगाररस— काव्य में रुक्मिणी और श्रीकृष्ण की केलिक्रीडा के रूप में संयोग शृंगार का चित्रण चित्रित है—यथा<sup>१५</sup>—

नर्ममर्मपरिबालनागिरः सत्यया सह विधाय केशवः ।

स्वाञ्चलस्थांकितवक्त्रपङ्कजः स्वापकेलिमालम्ब्य तस्थिवान् ।

यहाँ रुक्मिणी आलम्बन और श्रीकृष्ण आश्रय हैं। रुक्मिणी के साथ भोगे हुए भोगों को श्रीकृष्ण सत्यभामा के यहाँ शृंगारोचित सपत्नीक ईर्ष्या के रूप में व्यक्त करते हैं। अतः रति के स्थायी भाव की अभिव्यक्ति होती है।

मालती, चन्दन, शरत्कालीन चाक्ष, कमल, धनसार, उशीर आदि शीतलता प्रदान करने वाली वस्तुएं संताप को वृद्धिगत करती थीं। विरहाग्नि से संतप्त उसे किसी भी प्रकार से शांति प्राप्त नहीं हो रही थी।

इस प्रसंग में हेमरथ की पत्नी आलंबन है। उद्दीपन वसंत ऋतु है, अनुभाव मधु की शारीरिक चेष्टाएं हैं और हर्ष-चिन्ता और औत्सुक्य आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार शांतरस वीररस आदि का भी कवि ने सुन्दर प्रयोग किया है।

**कतिपय अलंकारों के उदाहरण**

काव्य-सौष्ठव की श्रीवृद्धि के लिए अलंकारों का अपने आप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत कृति अलंकारों की दृष्टि से भी समृद्ध है।

**अनुप्रास<sup>१६</sup>**

मुखपंकजं मुखसुगन्धियया न हि ।

पीयतेऽस्य सरसं सुदृशा ॥

यहां मुखपंकज और मुख सुगन्धि में अनुप्रास है।

**विरोधाभास<sup>१७</sup>**

मातंगसंगसक्तोऽपि भुञ्जानो मेदिनीमपि ।

स्त्रीमनोनेत्रचोरोऽपि स तथापि सतां यतः ।

१५. प्रद्युम्न चरित्र ३।४५

१६. वही ८।११७

१७. वही ६।१४

मातंग चाण्डाल के साथ रहने पर भी सतां/सज्जनों द्वारा मान्य है। यह विरोधाभास है। अतः जो नीच दुराचारी चाण्डाल के साथ रहेगा, वह सज्जनों द्वारा मान्य नहीं हो सकता। चाण्डाल हाथियों के सहित होने पर भी वह सज्जनों द्वारा मान्य था। यहाँ पर भी यही विरोधाभास है। इसी प्रकार यमक, उगमा, भ्रान्तिमान आदि के उदाहरण भी दृष्टव्य हैं।

### भाषा-शैली

प्रसाद मधुर वाणी द्वारा संस्कृत काव्य को रस सरसता प्रवाहित करने के लिए प्रख्यात कवि महासेन को काव्यशैली वैदर्भी ढंग को है। इसी शैली का प्रयोग उनके काव्य में भी हुआ है। परिणामतः इसमें सरलता, प्रासादिकता और स्वाभाविकता के सहज दर्शन हो जाते हैं। पद-लालित्य इस काव्य को प्रमुख शैलोगत विशेषता है। स्थान-स्थान पर सूक्तियों के प्रयोगों से शैली और भी सशक्त हो उठी है। जैसे कुछ सूक्तियाँ इस पद में सूचित हैं।

प्राकृतो हि विनयो महात्मनाम् ।

शाको हि नाम परमानवतामुपैति ॥

प्रद्युम्नचरितम् सौंदर्य और शृंगार का काव्य है। प्रथम दो सर्ग तो बड़े ही रसयुक्त और आकर्षक हैं। काव्य के प्रणयन में कवि को सौन्दरानन्द, बुद्धचरित, रघुवंश, मेघदूत, कुमारसंभव आदि महान रचनाओं से प्रेरणा मिली है, ऐसा प्रतीत होता है। पदलालित्य के लिए निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

न दीनजाता नवलस्वभावा न निम्नगावा न कलंकितापि ।

जलाशया नैव च सत्यभामा भार्याभवत्तस्य प्रराजितश्रीः ॥

समाधि टूटने पर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के उठते हुए सौंदर्य का अवलोकन करते हैं, ऐसा कवि ने लिखा है—

निष्पन्तुदः केशकलापमर्मणा, मुखेन्दुमादातुमिवाप सनिधिम् ।

अजायतास्याः सुपयोधरोन्ततिः समुन्मनीकर्तुमनंगकेकितम् ॥

शीतल वायुके चलने से संसार कांप रहा है और बादलों से मूसलाधार वृष्टि हो रही है। कृष्ण लोग कांपते हुए समस्त हलोपकरणों को छोड़कर घर चले गए हैं।

प्रसाद माधुर्य तथा ओज इन समस्त गुणों का समन्वय भी यत्र तत्र उपलब्ध होता है। यहाँ पर कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

### माधुर्यगुण<sup>18</sup>

तन्वी स्वयं मुरजिता करपंकजाम्यां उत्थापिता मलयजादि रसेन सिक्ता ।  
पूर्ण नभो विवधती करणस्वनेन मृच्छां विहाय हरिणा सहसा ररोद ॥

### ओजगुण<sup>19</sup>

रेणुघण्टासंन्ययोर्वारिणानां चक्रुः शब्दं काहलं काहलश्च ।<sup>20</sup>  
भेरीभम्भास्तूर्यभेदाश्च येऽन्ये चेहविश्वे व्याप्तदिवकाः सन्तात् ।<sup>21</sup>

### प्रसाद

मित्रं समोहारि यशो विभूषा ।  
नियतितो जलधौ पतिते रवौ ।

यह सत्य है कि महाकवि ने किसी भी भाव को ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं किया है, उसने अपनी प्रतिभा से भावों में स्फीति उत्पन्न की है और उन्हें एक नया परिवर्तन रूप प्रदान किया है जो अत्यंत मनोहारी बन गया है।

### छन्द-योजना

काव्य में छंदों का उपयोग कवि अपनी विशद अभिव्यंजना के लिए करता है। यह अभिव्यक्ति नाद सौन्दर्य युक्त शब्दों से प्रकट होती है। छंद काव्य के लिए ध्वनि सम्बन्धी एक कला है। इसके साथ गति, यति और लय ये भी आवश्यक हो जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में छंद वास्तव में बंधी हुई लय के भिन्न-भिन्न ढांचों (पैन्टर्स) का योग है, जो निर्दिष्ट लम्बाह का होता है। लय-स्वर के चढ़ाव-उतार-स्वर के छोटे-छोटे

१८. प्रद्युम्न चरित्र ५।१६

१९. वही ६।३४६

२०. वही १।२१

२१ वही ४।२८

ढाँचे ही हैं जो किसी छंद के चरण के भीतर व्यस्त रहते हैं।<sup>22</sup> कवि ने विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है।

### प्रकृति-चित्रण

कवि ने वसन्त, शरद्, सन्ध्या, रजनी, चन्द्र, सूर्य और उषा आदि का प्रकृति चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से किया है। यहाँ पर दो उदाहरण वसन्त के वर्णन में द्रष्टव्य हैं—प्रथम में वसन्त के प्रभाव का विवेचन है तो दूसरे में वसन्त की रात्रि की क्षीणता का विवेचन है—

सर्वतो मुकुलयन् सहकारान् पुष्पयन्तनु वनं वनराजीम् ।  
अन्तरेऽत्र समवाप वसन्तः क्षारसेवनमिव क्षतमध्ये ॥<sup>23</sup>  
यामिनी प्रियतमापवृशत्वं खण्डितेव शशिना दयितेन ।  
वायवो मलयजा ववुरस्थ तापशान्तिकृतये कृपये ॥<sup>24</sup>

### (२) नेमिनिर्वाणकाव्यम्

#### कृति और कृतिकार

महाकाव्य नेमिनिर्वाणकाव्यम्<sup>25</sup> अपने १५ सर्गों की परिधि में २२वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि का जीवन वृत्तांत प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत महाकाव्य के कर्त्ता वाग्भट प्रथम हैं! वाग्भट की यह प्रसिद्ध कृति जहाँ अपने काव्य चमत्कारों के लिए विख्यात है वहाँ अपने दूसरे पक्ष में भी वह पीछे नहीं है। काव्य अपने मार्मिक प्रसंगों के कारण पाठकों के मानस पटल पर छा जाता है और अपना प्रभाव अंकित कर देता है।

वाग्भट नामधारी एकाधिक विद्वान् हुए हैं। प्रस्तुत महाकाव्य की एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है जिसका लेखनकाल १७२७ विक्रम-संवत् है।<sup>26</sup> उक्त प्रति में एक प्रशस्ति श्लोक मिलता है।

२२ आचार्य रामचंद्र शुक्ल, काव्य में रहस्यवाद, पृ० १३५, प्रथम संस्करण, सं० १९८६

२३. प्रद्युम्न चरित्र ७।३७

२४. वही ७-३८

२५. नेमिनिर्वाण—सं० पं० शिवदत्त शर्मा तथा काशीनाथ शर्मा, प्रका० निर्णय सागर प्रेस, बंबई, १९३६ ई० में प्र० ।

२६. जैन सिद्धांत भवन आरा की प्रति ।

अहिच्छत्रपुरोत्पन्न प्राग्वाटकुलशालिनः ।

छाहडस्य सुतश्चके प्रबन्धं वाग्भटः कविः ॥

यह प्रशस्ति श्लोक श्रवण बेलगोला के स्व० पं० दौर्बलि जिनदास शास्त्री के पुस्तकालय वाली नेमिनिर्वाण काव्य की प्रति में प्राप्त है।<sup>२७</sup> और, इससे विदित होता है कि कवि वाग्भट प्रथम का जन्म प्राग्वाट (पोरवाड) वंश में अहिच्छत्रपुर में हुआ और उनके पिता का नाम छाहड था। कवि दिगंबर संप्रदाय का था। अतः उसने मल्लिनाथ को कुमार रूप में नमन किया है। ओझा जी के अनुसार नागोर का पुराना नाम नागपुर या अहिच्छत्रपुर है।<sup>२८</sup>

नेमिनिर्वाण काव्य के रचनाकाल के विषय में कोई अन्तर्साक्ष्य उपलब्ध नहीं होती। वाग्भट्टालंकार के रचयिता वाग्भट द्वितीय ने अपने लक्षण ग्रन्थ में प्रस्तुत काव्य के कतिपय अंशों को ग्रहण किया है। इससे जहाँ यह विदित होता है कि नेमिनिर्वाणम् काव्य का कर्त्ता वाग्भट द्वितीय का पूर्ववर्ती कवि अर्थात् वाग्भट प्रथम है। वहीं यह भी संकेतित हो जाता है कि यह काव्य वाग्भटालंकार से पूर्व की रचना है। इस आधार पर अनुमानित किया जाता है कि नेमिनिर्वाण काव्य की रचना वि० सं० ११७१ से पूर्व की है।<sup>२९</sup>

कथानक-प्रथमसर्ग—आरंभ में कवि ने २४ तीर्थंकरों को श्रद्धा सहित नमस्कार किया है और तत्पश्चात् मूलकथा आरंभ की है। सौराष्ट्र में दुवारावती नगरी में यदुवंश श्रेष्ठ समुद्रविजय का शासन है। प्रजाहित और सुव्यवस्थित शासन चले इसलिए राजा अपने अनुज वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण को युवराज पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। पुत्राभाव में राजा चिंतित रहते हैं और अनेक व्रतादि करते हैं।

द्वितीय एवं तृतीय सर्ग—एक दिन राजा समुद्रविजय आकाश से देवांगनाओं का अवतरण देखते हैं। उनसे उनको सूचना मिलती है कि

२७. जैन हितेषी भाग १२ अंक ७-८, पृ० ४८२

२८. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० २८२, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

२९. वही पृ० २८३

शिवारानी के गर्भ में तीर्थंकर का जीव आने वाला है। शिवारानी १६ उज्ज्वल स्वप्न देखती है और पति से उनके फल के विषय में पूछती है। राजा उत्तर में कहता है कि पुत्र रत्न की प्राप्ति होने वाली है।

चौथा सर्ग—तीर्थंकर के गर्भ में आने से रानी का सौन्दर्य विकसित होने लगता है। श्रावण शुक्ला षष्ठी को पुत्र का जन्म होता है। चतुर्निकाय देवगण द्वारावती पहुंच जाते हैं।

पाँचवाँ सर्ग—इंद्राणी एक मायावी पुत्र को लेकर प्रसूति गृह में आती है। शिवारानी के पास उसे लिटाकर त्रिलोकीनाथ को अपने साथ ले जाती है। इंद्र बालक को सुमेरु पर्वत पर ले जाता है और पाण्डुशिला पर देवता भगवान का अभिषेक करते हैं। इंद्र उनका नाम रखता है अरिष्ट-नेमि।

छठा सर्ग—अरिष्टनेमि जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक थे। क्रमशः विकसित होते हुए अरिष्टनेमि युवा हो गए। यादवगण रैवतक पर्वत पर वसन्तोत्सव मनाने जाते हैं। सारथी अरिष्टनेमि को भी वहाँ जाने को प्रेरित करता है।

सातवाँ सर्ग—रैवतक पर्वत अपनी प्राकृतिक शोभा से सजा अनूठी छटा बिखेर रहा था। नेमिनाथ इस शोभा से बड़े प्रभावित हुए। प्रकृति के सौंदर्य से और प्रकृति के इस अपार रूप पर मुग्ध होकर वृक्षों की सघन छायातले पट-मंदिर में निवास करने लगे।

आठवाँ सर्ग—माधव भी क्रीडार्थ रैवतक पर्वत पर पहुंचते हैं। यादव अपनी सुन्दरी युवतियों के साथ भाँति-भाँति की जल क्रीड़ाएं करते हैं और आनंदित होते हैं।

नौवाँ सर्ग—सूर्यास्त हो जाता है। चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनी बिखेरने लगता है। यादव युवक-युवतियाँ नाना भाँति की प्रणय-क्रीडाओं से संभोग सुख प्राप्त करने लगे।

दसवाँ सर्ग—मधुपान का दौर चलता है। यादव कुमार और युवतियाँ छककर मधुपान करती हैं। उन्मत्त और अलमस्त युवक बहुविधि से सुरत-क्रीडाओं में प्रवृत्त होते हैं।

**ग्यारहवाँ सर्ग—**इसी अवसर पर उग्रसेन की अतीव सुन्दरी कन्या राजीमती भी रैवतक पर्वत पर पहुँचती है। अरिष्टनेमि पर वह मुग्ध हो जाती है। सखियाँ राजकुमारी को शात करने लगती हैं, किन्तु अरिष्टनेमि के स्मरण मात्र से उसकी आँखें डबडबा आती हैं। संयोग से राजा समुद्रविजय श्रीकृष्ण को महाराज उग्रसेन के पास अरिष्टनेमि के लिए राजीमती की याचना के साथ भेजते हैं और उग्रसेन अपनी सहमति प्रदान कर देते हैं। दोनों पक्षों में विवाहोत्सव के आयोजन की तैयारियाँ होने लगती हैं।

**बारहवाँ सर्ग—**वरयात्रा सजी। अरिष्टनेमि रथारूढ़ होकर राजमार्ग पर क्रमशः आगे बढ़ रहे थे। भाँति-भाँति के अलंकारों से सारा मार्ग सज्जित था। वधूवेष में सज्जित राजीमती वर के स्वागतार्थ राज भवन के द्वार पर आकर उपस्थित होती है।

**तेरहवाँ सर्ग—**रथ से उतरने के लिए अरिष्टनेमि प्रस्तुत होते हैं। इतने में वे अनेक पशु-पक्षियों का रुदन सुनते हैं और ठिठक जाते हैं। सारथी से उन्हें ज्ञात होता है कि विवाह के अवसर पर सामिष व्यंजनों के लिए अनेक पशु-पक्षियों को समीप के बाड़े में बंद कर रखा है। यह सुनकर नेमिकुमार को अपना पूर्वभव स्मरण हो आता है। विवाह त्याग कर वे संयम का वरण करते हैं और तोरण से ही लौट जाते हैं। वे अपने आखेटक जीवन से लेकर जयन्त विमान में उत्पन्न होने तक का पूर्वभव वृत्तान्त भी सुनाते हैं।

**चौदहवाँ सर्ग—**मुनि अरिष्टनेमि धोर तप करते हैं। कायोत्सर्ग पूर्वक तप में लीन मुनि शुक्ल द्वारा कर्मबन्धनों को नष्ट कर केवलज्ञान को प्राप्ति कर लेते हैं।

**पन्द्रहवाँ सर्ग—**केवली हो जाने पर देव भगवान की स्तुति करते हैं। विशाल समवशरण रचा जाता है। धर्मोपदेशार्थ भगवान् विभिन्न देशों में विहार करते रहते हैं। अन्त में अघातिया कर्मों का क्षयकर मुक्त हो जाते हैं।

**कथानक के आधार ग्रंथ**

आचार्य जिनसेन (प्रथम) कृत हरिवंश पुराण को प्रस्तुत काव्य के

कथानक की दृष्टि से कवि द्वारा आधार माना गया है। अधिकांश कथानक इसी पुराण ग्रंथ पर आधारित हैं। प्रस्तुत काव्य में अरिष्टनेमि की जन्म तिथि श्रावण शुक्ला ६ दी गयी है। जो हरिवंशपुराण से भिन्न है।<sup>३०</sup> उत्तर पुराण में अवश्य ही इसी तिथि का उल्लेख किया गया है।<sup>३१</sup> हरिवंश पुराण और उत्तर पुराण के अतिरिक्त कवि वाग्भट के द्वारा तिलोयपण्णति जैसे आर्षग्रंथ का सहारा भी लिया गया है। रेवतिक पर्वत पर अरिष्टनेमि और राजीमती के मिलन का प्रसंग और दोनों में परस्पर स्नेह जागरित हो जाना, कथानक यह भाग कदाचित् तिलोयपण्णति के प्रभाव स्वरूप हो आया है। प्रबन्ध काव्य के कथानक के स्वरूप की कसौटी पर नेमिनर्वाण काव्य के कथानक को कमकर देखें तो हमें ज्ञात होता है कि इस दृष्टि से प्रस्तुत कथानक में शिथिलता है। कवि ने अधिकतर बाह्य प्रकृति का अथवा कुछ आयोजनों का ही वर्णन किया है। अरिष्टनेमि के जीवन के कतिपय मार्मिक प्रसंगों को ही कवि ने चुना है और उन्हीं का अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत वर्णन कर दिया है। नायक के समग्र जीवन को अधिक महत्व नहीं दिया है। अरस्तू ने कथानक गठन में अन्विता पर पर्याप्त बल दिया है।<sup>३२</sup>

### महाकाव्य

महाकाव्य के स्वरूप-संरचना संबंधी लक्षण इस ग्रंथ में निहित हैं। मानव-मात्र के हृदय में स्थापित धार्मिक वृत्तियों, पौराणिक और निजन्धरी विद्वांसों का भी कवि के द्वारा अच्छा विवेचन हुआ है। प्रभा, संध्या, रात्रि, नगर, देश, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप आदि के अलंकृत वर्णनों की प्रचुरता भी इस काव्य में मिलती है। महाकाव्य का नामकरण नायक द्वारा फल प्राप्ति के आधार पर किया गया है। द्वारावती नगरी के वैभव एवं

३०. शुद्धवैशाखत्रयोदशतिथी

—हरिवंशपुराण, १६६२ ई०।

भारतीय विद्यापीठ, काशी

३१. श्रावणे सिते षष्ठ्यां —उत्तरपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५४।

३२. अरस्तू का काव्यशास्त्र, अनु० डॉ० नगेन्द्र, पृ० २४, प्रकाशक—हिन्दी अनु-संधान परिषद्, दिल्ली वि०वि०, १९१४।



सौन्दर्य का चित्रण बड़े विस्तार के साथ किया गया है। उपजाति, वसन्त-तिलका, मालिनी, स्रग्धरा, अनुष्टुप् आदि छंदों का व्यवहार पाया जाता है। कवि ने वर्णन चमत्कार-सृजन के लिए वस्तुओं का चित्रण करते हुए लिखा है—

विराजमानामृषभाभिरामंग्रामंगरीयो गुणसंनिवेशाम् ।

सरस्वतीसंधिमाजमूर्वी ये सर्वतो घोषवतीं वहन्ति ॥<sup>33</sup>

सुराष्ट्र देश बैलों द्वारा सुन्दर ग्रामों से शोभायमान गुरुतर, गुणों की सन्निवेश रचना, पवित्रबद्ध गृहों से युक्त, सरस्वती नदियों के सामीप्य को प्राप्त और गोपवसतिकाओं से युक्त पृथ्वी को सब ओर से धारण करते हैं।

श्लेष के कारण उक्त पद्य का अप्रकृत अर्थ भी है, जिसमें कवि ने संगीत के सिद्धांतों का निरूपण किया है तथा सुराष्ट्र देशवासियों को संगीत प्रेमी सिद्ध किया है। द्वारामतो नगरी का सजीव और सुन्दर चित्रण चित्रित करते हुए कवि ने लिखा है कि—

एवंविधां तां निजराजधानीं, निर्मापयामोति कुतूहलेन ।

छायाछलादच्छजले पयोधौ, प्रचेतसाया लिखितेव रेजे ॥<sup>34</sup>

अर्थात् स्वच्छ जल से युक्त समुद्र में द्वारावती नगरी का जो प्रतिबिम्ब पड़ रहा था उससे ऐसा प्रतीत होता था कि जलदेवता वरुण ने “मैं भी अपनी राजधानी को इसके समान सुन्दर बनाऊंगा” इस कुतूहल से मानो एक चित्र खींचा हो।

### प्रकृति-वर्णन

काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से प्रकृति-वर्णन का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत महाकाव्य में यह गुण भी यत्न तत्न दिखलाई देता है। कुमुदिनी की सहानुभूति का वर्णन करता हुआ कवि उसमें मानवीय भावों का संचार कर रहा है—

करुणस्वरं विलपतोरनेकशः

पुरतो निशाविरहिणोर्विहंगयोः ।

३३. नेमिनिर्वाणकाव्यम् १।३३

३४.        ”               १।३८

विपदं विलोकयितुमक्षमा ध्रुवं  
नलिनी सरोजनयनं न्यमीलयत् ॥<sup>35</sup>

रात्रि में विहार करने वाले और सूर्य के वियोग से विलाप करते हुए पक्षियों की करुण-क्रन्दनरूपी विपत्ति को देखने में असमर्थ कुमुदिनी ने अपने कमल के समान नेत्र बन्द कर लिए। यहां कुमुदिनी में मानव भावनाओं का आरोप किया गया है।

### रसभाव योजना

प्रस्तुत काव्य में अङ्गी रस शांत है और शृंगार, वीर, करुण रसों का अङ्ग रूप में समावेश हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

### शृंगार रस

नलिनीदलानि न न हारयत्य-  
स्तुहिर्नाशवो न न जलाद्रमंशुकम् ।  
त्वद्वृत्ते तदंगपरितापशान्तये,  
विपदोऽथवा स्वजनसंगभेषजाः ॥<sup>36</sup>

प्रस्तुत श्लोक में दुर्वह नितम्ब मण्डल वाली नायिका विनयान्वित होने पर भी, नायक को पास में आया हुआ जानकर भी अपना आसन न छोड़ सकी। शयन कक्ष में पति के आने पर उसके मुख से अनायास ही दूसरी नायिका का नाम सुन लेने से शरीर-दाह के साथ कमलिनियों से निर्मित शय्या को नायिका ने छोड़ दिया। प्रियसंग न होने पर उसके हृदय पर दृढ़तापूर्वक अपने मुख कमल को रख देना तथा पहले सोची हुई बात को कह डालना, इस प्रकार सखियों द्वारा कहे जाने पर नववधुओं ने कृत्रिम क्रोध प्रकट किया। यथा—

दृढमासजेरसि वषत्रमर्पयेर्मणितं च पूर्वाङ्गुणितं प्रकाशयेः ॥  
प्रियसङ्गमेष्विति सखीभिरीरिता कृतकं प्रकीपमकरोन्मवा बधूः ॥<sup>37</sup>

३५.	”	८।११
३६.	”	९।४६
३७.	”	९।५४

इस प्रकार संयोग शृंगार का सांगोपांग चित्रण कवि ने बड़ी कुशलता के साथ किया है।

### शान्त रस

संसार से निर्वेद प्राप्ति के प्रसंग में शांत रस की योजना हुई है। कवि ने लिखा है कि—

दानं तपो वा विषवृक्षमूलं श्रद्धानतो ये न विवर्ध्य दूरम् ।

स्वनन्ति मूढाः स्वयमेव हिंसा-कुशीलतास्वीकरणेन सद्यः ॥<sup>38</sup>

अर्थात् जो दान और तपरूपी धर्मवृक्ष पर श्रद्धा न करते हुए दूर तक उनको नहीं बढ़ाते हैं वे मूर्ख हैं और हिंसा कुशीलादि का सेवन कर वे धर्मवृक्ष की जड़ को खोद डालते हैं। जो व्यक्ति द्रव्य या भाव हिंसा करता है उसे दुर्गति में जाना पड़ता है। अतएव विवेकी को जागृत बनकर धर्म का सेवन करना चाहिए। यही उसके लिए उपादेय है।

### अलंकार

कवि के काव्य में अलंकारों का भी सुन्दर रूप से समावेश हुआ है। उपमा अलंकार सबसे प्रधान है। भावों द्वारा कल्पना को जितनी अधिक प्रेरणा प्राप्त होती है, उपमान योजना उतनी ही सिद्ध होती है। यथा दन्तीव<sup>39</sup> भावी-पुत्र गज के समान भूरितर दान से युक्त होगा। जिस प्रकार हाथी के मद से दानवारि निकलता है, निरन्तर दानजल-मदजल झरता रहता है, इसी प्रकार पुत्र दानी होगा।

### यमक

अन्त्य यमक की योजना करते हुए कवि ने पुष्पदन्त का स्तवन किया है।

भूरिप्रभानिजितपुष्पदन्तः करायतिन्यक्कृतपुष्पदन्तः ।

त्रिकालसेवागतपुष्पदन्तः श्रेयांसि नो यच्छनु पुष्पदन्तः ॥<sup>40</sup>

जिनके दांतों ने अपनी विशाल प्रभा से पुष्पों को जीत लिया है,

३८. " १३११

३९. " ३१४०

४०. " ११६

जिनके हाथों की लम्बाई ने पुष्पदन्त (दिग्गज) के शुण्डादण्ड को तिरस्कृत कर दिया है और जिनकी सेवा में पुष्पदन्त सूर्य चन्द्रमा त्रिकाल उपस्थित होते हैं, वे पुष्पदन्त भगवान् हम सबको कल्याण प्रदान करें।

**श्लेष**

दो से अधिक अर्थ जिस श्लोक में श्लिष्ट-निबद्ध रहते हैं, उस श्लोक में श्लेषालंकार का चमत्कार दिखलाई पड़ता है—यथा

सुवर्णवर्णद्युतिरस्तु भूत्यं श्रेयान्विभुर्वो विनताप्रसूतः ।

उच्चैस्तरां यः सुगतिं ददानो विष्णोः सदानन्दयतिस्म चेत् ॥<sup>41</sup>

अर्थात् जिनके शरीर की कांति सुवर्ण के समान उज्ज्वल थी, जो भक्त पुरुषों को स्वर्ग, अपवर्ण आदि उत्तम गति को देने वाले थे, जो स्वसमानकालिक नारायण के चित्त को सर्वदा प्रसन्न किया करते थे और हित का उपदेश देकर आनंदित किया करते थे वे विनता माता के पुत्र श्रेयांसनाथ तुम सबको विभूति प्रदान करें। इस पद्य का द्वितीय अर्थ—

जिसके शरीर की आभा सुवर्ण के समान पीतवर्ण है, जो विभु है तथा श्रेय कल्याणरूप है, जिसने ऊँचे आकाश में सुन्दर गति प्रदान की है तथा जो श्रीकृष्ण के चित्त को हमेशा आनंदित करता है, वह विनतासुत वैनतेय-गरुड तुम सबको विभूति प्रदान करें।

**भाषा-शैली**

प्रस्तुत महाकाव्य की भाषा शैली भी अत्यन्त समृद्ध है। प्रसादगुण होने से कविता सहज बोधगम्य है। यथा—

विलोकयन्म्र कुतूहलेन लीलावतीनां मुखपङ्कजानि ।

जज्ञे स्मरः सेष्यरतिप्रयुक्त-कर्णोत्पलाघातसुखं चिरेण ॥<sup>42</sup>

अर्थात् सुन्दरियों के मुखकमल को कुतूहलपूर्वक देखते हुए युवक ईर्ष्यापूर्वक कर्णों में प्रयुक्त कमलों की मार के सुख को बहुत समय तक अनुभव करते रहे।

४१.        "        १।११

४२.        "        १।४४

### (3) नरनारायणनन्द महाकाव्यम्

आनन्द नामान्त काव्यों की प्रणाली का आरंभ पतंजली के द्वारा उल्लिखित महानंद काव्य के निर्देश से मिलता है।<sup>43</sup> आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने कौमुदी-मित्रानंद नाटक लिखा है।<sup>44</sup> वस्तुपाल का नरनारायणनन्द एक ऐसा महाकाव्य है, जिसके आधार पर आगे चलकर आनन्द, नामान्त काव्यों और नाटकों की एक परंपरा ही विशेष रूप से प्रारंभ हो गई थी। अमरचंद्रसूरि ने पद्मानन्द महाकाव्य लिखा है।<sup>45</sup> नेपाल के कवि मणिक ने भारत नंद नाटक १४वीं शती में लिखा है। कुवलयानंद की रचना अप्पय्य दीक्षित ने १७वीं शती में की है। इस तरह १७वीं शती में और भी अनेक आनन्द नामान्त रचनार्ये हुई हैं।<sup>46</sup> आनन्दनामान्त काव्यों का प्रमुख विषय मित्रता, आनन्द एवं उत्साह का प्रतिपादन करना ही हुआ करता था।

### रचयिता और रचनाकाल

वस्तुपाल गुजरात और मालवे का राजा एवं एक कुशल प्रशासक था। साथ ही वह एक महाकवि भी था। वस्तुपाल राजा वोरधवल और उसके पुत्र वीसलदेव का महामात्य था। कवि होने से उसे अच्छे कवियों की परख थी, इसका प्रमाण गिरनार के शिलालेखों में मिलता है।<sup>47</sup> आबू

४३. संस्कृत-साहित्य का इतिहास : लेखक वाचस्पति गैरोला, प्र० चौखंबा विद्याभवन वाराणसी. सन् १९६०, पृ० ६४५

४४. नाट्यदर्पणम्—ओरिएण्टल इन्स्टीच्यूट, बडौदा, सन् १९५१, पृ० ५१।

४५. पद्मानन्द, सं० एच०आर० कापडिया, प्रकाशन ओरिएण्टल इन्स्टीच्यूट बडौदा, सन् १९३२।

४६. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक वाचस्पति गैरोला, वाराणसी संस्करण पृ० ८१३, ९६६, ८१५।

४७. महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल और संस्कृत साहित्य में उसकी देन। डॉ० भोगीलाल साडेसरा, प्र० जैन संस्कृति सशोधन मण्डल, वाराणसी, सन् १९५९, पृ० ५५।

मन्दिर की प्रशस्ति में सोमेश्वर उसे सर्वश्रेष्ठ कवि कहता है।<sup>48</sup> राजशेखर सूरि ने उसे सरस्वती कण्ठाभरण कहा है।<sup>49</sup> कवि होने से उसके आश्रय लेने वाले कवियों का एक विद्यामण्डल था, जिसमें राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, नानाक पण्डित, मदन सुभट, अरिसिंह और मंत्री यशोवीर थे।<sup>50</sup> इनके अतिरिक्त वस्तुपाल के संपर्क में अनेक जैन कवि और पण्डित आए थे। उनमें अमरचन्द्र सूरि, विजयसेन सूरि, उदयप्रभ सूरि, नरचन्द्र सूरि, नरेन्द्रप्रभ सूरि, बालचन्द्र सूरि आदि हैं। इस अमात्य ने अणहिलवाड़, स्तम्भ तीर्थ और भृगुकच्छ में पुस्तक भंडार भी स्थापन किए थे। वसन्तपाल यह उपनाम वस्तुपाल को हरिहर, सोमेश्वर और अन्य कवियां ने प्रदान किया था। वस्तुपाल का जन्म अणहिलवाड़ के शिक्षित परिवार में हुआ था। उसके पिता का नाम आसराज या अश्वराज और माता का नाम कुमारदेवी था। कवि के गुरु विजयसेन सूरि थे। वस्तुपाल जब मंत्री बने तो उन्होंने शत्रुंजय और गिरनार के लिए सन् १२२१, १२३४, ३५, ३६, ३७ में यात्रा-संध के द्वारा यात्राएं करायी थीं। सन् १२४० में वह शत्रुंजय की अन्तिम यात्रा के लिए निकला था पर मार्ग में ही उसका निधन हो गया। फलतः यात्रा अधूरी रह गयी।<sup>51</sup> सन् १२३२ में वस्तुपाल ने गिरनार में जैन मंदिरों का निर्माण कराया। आबू का मंदिर देलवाड़ा के मंदिरों के बीच में है। इसे वस्तुपाल के बड़े भ्राता लूणिग की स्मृति में बनवाया गया था।

सन् १२२१ के बाद नरनारायणानंद महाकाव्य की रचना हुई है।

४८. प्राचीन जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, सं० मुनि जिनविजय सन् १६२१, लेख सं० ६५।

४९. प्रबन्धकोश के अन्तर्गत वस्तुपाल प्रबन्ध, सं० मुनि जिनविजय अहमदाबाद तथा “सरस्वतीकण्ठाभरण—लघु भोजराज—महाकवि महामात्य—श्रीवस्तुपालेन—” प्रबन्धचिन्तामणि, सिद्धी जैन विद्यापीठ, सन् १९३३, पृ० १००।

५०. वस्तुपाल का विद्यामण्डल, भोगीलाल सांडेसरा, प्र० जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, पत्रिका नं० १६, पृ० ३

५१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल—भोगीलाल सांडेसरा, वाराणसी सन् १९४६, पृ० ४८

इस महाकाव्य के १६वें सर्ग की प्रशस्ति में आबू और गिरनार के मंदिरों का उल्लेख नहीं है। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि इस महाकाव्य की रचना सन् १२३०-३१ में हुई होगी। कवि वस्तुपाल का निधन वि० सं० १२६६ माघकृष्ण ५ सन् १२४६ को हुआ।<sup>52</sup>

इसलिए कहा जा सकता है कि वस्तुपाल का समय १३वीं शती है। वस्तुपाल की इस कृति के अतिरिक्त आदिनाथ स्तोत्र, अम्बिकास्तोत्र और आराधना गाथा, ये ४ कृतियां हैं।<sup>53</sup>

### कथानक

प्रथम सर्ग—प्रथम सर्ग में कवि समुद्र तट स्थित द्वारका नगरी के वैभव और शोभा का वर्णन करता है। इस नगर में चित्ताकर्षक रमणीय भवन हैं। प्रशस्त और सुशोभित राजमार्ग है। जन-संकुल हाटें हैं—इत्यादि।

द्वितीय सर्ग—द्वितीय सर्ग में श्रीकृष्ण राजसभा में विराजित हैं। दूत आकर उन्हें संदेश देता है कि रेवतक पर्वत स्थित प्रभास तीर्थ में अर्जुन का आगमन हुआ है। श्रीकृष्ण सोत्साह अर्जुन का स्वागत करने तथा उससे भेंट करने जाते हैं।

तृतीय सर्ग—तृतीय सर्ग में श्री कृष्ण अर्जुन मिलन का वर्णन है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कुशल क्षेम पूछते हैं।

चौथा सर्ग—चौथे सर्ग में ऋतु वर्णन है। षड्ऋतुएं सेवा के लिए उपस्थित होती हैं। सर्वत्र प्रसन्नता, उल्लास और उमंग का वातावरण छा जाता है।

पांचवां सर्ग—पांचवें सर्ग में प्रकृति वर्णन की प्रधानता है। सूर्यास्त हो जाता है, सर्वत्र सांध्य सुषमा छा जाती है। कालान्तर में चन्द्रमा की शुभ्र-शीतल चांदनी छिटक जाती है।

छठा सर्ग—छठे सर्ग में द्वारावती के नगरवासियों का सुखमय

५२. वसन्तविलास, बड़ौदा १९१७ ई० १४।३७

५३. जैनस्तोत्र समुच्चय, सं० चतुरविजयमुनि, प्र० निर्णयसागर प्रेस बम्बई, पृ० १४३

जीवन वर्णित है । नव-दम्पति सुरापान का आनन्द लेते हैं और मधुमय क्रीडाएं करते हैं । रात्रि इसी प्रकार व्यतीत हो जाती है ।

सातवां सर्ग—सातवें सर्ग में सूर्योदय का वर्णन आता है । कमल पुष्प विकसित हो जाते हैं । उन पर रात-भर से बन्दी भ्रमर उ नें लगते हैं ।

आठवां सर्ग—आठवें सर्ग में बलराम रेवतिक पर्वत पर सपरिवार पहुंचते हैं । उनको सेना भी साथ है । अर्जुन को लेकर श्रीकृष्ण सपरिवार वन विहार के लिए जाते हैं ।

नौवां सर्ग—नौवें सर्ग में युवक-युवतियाँ पुष्पचयन करती हैं । दिन भर के इस कार्य से थकित सर्वजन विश्राम करने लगते हैं ।

दसवां सर्ग—दसवें सर्ग में पुनः मूल कथानक का सूत्र पकड़ में आता है । जलत्रोड़ारत सुभद्रा को देखकर अर्जुन उस पर मुग्ध हो जाता है, सुभद्रा भी अर्जुन के प्रति आकृष्ट होती है ।

ग्यारहवां सर्ग—ग्यारहवें सर्ग में अर्जुन और सुभद्रा की पारस्परिक वियोग स्थिति के कारण उत्पन्न उदासीनता का चित्रण है । सुभद्रा अर्जुन के पास दून भेजती है और उसे रेवतिक उद्यान में मिलन के लिए निमंत्रित करती है ।

बारहवां सर्ग—बारहवें सर्ग में मन्मथ पूजन के बहाने सुभद्रा उद्यान में पहुंचती है और अर्जुन उसका हरण कर लेता है । इस अपहरण की सूचना पाकर बलराम सात्यकि को उनका पीछा करने के लिए सेना सहित भेजता है । श्रीकृष्ण मध्यस्थ बनकर बलदेव को शांत करते हैं ।

तेरहवां सर्ग—तेरहवें सर्ग में सात्यकि और अर्जुन के युद्ध का वर्णन है । बलदेव रणभूमि में जाकर युद्ध रोकने का आदेश देता है ।

चौदहवां सर्ग—चौदहवें सर्ग में युद्ध समाप्त हो जाता है । श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर द्वारिका लौट जाते हैं ।

पन्द्रहवां सर्ग—पन्द्रहवें सर्ग में अर्जुन सुभद्रा विवाह वर्णित है । स्वयं बलराम यह पाणिग्रहण संपन्न करवाते हैं । यहीं इस काव्य का कथानक इति पर पहुंच जाता है ।



### कथानक का स्रोत या आधार ग्रंथ

महाभारत इस काव्य के कथानक का आधार ग्रंथ है।<sup>54</sup> आद्योपांत श्रीकृष्ण और अर्जुन के पारस्परिक स्नेह और मित्रता ही सर्वत्र व्याप्त है, यही इस काव्य का मूल प्रतिपाद्य है। महाभारत में वर्णित प्रस्तुत प्रसंग और नरनारायणानन्द काव्य के कथानक में साम्य है। पुष्टि के प्रयोजन से महाभारत में वर्णित उक्त प्रसंग भी उल्लेखनीय है। महाभारत के आदि पर्व के अन्तर्गत २१७ से २२०वें अध्याय तक यह कथा वर्णित है। कथा की रूपरेखा कतिपय बिन्दुओं में प्रस्तुत की जा सकती है।

- अर्जुन से मिलनार्थ श्रीकृष्ण का रेवतिक पर्वत पर आगमन।
- बलराम का भी सपरिवार एवं सेना सहित पर्वत पर आगमन।
- जल क्रीड़ा के प्रसंग में सुभद्रा और अर्जुन का परस्पर मुग्ध होना।
- अर्जुन द्वारा सुभद्रापहरण।
- सात्यकि एवं अर्जुन के मध्य युद्ध।
- श्रीकृष्ण की मध्यस्थता से युद्ध की समाप्ति।
- अर्जुन सुभद्रा का पाणिग्रहण।

महाभारत में आई हुई इस कथा की उपर्युक्त रूपरेखा से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि ने महाभारत को ही अपने काव्य के कथानक का आधार बनाया है और प्रस्तुतीकरण की भिन्नता के साथ यही कथा पुनः विवेचित कर दी गई है। कथानक के स्वरूप और घटनाक्रम के आकार-प्रकार को देखते हुए काव्य-प्रबन्ध रचना तो अवश्य है, किन्तु फलक विस्तार के अभाव में इसे महाकाव्य कहने में संकोच ही होता है। कृति को महाकाव्य मानने वाले विद्वज्जनों के पक्ष में यह तथ्य अवश्य ही है कि कथानक सर्गबद्ध है, किन्तु यह लक्षण प्रबन्ध काव्य का है। खण्ड काव्य में भी सर्गबद्धता होती है। नायक के जीवन की एक ही घटना वर्णित है। समग्र जीवन चित्रित नहीं है। इसका मन्तव्य भी मात्र श्रीकृष्ण अर्जुन

मैत्री या स्नेह को व्यक्त करने मात्र तक ही सीमित है । ऐसी स्थिति में इसे महाकाव्य के स्थान पर खण्ड काव्य मानना ही अधिक समीचीन है ।

स्पष्ट है कि अर्जुन इस प्रबन्ध काव्य का नायक है । बलदेव प्रति-नायक है जो सुभद्रा प्राप्ति के फल के मार्ग में नायक के लिए बाधक बनता है । अन्य पात्र हैं—श्रीकृष्ण, सुभद्रा, सात्यकि आदि । काव्य में अलंकृत शैली का प्रयोग विशेषतः द्रष्टव्य है । प्रकृति चित्रण में कवि ने कथावस्तु की घटनाओं को आधार प्रदान करने के लिए प्रकृतिगत स्थितियों की योजना की है । दिन-रात, सन्ध्याएं, ऋतुएं जीवन के साथ-साथ चलती हैं । कवि ने प्रकृति के सहज चित्रों के बीच नरनारायण की मैत्री का विकास चित्रित किया है ।

### चरित्र-चित्रण

उत्कृष्ट चरित्र का होना महाकाव्य के लिए एक आवश्यक तत्व है, चरित्र की परिभाषा करते हुए अरस्तू ने लिखा है—“चारित्र्य उसे कहते हैं जो किसी व्यक्ति की रुचि-विरुचि का प्रदर्शन करता हुआ नैतिक प्रयोजन को व्यक्त करे ।”<sup>55</sup>

प्रस्तुत काव्य में अर्जुन, श्रीकृष्ण, सुभद्रा, बलराम, सात्यकि और दूत वनपाल आदि पात्र हैं । जिनमें अर्जुन तथा श्रीकृष्ण के चरित्र का विकास स्पष्ट प्रतिभासित होता है । अर्जुन नायक है और इसके चरित्र में सौन्दर्य, शील और शक्ति का समन्वय है । अर्जुन सुंदर, प्रकृति प्रेमी, सहृदय और पराक्रमी है । सुभद्रा के सौन्दर्य को देखकर अर्जुन व्याकुल हो जाते हैं । उन्हें अपना जीवन नीरस प्रतीत होने लगता है । मित्र श्रीकृष्ण के परामर्श से वे सुभद्रा का अपहरण करते हैं । श्रीकृष्ण बलराम से अर्जुन के गुणों का चित्रण करते हुए कहते हैं ।

हरिः पर इवैश्वर्ये शास्त्रे गुरुरिवापरः ।

स्मरोज्य इव सौन्दर्ये शौर्ये किन्तु स एव सः ॥१२-७८॥

---

५५. अरस्तू का काव्यशास्त्र : डॉ० नगेन्द्र (हिन्दी अनुवाद) हिन्दी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली, वि०सं० २०५४. पृ० २२

अर्जुन ऐश्वर्य में विष्णु, ज्ञान में गुरु, सौंदर्य में कामदेव और शौर्य में वह अपने समान अकेला ही है। कवि वस्तुपाल ने ऐसे महनीय चरित्रों का उद्घाटन किया है। यद्यपि कथावस्तु अत्यल्प है तो भी चरित्रों का विकसित स्वरूप सुन्दर रूपेण चित्रित है।<sup>56</sup>

जैसाकि मैं पूर्व में विवेचित कर चुका हूं कि आनन्द-नामान्त महाकाव्यों में मित्रता, आनन्द और उल्लास की भावनाओं का मनोरम चित्रण होता है। उसी के अनुसार इस काव्य का कथानक विविध घटनाओं की अन्विति से युक्त तथा मानव जीवन की गहनतम अनुभूतियों और उच्चा-दर्शों को उद्भावना से पूर्ण है। मानव हृदय की शाश्वत वृत्तियों का उद्घाटन, कर्त्तव्यपरायणता, स्वार्थत्याग और उदात्तभाव भूमि काव्य-रसिकों और पाठकों को सहज ही अपनी ओर खींच लेती है।

### रस-वर्णन

रसों के वर्णन में भी कवि ने अद्भुत सफलता अर्जित की है। शृंगार, वीर, रौद्र, बीभत्स आदि रसों का प्रस्तुत महाकाव्य में सुन्दर समायोजन हुआ है।

पार्थ सुभद्रा के अङ्ग प्रत्यंगों के सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है। आर्द्रवस्त्रों के भीतर से उसका कुसमुवत् लोभनीय लावण्य उसके हृदय में सम्भोगेच्छा उत्पन्न कर देता है। यथा—

नारात्रिचौरान्तरदृश्यमान-सर्वां गलावण्यविशेषरम्याम् ।

पश्यन्निमां मन्मथमथ्यमानचेताश्चिरं चिन्तयतिस्म पार्थः ॥<sup>57</sup>

संयोग शृंगार के साथ ही वियोग शृंगार के वर्णन में भी कवि पोछे नहीं रहा है। अर्जुन और सुभद्रा दोनों ही विरह पीड़ित हैं :—

किमु चन्दनचर्चनं वृथा विहितं वक्षसि तापशान्तये ।

अमुना दयितास्मितप्रभा-स्मृतिबीजेन हहा हतोऽस्म्यहम् ।<sup>58</sup>

५६. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ३३८

लेखक डॉ० नेमिचन्द्र जैन, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

५७. नरनारायणानन्दमहाकाव्यम् १०-५३

५८. नरनारायणानन्दमहाकाव्यम् ११-११

यहां सुभद्रा आलम्बन विभाव है। चन्दन चर्चन, उशीर आदि का लेप उद्दीपन विभाव है। छाती या शय्या में मुंह छिपाना अनुभाव है। स्मृति, हर्ष, लज्जा, विबोध आदि संचारी विभाव हैं। इन भावों से परिपुष्ट रति स्थायीभाव है जो विप्रलम्भ शृंगार को बतलाता है।<sup>59</sup>

### अलंकार-वर्णन

जैसे स्वस्थ शरीर पर आभूषणों का प्रयोग उचित लगता है। इस प्रकार के सरस काव्यों में अलंकारों का प्रयोग अपना महत्व रखता है। प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने अलंकारों का समावेश सुन्दर रीति से किया है।

### भाषा-शैली

भाषा-शैली की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य में अलंकृत शैली का प्रयोग हुआ है। चतुर्दश सर्ग में चित्रालंकार का उपयोग करते हुए कवि ने एकाक्षर, द्व्यक्षर, चतुरक्षर, षडक्षर, अन्तस्थ, दन्त्य, तालव्य, ओष्ठ्य और मूर्धन्य आदि वर्णों का प्रयोग कर भाषाशैली को कलापूर्ण रूप प्रदान किया है। एकाक्षर में मात्रालंकार का प्रयोग करते हुए कवि ने अभिनव अर्थ की सृष्टि की है—

लोलालोलं लूलोलेली लाली लालललोलललः ।

लोलं लीलं लुलल्लोलोललोलल्लीलाललोललः ।<sup>60</sup>

इसे गौडीय शैली का काव्य मान सकते हैं क्योंकि इसमें प्रसंगानुकूल भाषा में रूप परिवर्तन की क्षमता है। भाव और परिस्थिति के अनुसार भाषा कहीं कोमल कहीं मधुर तो कहीं ओजस्विनी दिखाई देती है। भावों के अनुसार ध्वनियों का नियोजन करने में कवि सफल हुआ है।

### छन्द-योजना

कवि ने अपने समस्त सर्गों में भिन्न-भिन्न छंदों का प्रयोग किया है। जैसे इन्द्रवज्रा, उपजाति, शार्दूल-विक्रीडित, प्रमिताक्षरा, वसन्त-

५९. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ३४०-४१, भा० ज्ञानपीठ

६०. नरनारायणानन्दमहाकाव्यम् १४।२३

तिलका, मंदाक्रांता, रथोद्धता, स्रग्धरा, मालिनी, शिखरिणी, द्रुतविलम्बित, आर्या, ललिता, और अनुष्टुप् आदि । कवि को छन्दों की अच्छी जानकारी है और उनका योग्यरीति से प्रयोग किया है । यह बात कवि स्वयं अन्य कवियों का आश्रयदाता और प्रेरक व प्रशंसक था, इस ऐतिहासिक तथ्य से और उसके राजा होने से स्वयं प्रमाणित है ।

### नेमिनाथ महाकाव्यम्

जैन कवियों द्वारा रचित महाकाव्यों की शृंखला में कविवर कीर्ति-रत्नसूरि रचित नेमिनाथ महाकाव्यम् का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है । इसमें जैन धर्म के २२वें तीर्थंकर प्रभु नेमिनाथ का प्रेरक चरित महाकाव्योचित विस्तार के साथ १२ सर्गों में प्रस्तुत किया गया है । काव्य में भाव पक्ष व कलापक्ष दोनों का समेल यत्न-तत्न विद्यमान है ।

महाकाव्यत्व—महाकाव्य के जो मापदंड निश्चित किए हैं तदनुसार कवि ने पालन किए हैं, इसमें शृंगाररस को अंगीरस के रूपमें स्वीकारा गया है । क्षत्रिय कुल प्रसूत देवतुल्य नेमिनाथ इसके धीरोदात्त नायक हैं, धर्म व मोक्ष प्राप्ति हेतु इसका उद्देश्य है । इसमें जैन पुराण का मुख्य आधार है । प्रथम सर्ग में शिवादेवी के गर्भ में जिनेश्वर के अवतरित होने में मुख सन्धि है । इसमें काव्य के फलागम का बीज निहित है । उसके प्रति पाठक की उत्सुकता जागृत होती है । द्वितीय सर्ग में स्वप्न दर्शन से लेकर तृतीय सर्ग में पुत्र जन्म तक प्रतिमुख सन्धि स्वीकार की जा सकती है । चतुर्थ से अष्टम सर्ग तक गर्भसन्धि की योजना की गई है । नवें से ग्यारहवें सर्ग तक एक ओर नेमिनाथ द्वारा विवाह प्रस्ताव स्वीकार कर लेने से मुख्य फल की प्राप्ति में बाधा उपस्थित होती है, किन्तु दूसरी ओर पशु रुदन सुनकर दीक्षा ग्रहण करने से फल प्राप्ति निश्चित हो जाती है । यहाँ विमर्श सन्धि का निर्वाह हुआ है । ग्यारहवें सर्ग के अन्त में केवलज्ञान तथा बारहवें सर्ग में शिवत्व प्राप्त करने के वर्णन में निर्वहण सन्धि विद्यमान है । महाकाव्य के लक्षणा-नुसार नगर, पर्वत, वन, दूतप्रेषण, सैन्यप्रयाण, युद्ध, पुत्रजन्म, षड्भूत आदि के विस्तृत वर्णन पाये जाते हैं । इसमें आरंभ नमस्कारात्मक मंगलाचरण से किया गया है । भाषा-शैली में उदात्तता है । अन्तिम सर्ग के एक अंश में

चित्रकाव्य की योजना की गई है। शीर्षक व सर्गों का नामकरण भी शास्त्री-चित है। सज्जन-प्रशंसा, खल-निन्दा तथा नगर-वर्णन की रूढ़ियों का भी पालन किया है। छन्द प्रयोग सम्बन्धी परम्परा का कवि ने निर्वाह नहीं किया है। इस प्रस्तुत काव्य में अनिवार्य सभी तत्व विद्यमान हैं।

**शास्त्रीयता**—इसमें पौराणिक महाकाव्यों के अनुरूप शिवादेवो के गर्भ में जिनेश्वर का अवतरण होना, फलस्वरूप १४ स्वप्नों का दिखलाई देना, दिक्कुमारियां नवजात शिशु का सूतिकर्म करती हैं। उनका स्नातोत्सव स्वयं देवराज द्वारा सम्पन्न होता है। इस महाकाव्य में पौराणिकतानुसार नारी को जीवन-पथ को बाधक मानी गयी है। काव्य का पर्यवसान शान्त रस में हुआ है। काव्यनायक दीक्षित होकर केवलज्ञान व शिवत्व को प्राप्त करते हैं। पौराणिकता के साथ शास्त्रीय तत्व भी प्रचुर मात्रा में हैं। अलंकारों का भावपूर्ण विधान, काव्य-रूढ़ियों का विनियोग, तीव्र रस-व्यंजना, सुमधुर छन्दों का उपयोग, प्रकृति व मानव सौन्दर्य का प्रयोग, आदि-आदि इसके शास्त्रीय महाकाव्यत्व को सिद्ध करने वाले तत्व हैं।

### कवि-परिचय, रचना-काल

प्रस्तुत काव्य में कविवर कीर्तिराज के जीवन-परिचय का उल्लेख नहीं है। ऐतिहासिक लेखों के आधार पर कीर्तिराज अपने समय के प्रख्यात खरतरगच्छीय आचार्य थे। आप संखवालगोत्रीय शाहू कोचर के वंशज दीपा के कनिष्ठ पुत्र थे। आपका जन्म सम्वत् १४४५ में दीपा की पत्नी देवलदे की कुक्षि से हुआ था। जन्म नाम देहहाकुंवर था। आपने १४ वर्ष की अवस्था में आचार्य जिनवर्द्धन सूरि से दीक्षा ग्रहण की। आपका नाम कीर्तिराज रखा गया। गच्छनायक जिनभद्र सूरि ने सम्वत् १४५७ में आपको आचार्य पद प्रदान किया। सम्वत् १५२५ में ७६ वर्ष की आयु में आपका देहावसान हुआ। आपको जब १४८० में उपाध्याय पद प्राप्त हुआ था तभी इस महाकाव्य की रचना की गयी थी। यह १४८० तथा १४९७ के मध्य लिखा गया महाकाव्य है।

### कथानक

प्रथम सर्ग में यादवरराज समुद्रविजय की पत्नि शिवादेवी के गर्भ

में २२वें तीर्थंकर का अवतरण होना । राजधानी सूर्यपुर का रोचक वर्णन किया गया है ।

द्वितीय सर्ग में शिवादेवी द्वारा १४ स्वप्नों का देखना । भावी में पुत्र की प्राप्ति । भविष्य में ४ दिशाओं को जीतकर अधिपति बनने आदि के उल्लेख के साथ प्रभात-वर्णन नामक इस सर्ग के अन्त में प्रभात का मार्मिक वर्णन किया गया है ।

तृतीय सर्ग में पुत्रजन्म का वर्णन है ।

चतुर्थ सर्ग में दिक्कुमारियों द्वारा सृति कर्म करना ।

पंचम सर्ग में इन्द्र शिशु को जन्माभिषेक के लिए मेरुपर्वत पर ले जाते हैं । छठे सर्ग में शिश के स्नातोत्सव का वर्णन है । सातवें सर्ग में पुत्र जन्म का समाचार पाकर समुद्रविजय का आनन्द विभोर होना , बंदियों को मुक्त करना, जीव वध पर प्रतिबंध लगाना, शिशु का नाम अरिष्टनेमि रखा जाना है । दशवें सर्ग में अरिष्टनेमि के सौन्दर्य का एवं परम्परागत षड् ऋतुओं का हृदयग्राही वर्णन व शक्ति परीक्षा में कृष्ण को पराजित करना है । नवें सर्ग में माता-पिता द्वारा विवाह का आग्रह करना, नेमिनाथ द्वारा अस्वीकार कर देना, परन्तु माता-पिता के आग्रहवश शादी के लिए उग्रसेन की पुत्री राजीमती के साथ तैयार होना है । दसवें सर्ग में नेमिनाथ वधूगृह को प्रस्थान करते हैं । वधूगृह में बारात हेतु पशुओं की करुण चित्कार को सुनकर वे विवाह को बीच में ही छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं । ग्यारहवें सर्ग में राजीमती का नेमि-वियोग से उत्पन्न विलाप का वर्णन है, मोह-संयम युद्ध-वर्णन नामक इस सर्ग के उत्तरार्द्ध में मोह पराजित होकर नेमिनाथ के हृदयदुर्ग को छोड़ देता है, जिससे उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होती है । बारहवें सर्ग में श्रीकृष्ण का दर्शनार्थ जाना, देशनोपदेश श्रवण कर कई लोगों द्वारा संयम ग्रहण करना, आदि का सुन्दर वर्णन कवि द्वारा सम्पन्न किया गया है । कथानक अत्यल्प है; किन्तु कवि ने विस्तार करने का प्रयास किया है । काव्य कथानक की दृष्टि से ढीला पड़ता नजर जाता है । लेकिन, महाकाव्य की दृष्टि से काव्यरूढ़ियां भी जगह-जगह दिखलाई पड़ती हैं ।

### प्रकृति-चित्रण

कवि ने महाकाव्य के अन्य पक्षों की भांति प्रकृति-चित्रण में अपनी

मौलिकता का परिचय दिया है। उद्दीपन व आलम्बन पक्ष का सरस वर्णन किया है। शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

शरददभ्रजला कलगजिता स चपला चपलानिलनोदिता ।

दिवि चचाल नवाम्बुदमण्डली, गजघटेव मनोभवभूपते ॥

प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन कवि ने किया है।

### सौन्दर्य-चित्रण

काव्य में कतिपय पात्रों के कायिक सौन्दर्य का हृदयहारी चित्रण किया गया गया है। नख-शिख वर्णन, नवीन-नवीन उपमानों की योजना से काव्य कला में प्रशंसनीय भाव-प्रेषणीयता आई है। देवांगनाओं की जघनस्थली की तुलना कामदेव की आसनगद्दी से करते हुए लिखा है—

वृषादुकूलेन सुकोमलेन विलग्नकांचीगुणजात्यरचना ।

विभाति यासां जघनस्थली सा मनोभवस्यासनगदिकेव ॥

इसी प्रकार राजीमती की जङ्घाओं को कदलो स्तम्भ व कामगज के आलान के रूप में चित्रित किया गया है।

### रसयोजना

मनोरागों का चित्रण करने में कीर्तिराज कुशल कवि हैं। साधारण सा प्रसंग भी तीव्र रसानुभूति कराता है। इसमें शृंगाररस, अंगीरस के रूप में है। करुण, रौद्र आदि का भी यथोचित प्रयोग किया गया है। ऋतु-वर्णन द्वारा शृंगार के अनेक रमणीय चित्र अङ्कित किए हैं—

उपवने पवनेरितपादपे, नवतरं बत रंतुमनाः परा ।

सकरुणा करुणावचये प्रियं, प्रियतमा यतज्ञानमवारयत् ॥

उपवन के मादक वातावरण से कामाकुल नायिका नये छैल पर रीझ गयी हो तो इसमें आश्चर्य क्या ?

### चरित्र-चित्रण

काव्य के संक्षिप्त कथानक में पात्र संख्या भी सीमित है। कथानायक नेमिनाथ के अलावा उनके पिता समुद्रविजय, माता शिवादेवा, राजीमती, उग्रसेन, प्रतीकात्मक सम्राट मोह तथा संयम और दूत कैतव एवं मन्त्री विवेक ही काव्य के पात्र हैं।



**नेमिनाथ**—जिनेश्वर नेमिनाथ काव्य के नायक हैं। वे देवोचित विभूति तथा शक्ति से सम्पन्न हैं। उनके धरा पर अवतरित होते ही समुद्रविजय के समस्त शत्रु निस्तेज हो जाते हैं। दिक्कुमारियां उनका सूति भ्रम करती हैं। जन्माभिषेक करने स्वयं सुरपति इन्द्र आते हैं। नेमिनाथ का चरित्र विरक्ति के केंद्र बिंदु पर घूमता है। वे वीतराग नायक हैं। यौवनावस्था में भी वैराग्य रंग में रंगे रहते हैं। उनका मन्तव्य है कि वास्तविक सुख ब्रह्मलोक में ही विद्यमान है—

हितं धर्मौषधं हित्व मूढा कामज्वरादिताः ।

मुखप्रियमपथ्यं तु सेवन्ते ललनौषधम् ॥

उनकी साधना की परिणति मोक्ष-प्राप्ति में होती है। अदम्य काम-शत्रु को पराजित करना, उनकी धीरोदात्तता की प्रतिष्ठा है।

**समुद्रविजय**—यदुपति समुद्रविजय कथानायक के पिताश्री हैं। आप में सम्पूर्ण राजोचित गुण विद्यमान हैं। समुद्रविजय तेजस्वी शासक हैं। उनके बन्दी के शब्दों में अग्नि तथा सूर्य का तेज भले ही शांत हो जाए किन्तु उनका पराक्रम अप्रतिहत है।

विध्यायतेऽम्भसा वन्हिः, सूर्योऽब्देन पिधोयते ।

न केनापि परं राजंस्त्वत्तेजः परिहीयते ॥

उनका राज्य पाशविक बल पर आधारित नहीं है। समुद्रविजय पुत्रवत्सल पिता हैं। ये अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति हैं। आर्हत धर्म उन्हें पुत्र, पत्नी, राज्य तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

**राजीमती**—राजीमती काव्य की सती नायिका है। शील-सम्पन्ना व रूपवती है। नेमिनाथ की पत्नी बनने का सौभाग्य मिला था पर विधि के विधान ने परिवर्तन ला दिया। वह संसार मार्ग को छोड़कर मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर होती है। केवलज्ञानी नेमिप्रभु से पूर्व परमपद पाकर अद्भुत सौभाग्य प्राप्त करती है।

**उग्रसेन**—भोजपुत्र उग्रसेन का चरित्र भी मानवीय गुणों से ओत-प्रोत है। लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों उसके सहयोगिनी हैं। विपक्षी नृपगण उनके तेज से भयभीत होकर कन्याओं के उपहारों से उनका रोष शान्त करते हैं।

**अन्य पात्र**—शिवादेवी नेमिनाथ की माता है। प्रतीकात्मक सम्राट मोह तथा संयम राजनीति कुशल शासकों की भांति आचरण करते हैं। मोहराज दूत कैतव को भेजकर संयम नृपति को नेमिनाथ का हृदय-दुर्ग छोड़ने का आदेश देता है। संयमराज का मंत्री विवेक दूत की उक्तियों का मुंहतोड़ उत्तर देता है।

### भाषा

भाषा-शैली की दृष्टि से काव्य की अपनी गरिमा है। प्रसादपूर्ण प्रांजल भाषा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। काव्य में भाव व कलापक्ष का सुन्दर सगम है। अनुप्रास तथा यमक के प्रयोग भी दिखलाई पड़ते हैं। सरलता के साथ कोमलता भी द्रष्टव्य है—

विवाह्य कुमारेन्द्र ! बालाश्चंचललोचनाः ।

भुंक्ष्व भोगान् समं ताम्रिप्सरोभिरिवामरः ॥

प्रसाद गुण युक्त काव्य में सूक्तियों और लोकोक्तियों का विशाल कोश है। इन सब गुणों के बावजूद कुछ दोष भी भाषा-शैली को लेकर रह गये हैं, जैसे कुछ स्थलों पर विकट समासांत पदावली का प्रयोग हुआ है जहां उसका औचित्य नहीं था। छन्द पूर्ति के लिए कुछ स्थानों पर अतिरिक्त पदों को जोड़ दिया गया है। सब मिलाकर नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा में निजी आकर्षण है।

### विद्वत्ता-प्रदर्शन

भारवि की राह पर चलते हुए कीर्तिराज ने भी अन्तिम सर्ग में चित्रकाव्य के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया है, पर ऐसे पद्यों की संख्या बहुत कम है। निम्नोक्त पद्य में एकाक्षरानुप्रास द्रष्टव्य है, इसकी रचना केवल एक व्यंजन पर आश्रित है। ३ स्वर भी इसमें प्रयुक्त हुए हैं—

अतीतान्तेत एतां ते तस्मन्तु ततताततिम् ।

ऋतर्ता तां तु तोतोस्तु, तातोऽतर्ता ततोन्ततुम् ॥

## अलंकार-विधान

प्रकृति-चित्रण आदि के समान अलंकारों का प्रयोग भी कवि द्वारा किया गया है। कीर्तिराज ने अप्रस्तुता को खोज में अपना जाल दूर-दूर तक फेंका है। जीवन के विविध पक्षों से उपमान ग्रहण किए हैं। प्रभुदर्शन से इन्द्र का क्रोध ऐसे शांत हो गया जैसे अमृत पान से ज्वर पीड़ा, वर्षा से दावाग्नि। अनेक मार्मिक उपमाएं भी दी गयी हैं। उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग भी कुशलता के साथ किया गया है। संदेह, विरोधाभास, विषम, व्यतिरेक, विभावना, निदर्शना, सहोक्ति, विषम आदि अलंकार भी नेमिनाथ महाकाव्य में दर्शनीय हैं।

## छन्द-योजना

काव्य में अनेक छन्दों की योजना की गयी है। प्रथम, सप्तम, नवम सर्ग में अनुष्टुप् की प्रधानता है। कुछ श्लोक मालिनी, उपजाति, उपगीति व नन्दिनी में हैं। सर्गान्त में उपजाति व मन्दाक्रांता का उपयोग हुआ है। सब मिलाकर काव्य में २५ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। नेमिनाथ महाकाव्य की रचना कविवर कालिदास की परम्परा में हुई है। एक धार्मिक कथानक चुनकर भी कीर्तिराज ने अपनी कवित्व-शक्ति एवं संतुलित दृष्टिकोण के कारण साहित्य को एक ऐसा रोचक महाकाव्य प्रदान किया है जिसे संस्कृत जगत युगों-युगों तक स्मरण रखे बिना नहीं रह सकता।

प्रस्तुत महाकाव्य हिन्दी अनुवाद सहित नाहटा ब्रदर्स, ४-जगमोहन मलिक लेन कलकत्ता से प्रकाशित है।

नेमिसंदेश काव्य : १७वीं सदी की रचना  
लेखक—हर्षप्रमोद

प्रद्युम्नलीलाप्रकाश : १८६६  
(चम्पूकाव्य) लेखक—शिवचन्द्रोपाध्याय

उपरोक्त काव्य उपलब्ध न होने के कारण यहाँ पर संकेत मात्र उल्लेख किया गया है।

## (४) सप्तसन्धानकाव्य (अनेकार्थ काव्य)

## कृति और कृतिकार

‘सप्तसन्धानमहाकाव्यम्’ में समानांतर रूप में सात महापुरुषों के

वर्णन सम्मिलित हैं। यथा—ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, श्रीराम और श्रीकृष्ण। इनके चरित्र इस कृति में सात सर्गों में व्याप्त हैं।

सप्तसंधान महाकाव्य के प्रणेता श्री मेघविजय उपाध्याय हैं। कवि मेघविजय साहित्य के अतिरिक्त व्याकरण, ज्योतिष, तर्कशास्त्र जैसे अन्यान्य विधाओं के भी निष्णात पण्डित थे। ये कृपाविजय जा के शिष्य थे और तपागच्छ के थे। प्रस्तुत महाकाव्य के अतिरिक्त देवानन्द महाकाव्य, हस्तसंजीवनं, वर्षप्रबोध युक्तिप्रबोध नाटक, चन्द्रप्रभा आदि कवि की प्रमुख रचनायें हैं। देवानन्द महाकाव्य की प्रशस्ति के उल्लेखानुसार यह रचना वि० ग० १७२७ (ई० सन् १६७०) की है।<sup>61</sup> इसमें कवि के काल के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। सप्तसंधान की रचना १७६० (ई० सन् १७०३) में सम्पूर्ण हुई थी।<sup>62</sup> यह कृति प्रकाशित है।<sup>63</sup>

### कथानक का सार

प्रथम सर्ग—गंगा और सिन्धु ये दो पावन सरिताएं भारत क्षेत्र में प्रवाहित होती हैं। इस क्षेत्र के इतिहास में ख्यात जनपद—कोशल, कुरु, मध्य प्रदेश और मगध देश हैं। इन्हीं जनपदों में अयोध्या, हस्तिनापुर, शौर्यपुर, वैशाली, वाराणसी, मथुरा, कुण्डपुरी आदि प्रसिद्ध नगर हैं। अयोध्या में भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) और श्रीरामचंद्र का जन्म हुआ। हस्तिनापुर में भगवान शांतिनाथ ने, शौर्यपुर में भगवान नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) ने, वाराणसी में भगवान पार्श्वनाथ ने, वैशाली में भगवान महावीर ने और मथुरा में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। इन महापुरुषों के नामों से जुड़कर ये नगर ही धन्य हो उठे हैं। अपने-अपने समयों

६१. मुनिनयनाश्वेन्दुमिते (१७२७ वि० सं०) वर्षे हर्षेण सादडीनगरे

देवानन्द-प्राप्तप्रशस्ति

६२. विदुरसमुनीन्द्रनां (१७६० वि० सं०) प्रमाणात् परिवत्सरे कृतोयमुद्यमः

सप्तसन्धानप्राप्तप्रशस्ति

६३. सप्तसन्धानकाव्य (वि० सं० २०००) श्री जैन साहित्यवर्धक सभा, गोपीपुरा, सूरत।

में अयोध्या में नाभिराय और दशरथ, हस्तिनापुर में विश्वसेन, शौर्यपुर में में समुद्रविजय, वाराणसी में अश्वसेन, कुण्डपुर में सिद्धार्थ राजा का राज्य था। इन यशस्वी नरेशों को रानियों ने उज्ज्वल स्वप्न देखे थे। परिणामतः इनके द्वारा पुत्र प्राप्ति की आशा का साफल्य संभव प्रतीत होने लगा।

द्वितीय सर्ग में गर्भवती रानियों ने यथासमय ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्धमान, राम और श्रीकृष्ण को जन्म दिया। चतुर्निकाय के देव अयोध्या, हस्तिनापुर, शौर्यपुर, वाराणसी और कुण्डपुर पहुंचे। प्रथम पांच महापुरुषों का इन्द्र ने सुमेरु पर जन्माभिषेक सम्पन्न किया।

तृतीय सर्ग में तीर्थंकरों का नामकरण सम्पन्न होता है। सातों शिशु क्रमशः बड़े होते हैं। बालक्रीड़ाएं करते हैं। उचित वय-प्राप्ति होने पर इनके विवाह भी हुए।

चतुर्थ सर्ग में तीर्थंकरत्व के परिणामस्वरूप देश में समृद्धि बढ़ने लगी। ऋषभदेव को बाहुबली आदि पुत्र प्राप्त हुए। श्रीकृष्ण का संबंध पांडवों से होता है। कभी हस्तिनापुर में राजा शान्तनु राज्य करते थे। उनके भीष्म पितामह जैसे पराक्रमा पुत्र हुए। इसी वंश में कुरु और पांडु कुमार भी हुए। कुरु के पुत्र कौरव, पाण्डु के पुत्र पांडव हुए। बड़ ही कौशल और निपुणता के साथ श्लेष के प्रयोग द्वारा कवि ने एक-एक पद्य में एक साथ इन सात महापुरुषों के जीवन वृत्तान्त प्रस्तुत किए हैं। राम को वनवास होता है, भरत विरक्त होकर शासनकार्य का संचालन करते हैं। तीर्थंकरगण दीक्षा ग्रहण का उपक्रम करते हैं।

पंचम सर्ग में दीक्षोपांत तीर्थंकर विहार आरम्भ करते हैं। पाँचों तीर्थंकर तपः साधना में प्रवृत्त हो जाते हैं। राम, लक्ष्मण और सीता वन विहार करते हैं। रावण द्वारा सीता का हरण होता है। उधर श्रीकृष्ण की पांडवों के साथ सुदृढ़ मित्रता होती है। द्वारका को वे सभी भांति दृढ़तर बनाते हैं। शिशुपाल जरासन्ध के साथ द्वारका पर आक्रमणार्थ प्रस्थान करता है।

छठे सर्ग में तीर्थकरा का कवलज्ञान की, राम को (रावण के साथ युद्ध के पश्चात्) अर्धचक्री पद की प्राप्ति होती है।

सातवें सर्ग में तीर्थकरों के समवशरण की रचना होती है। वे मुनिमण्डलियों के साथ विहार करते हैं। उनके प्रभाव पूर्ण उपदेशों से विरक्त हो अनेक राजा महाराजा दीक्षा ग्रहण करते हैं।

आठवें सर्ग में ऋषभनन्दन-भरत चक्रवर्ती दिग्विजय अभियान पर प्रस्थान करते हैं। वे विजय लाभ करते हैं। भगवान् ऋषभदेव के मोक्ष के पश्चात् भरत उनके द्वारा परिपालित भूमि की रक्षा करते हैं।

नौवें सर्ग में जगत भर में तीर्थकरों का धवलयश व्याप्त हो जाता है। राम अयोध्या नरेश हो जाते हैं। कालांतर में वे तप द्वारा निर्वाण प्राप्त करते हैं। द्वैपायन ऋषि द्वारा द्वारका का विनाश होता है। बलराम तपस्या कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

महाकवि मेघविजय ने प्रस्तुत महाकाव्य के कथानक में सात कथानकों का समानान्तर रूप से निर्वाह कर प्रचुर पाण्डित्य का परिचय दिया है। श्लेष द्वारा एक-एक शब्दावली से सात-सात भिन्नार्थों का सम्प्रेषण कर पाना अपने आपमें एक अद्भुत चमत्कार है। इसके प्रदर्शन में कवि सर्वथा सफल हुआ है। महाकाव्य के कथानक सूत्रों का चयन हरिवंशपुराण, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र आदि प्रतिष्ठित ग्रंथों से किया गया है। यह एक सफल महाकाव्य है और काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी सम्पन्न है। 'सप्तसंधान' अपनी अर्थवत्ता और अलंकार प्रयोग के लिए शाश्वत महत्व रखता है।

### आधार व महाकाव्यत्व

कवि ने अपने पूर्ववर्ती पुराण एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र आदि से प्रस्तुत कथा का चयन किया है। यद्यपि कथावस्तु में नवीनता के दर्शन नहीं होते तथापि कवि ने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय अवश्य दिया है। महाकाव्य की दृष्टि से देखा जाए तो भी प्रस्तुत काव्य खरा उतरता है। कथावस्तु सर्गबद्ध है, मंगलाचरण स्तुतिरूप में किया गया है। दुर्जन-निन्दा, सज्जन-प्रशंसा, देश, नगर, नदी, पर्वत आदि का वर्णन, कथा के नायकों का चरित्र, भिन्न-भिन्न रसों का प्रयोग, ऋतु-चित्रण,

अनेक भावधारियों के बीच समन्वय, युद्ध, विवाह, जन्म, तपस्या, दीक्षा और केवलज्ञानोत्सव का वर्णन एवं शक्तिगत वैशिष्ट्य आदि इसे महाकाव्य की कोटि में प्रस्तुत करते हैं। चतुर्वर्ग फलप्राप्ति काव्य में निहित है।

### रसवर्णन

प्रस्तुत काव्य में अंगी रस शान्त है, अंगरूप वीर, भयानक, शृंगार और करुण रस का नियोजन किया है। कथा के सातों ही नायक अंतिम जीवन में संसार से विरक्त बन तपश्चरण करते हैं और निर्वाण को प्राप्त होते हैं। शान्त रस का निरूपण करते हुए निर्वेद स्थायीभाव की व्यंजना की है—

सविषयो विषयीजनभक्ष्यवत्  
सुमनसां मनसां भयकारणम् ।  
भुविदितो विदितोऽपि तदामया,  
शबरसंवरसंकलितोऽभवत् ॥<sup>64</sup>

विषयों की अभिलाषा विषमिश्रित भोजन के सेवन करने के समान है, अतः विषयेच्छा विचारशोल व्यक्तियों के हृदय में भय उत्पन्न करती है। अतएव इस जगत्प्रसिद्ध विषयाभिलाषा का त्याग करने के लिए संवर की चर्चा करके कवि ने निर्वेद की व्यंजना की है।

### अलंकार वर्णन

प्रस्तुत काव्य में अलंकारों के तीनों प्रकार शब्दालंकार, अर्थालंकार और उपमालंकार की योजना की है। अनुप्रास, यमक, चित्र, शब्दालंकार हैं तो श्लेष उभयालंकार भी निहित हैं। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोध, अतिशयोक्ति प्रभृति अलंकार प्रधान हैं। यथा—

उत्प्रेक्षा—कवि ने भरत क्षेत्र का वर्णन करते हुए लिखा है—

मूर्धास्थि हेमाद्रिरमुष्यद्वला  
स्वादोहिताभ्रूषु सरिच्च वामा ।  
सादक्षिणा सिन्धुसरिद् रसाग्रं  
तयोः पथस्ते नयने च मध्ये ॥<sup>65</sup>

६४. सप्तसन्धानकाव्य, जैन साहित्यवर्धक सभा, सूरत, वि० सं० २०००, ८/२५

६५. सप्तसन्धानकाव्य, जैन साहित्यवर्धक सभा, सूरत, १/२१

इस भरत क्षेत्र का सिर हिमालय पर्वत है और हिमालय में प्रवाहित होने वाली रोहिता नाम की नदी इसकी चूड़ा है। आकाशगंगा वाम भू और सिन्धु दक्षिण भू है। नदी निर्गमनलिका जिह्वा है और गंगा तथा सिन्धु के ऊपरी भाग दोनों नेत्र हैं। इस प्रकार हिमालय की कल्पना सिर के रूप में की गयी है।

शैली—प्रसादगुण युक्त शैली होने पर भी श्लेष के कारण अर्थबोध में कुछ कठिनाई अवश्य आ जाती है। कवि ने अनुप्रास के साथ कोमल-कान्त पदावली का व्यवहार किया है। यथा—

दिवानिशं केलिकलाकलापै-रालीषु तालीविधिनोपजापैः ।

सत्यासुदव्या दिवसाः सुखेन, सूर्यः सतूयागमयांबभूवः ॥<sup>66</sup>

अस्तु, काव्य कसौटी पर कसने से कवि का प्रस्तुत काव्य खरा उतरता है तथा कवि ने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय प्रदान किया है।

इन प्रातिनिधिक जैन कृष्ण काव्यों का अनुशीलन कर मैंने अपना वक्तव्य यहां पर प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य रचनाएँ छूट जाती हैं। जिनको कालक्रमानुसार मैंने सूची के रूप में यहां पर प्रस्तुत कर दी है। इनमें कुछ अरिष्टनेमि के चरित्र से संबंधित हैं तो कुछ कृष्ण, प्रद्युम्न, पाण्डव और हरिवंश से संबंधित चरित्र काव्य हैं। इनका विवेचन हमारे विवेच्य विषय की परिधि के उपयुक्त नहीं था इसलिए इनका अधिक विवेचन न कर केवल सूचना मात्र दे दी है, जो इस प्रकार हैं :—

नाम	संवत्	कृतिकार
अरिष्टनेमि चरित	वि० सं० १२२३	रत्नप्रभसूरि
पाण्डव चरित	वि० सं० १२५७	देवप्रभसूरि
नेमिनाथ चरित	वि० सं० १२८५	उदयप्रभसूरि
प्रद्युम्न चरित	वि० सं० १५३०	सोमकीर्ति
नेमिनाथ पुराण	वि० सं० १५७५	ब्रह्म नेमिदत्त
प्रद्युम्न चरित	वि० सं० १६४५	रविसागर
पाण्डवपुराण	वि० सं० १६५७	श्री भूषण
नेमिनाथ चरित	वि० सं० १६६८	गुणविजय



अरिष्टनेमि चरित	वि० सं० १६६८	विजय गणि
प्रद्युम्न चरित	वि० सं० १६७१	रतनचन्द
हरिवंशपुराण	वि० सं० १६७१	भट्टारक यशःकीर्ति
हरिवंशपुराण	वि० सं० १६७५	„ श्रीभूषण
नेमिनाथ चरित	वि० सं० १६६५	कीर्तिराज
प्रद्युम्नचरित	१७वीं शदी	मल्लिभूषण

इसके अतिरिक्त संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य से संबंधित एक अन्य विधा नाटक को लेकर भी कुछ कृतियां मिलती हैं जिनमें विशेष उल्लेखनीय हस्तिमल्ल के दो नाटक हैं—

(१) विक्रान्त कौरव

(२) सुभद्रा

इसके कृतिकार के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है। केवल कुछ सूचना मिलती है, जो इस प्रकार है। एक बार एक मदोन्मत्त उद्दण्ड हाथी को वश में करके हस्तिमल्ल ने पाण्ड्य राजा को प्रभावित किया था तब राजा ने उन्हें यही नाम देकर इसी उपाधि से उन्हें विभूषित किया। दिगंबर जैन संप्रदाय के साहित्यकारों में इनका विशेष नाम गिनाया जाता है। ये एक मात्र ऐसे नाटककार हैं जिनकी रचित नाटक रचनाएँ उपलब्ध हैं। इनका हम पूर्व में ही उल्लेख कर चुके हैं। ये जन्म से ब्राह्मण थे, परन्तु श्री समन्तभद्र कृत देवागम स्तोत्र को सुनकर ये प्रभावित हुए और इन्होंने जैन दीक्षा अंगीकार की।

### (५) द्विसन्धान (राघव पाण्डवीय) महाकाव्य : कृति एवं कृतिकार

द्विसन्धानम् काव्य एक उत्कृष्ट कोटि की रचना है। इसमें रामायण, महाभारत दोनों कथाओं को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। निश्चय ही इस काव्य के कर्ता धनंजय की उच्चश्रेणी की काव्यप्रतिभा का परिचय इस विशिष्ट रचना से भलीभांति मिल जाता है। कवि ने इस कृति में प्रत्येक छंद की रचना इस प्रकार से की है कि उसके दो अर्थ व्यक्त हो जाते हैं। एक अर्थ रामकथा से संबंधित है तो दूसरा अर्थ श्री कृष्ण कथा से। इसी कारण इस रचना का अपर शीर्षक राघवपाण्डवीयकथा भी है।

समानान्तर रूप से दो कथानकों के निर्वह के कारण इसे द्विसन्धानम् कहा है। इसका कथानक १८ सर्गों में व्याप्त है।

### कृतिकार

कृतिकार—“द्विसन्धानम्” काव्य की टीका से कवि परिचय पर यत्किञ्चित् प्रकाश पड़ता है। इस रचना के अंतिम छंद की व्याख्या में कहा गया है कि कवि धनंजय के पिता का नाम वासुदेव और माता का नाम श्रीदेवी था। इसी स्रोत से ज्ञात होता है कि कवि के गुरु का नाम दशरथ था।<sup>६७</sup> रचना-प्रेरणा के विषय में भी एक किंवदन्ती प्रचलित है कि कवि धनंजय के पुत्र के साथ सर्पदंश की दुर्घटना हो गयी थी। अतः सर्पविष के प्रभाव को दूर करने के प्रयोजन से कवि ने स्तोत्र रूप में यह रचना की।

### रचनाकाल

द्विसन्धानम् काव्य के विषय में भी मत-मतान्तर हैं। डॉ० के० वी० पाठक की मान्यता है कि कवि धनंजय का काल ११२३-११४० ई० के मध्य था। डॉ० ए० बी० कीथ ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में पाठक के मत को स्वीकार किया है। अन्यान्य उपलब्ध उल्लेखों के साथ इस मान्यता का मेल नहीं बैठता है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने कवि धनंजय का उल्लेख “प्रमेयकमलमार्तण्ड” में किया है। आचार्य प्रभाचन्द्र का समय ११वीं शदी का पूर्वार्द्ध था।<sup>६८</sup>

वादिराज ने भी अपनी रचना पार्श्वनाथ चरित में द्विसन्धान के कर्ता धनंजय की चर्चा की है। पार्श्वनाथचरित काव्य का काल १०२४ ई० है। और वादिराज का १०२५ ई० है। अस्तु, धनंजय का काल इससे भी पूर्व का होना चाहिए। जल्हण ने राजशेखर के नामवाला एक श्लोक उद्धृत किया है।<sup>६९</sup>

यह राजशेखर “काव्यमीमांसा” के रचनाकार हैं और इनका समय १०वीं शताब्दी है। फलतः धनंजय का समय १०वीं शदी से पूर्व का होना चाहिए।

६७. यः श्रीदेव्या मातुनन्दनः पुत्रो वसुदेवतः प्रतिवसुदेवस्य पितुः प्रतिनिधिः १८/१४६

६८. प्रमेयकमलमार्तण्ड—मार्णिकचन्द्र ग्रंथमाला पृ० ४०२।

६९. द्विसन्धाने निपुणतां सतां चक्रे धनंजयाः। यथाजातं फलं तस्य सतां चक्रे धनंजयाः  
—संस्कृतसाहित्य का इतिहास डा० बलदेव उपाध्याय, शारदामंदिर काशी षष्ठ संस्करण, पृ० ३०४

स्वयं धन्वंजय ने अपनी रचना नाममाला (प्रमाणमकलंकस्य) में अकलंक का निर्देश किया है।<sup>70</sup> अतः कवि का काल अकलंक के पूर्व का नहीं हो सकता। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कवि धन्वंजय का काल अकलंक के पश्चात् और वादिराज के पूर्व का ही हो सकता है। अनुमानतः उनका समय ईसा की आठवीं शताब्दी के लगभग है।

### कथावस्तु

प्रथमसर्ग—ग्रंथारंभ में कवि मुनिसुव्रत और नेमिनाथ तीर्थकरों को नमस्कार करता है। राम कथा का आरंभ करते हुए अयोध्या और श्रीकृष्ण कथा का आरंभ करते हुए हस्तिनापुर का वर्णन किया गया है। प्रजाजन शांति और सुख से जीवन यापन करते हैं। प्रथम सर्ग में यही चित्रण है।

द्वितीय सर्ग में दोनों राज-परिवारों का वर्णन है। अयोध्या में राजा दशरथ और हस्तिनापुर में राजा पाण्डु का राज्य है। राजा दशरथ की पट्टरानी कौशल्या और राजा पाण्डु की पट्टरानी कुन्ती थी। दोनों अपने सदाचार और उच्चशील के लिए विख्यात थीं।

तृतीय सर्ग में कौशल्या के गर्भ धारण करने पर सर्वत्र छाये हुए प्रसन्न वातावरण का वर्णन किया गया है। माता कौशल्या राम को जन्म देती है। कैंकेयी के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामक पुत्र होते हैं। राजा जनक की पुत्री जानकी के साथ राम का विवाह हुआ। पाण्डुराजा की पट्टरानी कुन्ती युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को और माद्री नकुल एवं सहदेव को जन्म देती है। ये पांडव कहलाये। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हुए जो कौरव कहलाए।

चौथे सर्ग में वर्णन है कि एक दिन दशरथ ने दर्पण में अपने श्वेत केश देखे और निश्चय कर लिया कि राम को राज्य सौंपकर अब मुझे तपस्या आरंभ करनी चाहिए। कैंकेयी ने दशरथ से वर मांगा कि राम को १४ वर्ष का वनवास मिले और भरत को अयोध्या का राज्य। राम, सीता

७०. प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्। द्विसन्धानकवेः काव्यं, रत्नत्रयम-  
पश्चिमम्—नाममाला, भारतीयज्ञानपीठ काशी, १९४० ई० श्लोक २०१  
पृ० ६२

और लक्ष्मण के साथ वन को गये और दशरथ मुनि बने। दूसरी ओर युधिष्ठिर को राज्य सौंप कर पाण्डु ने तपस्या आरंभ करने का निश्चय किया। दुर्योधन ने छलपूर्वक जुए में युधिष्ठिर से राज्य जीत लिया। पाण्डवों को वनवास भोगना पड़ा।

पांचवे सर्ग में राम का आगमन दण्डकारण्य में होता है। लक्ष्मण चंद्रहास खड्ग प्राप्त करते हैं। शूर्पणखा राम पर मोहित होती है किंतु अपमानित और असफल होकर वह सीताहरण के लिए वातावरण बना देती है। राम लक्ष्मण राक्षसों का वध करते हैं। पाण्डव अज्ञात वास के निमित्त विराट राजा के यहां पहुंचते हैं। कीचक द्रौपदी को देखकर उस पर मोहित हो जाता है। भीम कीचक का वध कर देता है।

छठे सर्ग में राम लक्ष्मण का खर दूषण से युद्ध होता है। अपनी शक्ति और पराक्रम से वे खर दूषण की सेना को पराजित कर देते हैं। खर दूषण का वध हो जाता है। अर्जुन और भीम का युद्ध उन दस्युओं के साथ होता है जो गायों को चुराते हैं। वे उनको बंधन से मुक्त करके गायों की रक्षा करते हैं।

सातवें सर्ग में रावण शूर्पणखा को सान्त्वना देने के लिए पहुंचता है। दण्डक वन में सीता के सौंदर्य से वह प्रभावित हो जाता है और उसका अपहरण कर वह लंका की ओर चल देता है। दूसरी ओर द्यूतक्रीड़ा में पराजय के कारण राज्यहीन युधिष्ठिर को भीम कहता है कि आपको अपने अपमान का बदला लेना चाहिए। द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की सहायता से हमें विजय प्राप्त होगी। और, धर्मराज युधिष्ठिर द्वारिका के लिए प्रस्थान करते हैं।

आठवें सर्ग में वर्णन है कि रावण को इस बात की आशा थी कि अपहरण के बाद निराश सीता आत्मसमर्पण कर देगी, किंतु सीता अपने मार्ग पर दृढ़ रहती है। द्वारिका के राजभवन के गवाक्षों से युधिष्ठिर सागर दर्शन करते हैं। उनके लिए दुर्योधन की निरंकुशता और अन्याय असह्य हो गये, किंतु वे वचन बद्धता के कारण निरुपाय थे।

नौवें सर्ग में सीताहरण के कारण राम चिंतित और दुःखित बताये गए हैं। वे सीता की खोज करते हैं। विद्याधर सुग्रीव की पत्नी का अपहरण कर साहसगति ने अनीतिपूर्वक राज्य हथियाया और उसका शासन किया।

राम इस अनीति का विरोध करते हैं। किष्किधा में भयंकर युद्ध होता है और साहसगति मारा जाता है। नल, नील, जांबवन्त आदि राम का स्वागत करते हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण के साथ जरासंध वैरभाव रखता है। वह श्रीकृष्ण पर आक्रमण करता है किन्तु पराजित हो जाता है। द्वारिका में विजय के हर्ष में उत्सव मनाया जाता है। श्रीकृष्ण अर्जुन की वीरता से बहुत प्रभावित होते हैं और बहन सुभद्रा का उसके साथ विवाह करने के विषय पर सोचते हैं।

दसवें सर्ग में लक्ष्मण राजा सुग्रीव के पास जाते हैं और उससे कहते हैं कि तुम्हें सीता की खोज का प्रयत्न करना चाहिए, अन्यथा राम का क्रोध तुम्हें नष्ट कर देगा। दूसरी ओर श्रीकृष्ण के पास पुरुषोत्तम नामक दूत आता है जो कहता है कि आपको जरासंध के साथ मित्रता कर लेनी चाहिए।

ग्यारहवें सर्ग में सुग्रीव अपनी राजसभा में चर्चा कर निश्चय करता है कि रावण प्रबल पराक्रमी है अतः शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए मुझे राम के साथ मैत्री कर लेनी चाहिए। वे ऐसा सोचते हैं, परंतु विचलित सुग्रीव को जांबवान धीरज दिलाता है। हनुमान, जाम्बवान और सुग्रीव पुनः विचार विमर्श करते हैं। दूसरी ओर जरासंध के दूत के लौट जाने पर श्रीकृष्ण अपने अनुभवी सहयोगियों से विचार विमर्श करते हैं। भीम जरासंध के विनाश का विचार प्रकट करता है। बलराम मध्यस्थता की बात करते हैं।

बारहवें सर्ग में लक्ष्मण हनुमान के साथ कोटिशिला पर पहुंचते हैं और वे उस शिला को उठा लेते हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण भी अपने मित्रों सहित कोटिशिला पर पहुंचते हैं और वे भी शिला को उठा लेते हैं।

तेरहवें सर्ग में हनुमान सीता का समाचार लाने अकेले लंका जाते हैं। हनुमान रावण को कुमार्ग को त्यागने और राम की शरण ग्रहण करने की सलाह देते हैं, किन्तु वे उसमें सफल नहीं होते। दूसरी ओर श्रीकृष्ण का दूत श्रीशैल राजगृह जाता है और जरासंध से कहता है कि तुम श्रीकृष्ण की अधीनता स्वीकार कर लो या कन्दरा में जाकर ध्यान करो।

चौदहवें सर्ग में राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि द्वारा रावण से युद्ध की तैयारी का वर्णन है। एक ओर राम की सेना लंका की ओर बढ़ने

लगी है तो दूसरी ओर श्रीकृष्ण बलराम पाण्डवों के साथ राजगृह की ओर बढ़ते हैं।

पन्द्रहवें सर्ग में वर्णित है कि राम की सेना समुद्र तट तक पहुंच गयी और वानर योद्धाओं ने वनविहार तथा जलक्रीड़ाएँ कीं। दूसरी ओर यादव-वंशी राजागण गंगा के किनारे जाकर वन विहार करने लगे।

सोह्रहवें सर्ग में राम की सेना ने लंका पर आक्रमण कर दिया है इस बात को सुनकर रावण अपनी सेना को तैयार हो जाने का आदेश देता है। दोनों पक्षों की सेनाएँ रणभूमि में आमने सामने आ जाती हैं। राम के बाणों के समक्ष रावण के प्रख्यात पुत्र योद्धा मेघनाद तथा भाई कुंभकर्ण आदि टिक नहीं पाते हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण की सेना जरासंध पर आक्रमण करती है और अपने प्रचंड प्रहारों से जरासंध के पक्ष में आतंक मचा देती है। कबंध नाचने लगते हैं।

सतरहवें सर्ग में रावण की सेना की प्रबलता का चित्रण भी किया गया है। उसके सैनिक कवचधारी थे, अतः बाण उनके शरीर तक नहीं पहुंच पाते थे। राम ने अग्नि के समान तीक्ष्ण बाणों की वर्षा कर दी, अतः राम की विजय हुई। दूसरी ओर श्रीकृष्ण, बलराम, अर्जुन आदि ने जरासंध की सेना को घेर लिया। भयंकर बाण वर्षा होने लगी और श्रीकृष्ण द्वारा जरासंध का वध हो जाता है।

अठारहवें सर्ग में लंका का राज्य विभीषण को सौंपकर राम सीता सहित पुष्पक विमान में बैठकर लंका से अयोध्या में आ जाते हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण जरासंध के पक्ष को पूर्ण ध्वस्त करके पाण्डवों के साथ मित्रता को निब्राह्ते हुए राज्य का संचालन करते हैं।

इस प्रकार द्विसंधान काव्य में कवि धनंजय ने श्रीकृष्ण और राम की कथा के प्रमुख अंशों का वर्णन एक साथ किया है। इस दुर्गम कार्य में कवि को अभिनंदनीय सफलता भी मिली है। काव्य का आरंभ तीर्थंकरों की स्तुति से हुआ है। मंत्रणा, दूत प्रेषण, युद्धवर्णन, नगर वर्णन, समुद्र, उद्यान वन आदि के वर्णन आये हैं। कथानक का संयोजन इस प्रकार हुआ है कि उसमें हर्ष, शोक, भय, रोष आदि विभिन्न मनोभावों का सुंदर चित्रण हो पाया है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से भी प्रस्तुत रचना समृद्ध है।

**सहाकाव्यत्व**—प्रस्तुत काव्य की राम-कृष्ण कथा १८ सर्गों में विभक्त है। काव्याारंभ तीर्थंकरों की वंदना से हुआ है। इतिवृत्त पुराण प्रसिद्ध है।

मंत्रणा, दूतप्रेषण, युद्धवर्णन, नगरवर्णन, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चंद्र, सूर्य, पादप, उद्यान, जलक्रीडा, पुष्पावचय, सुरतोत्सव आदि का चित्रण सुंदर रीति से विवेचित है। कथानक में हर्ष, शोक, क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा आदि भावों का संयोजन हुआ है। शब्दक्रीडा के बावजूद रस का वैशिष्ट्य विद्यमान है। महत्कार्य और महदुद्देश्य का निर्वह भी हुआ है। विवाह, कुमारक्रीडा, यौवराज्यावस्था, पारिवारिक कलह, दासियों की वाचालता का भी सुंदर चित्रण हुआ है। यथा—

विसा रिभिः स्नानकषायभूषितैर्विभीषितैव प्रियगान्ममङ्गता ।

शुचौ समालिङ्गति यत्र साखे, हृदेतरन्ती कलहंससंकुले ॥<sup>71</sup>

ग्रीष्मऋतुओं में जहां पर सुंदर हंसों से पूर्ण सरयू नदी के घाटों पर तैरती हुई युवती स्नान के समय लगाए लेप आदि से रंगी हुई मछलियों से डरकर अपने पति के शरीर से चिपट जाती हैं।

द्वितीय अर्थ—हस्तिनापुर में सुंदर हंसों से परिव्याप्त और उनके कोलाहल से युक्त स्वच्छ तालाब में तैरती हुई अंगनाएं उनके शरीर से चिपट जाती हैं।

### प्रकृतिचित्रण

कविवर धनंजय ने प्रस्तुत महाकाव्य में प्रकृति के रम्यरूप को प्रस्तुत कर मानवीय भावनाओं को उद्धेलित किया है। यथा—

भूजायते प्रदेशेऽस्मिन्सालतालीसमाकुले ।

अभिरुह्यातियुता नित्यं शष्पच्छायादकान्विता ॥<sup>72</sup>

साल एवं ताल वृक्षों से व्याप्त, भोज पत्रों के समान विस्तृत और सनतल क्षेत्र में दूब की छाया और जल से पूर्ण शीतल भूमि अत्यंत रमणीय प्रतीत होती है।

### रसवर्णन

प्रस्तुत काव्य में वीररस अंगी रस है तथा अंग रूप में शृंगार, भयानक, रौद्र और बीभत्स रसों का निरूपण हुआ है।

७१. द्विसन्धानम्, शिवदत्त शर्मा, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १-१२, १८६५ ई०

७२.

”

”

”

७/४५

शृंगाररस—जीवन में शृंगार भावना का व्यापक अस्तित्व है। इसका स्थायी भाव रति है। कविवर धनंजय ने संयोग-शृंगार और विलास-लीला का सुंदर चित्रण करते हुए लिखा है—

क्षुपविपिनलतान्तरेजनामा—मितिसुरतव्यवहारवृत्तिरासीत् ।

ननु दयितपरस्परानिकार-व्यवहरणं भुवि जोवितव्यमाहुः ॥<sup>73</sup>

छोटे-छोटे पौधों की सघन पंक्ति और लताओं की ओट में क्रीडा करते हुए लोगों की सुरत क्रिया का आचरण हुआ था। सत्य है कि प्रेमी प्रेमिकाओं के परस्पर निश्छल व्यवहार से ही संसार में जीवन प्रवाह चलता है।

### अलंकार वर्णन

कवि ने अंतिम सर्ग को यमकालंकार से सुशोभित कर चमत्कार से सजित किया है। इस सर्ग के १४६ पद्य यमक के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं। श्लेष तो समस्त पद्यों में उपलब्ध है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक आदि अलंकारों की सुंदर संयोजना करके कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

### पाण्डित्य

प्रस्तुत महाकाव्य पाण्डित्य की दृष्टि से भी समृद्ध है। व्याकरण, काव्यशास्त्र, राजनीति और सामुद्रिक शास्त्र संबंधी चर्चाएं भी इस काव्य में उपलब्ध होती हैं। यथा—

पदप्रयोगे निपुणं विना मे सन्धौ विसर्गे च कृतावधानम् ।

सर्वेषु शास्त्रेषु जितश्रमं तच्चापेपि न व्याकरणं मुमोच ॥<sup>74</sup>

शब्द और धातुओं के प्रयोग में निपुण, षत्व-णत्वकरण, संधि तथा विसर्ग का प्रयोग करने में न चूकने वाले तथा समस्त शास्त्रों के परिश्रम-पूर्वक अध्येता वैय्याकरणी भी व्याकरण के अध्ययन के समान चापविद्या को अचूक बना देते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य काव्य सौष्ठव के समस्त गुणों में अपना एक वैशिष्ट्य रखता है।

७३. द्विसन्धानम् सं० शिवदत्त शर्मा, निर्णयसागर प्रेस बंबई, १८६५ ई० १५/१८

७४. द्विसन्धानम्, सं० शिवदत्त शर्मा, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, ३/३६



### (६) पुराणसार संग्रह<sup>75</sup> (दामनन्दि)

प्रस्तुत कृति के रचयिता दामनन्दि आचार्य हैं। प्रस्तुत कृति में आदिनाथ, चंद्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के जीवन चरित्र उपलब्ध होते हैं। २७ सर्गों वाली इस कृति में आदिनाथ के ४, चंद्रप्रभ के १, शान्तिनाथ के ६, नेमिनाथ के ५, पार्श्वनाथ के ५ और महावीर के ५ सर्ग संबंधित हैं। ग्रन्थ के नाम को लेकर भिन्न-भिन्न सूचना ग्रन्थ की अंतिम पुष्पिका-वाक्यों में उपलब्ध होती है; जिसके अनुसार १० सर्गों में पुराणसारसंग्रह, बारह में पुराणसंग्रह, दो में महापुराण-पुराणसंग्रह, एक में महापुराणसंग्रह, एक में केवल महापुराण और तीन में केवल अर्था-ख्यान संग्रह ही सूचित किए गए हैं।

इसका मैंने अधिक विवेचन नहीं किया क्योंकि मेरे अध्ययन से इसका उतना घनिष्ठ संबंध नहीं है।

### (७) हरिवंशपुराण—आचार्य जिनसेन

हरिवंश पुराण के कर्ता जिनसेन दिगंबर आचार्य थे। समग्र जैन वाङ्मय में इस कृति का अपनी विशेषताओं के कारण बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इस बृहद्ग्रंथ में कुल ६६ सर्ग हैं, और कुल श्लोक १२ हजार हैं। ग्रंथ के शीर्षक से ही यह स्पष्ट है कि हरिवंश पुराण का मुख्य विषय भगवान् अरिष्टनेमि के वंश का परिचय है। हरिवंश ही भगवान् का वंश है और इसमें यादवकुल का वर्णन १६ वें सर्ग से ६३ वें सर्ग तक है। ३२ वें सर्ग में श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलदेव का वर्णन है। ३५ वें सर्ग से श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन किया गया है। यहाँ से अंतिम सर्ग तक श्रीकृष्ण के जीवन के विभिन्न प्रसंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। कालियमर्दन, कंसवध, उग्रसेन की मुक्ति, सत्यभामा से विवाह, जरासंध के पुत्र का वध, प्रद्युम्न का जन्म, जाम्बवती से विवाह, दक्षिणभारत की विजय, श्रीकृष्ण का दक्षिण गमन, कृष्ण मरण, बलदेव विलाप, बलदेव की जिन दीक्षा आदि कृष्ण जीवन के प्रसंगों की अवधारणा “हरिवंशपुराण” में मिलती है जो जैन श्रीकृष्ण कथा की रूपरेखा प्रस्तुत कर देती है।

आचार्य जिनसेन पुन्नाट प्रदेश (कर्नाटक का प्राचीन नाम) के मुनि-समुदाय के आचार्य थे। इनके गुरु का नाम कीर्तिषेण था। इनके माता-

७५. हरिवंशपुराण—आचार्य जिनसेन, प्रस्तावना, पृ० ३, संपादक—पन्नालाल जैन  
प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

पिता के जन्म स्थान और जीवन वृत्तान्त के उल्लेख उपलब्ध नहीं होते हैं।

ग्रंथ का रचनाकाल नौवीं शताब्दी वि० का मध्य है। शक सं० ७०५ (ई० सन् ७८३) में यह पूर्ण हुआ।<sup>76</sup> ग्रंथ के उल्लेखानुसार वर्धमानपुर में नन्दराजा द्वारा निर्मापित प्रभु पार्श्वनाथ के मंदिर में इसकी रचना प्रारंभ की गई, पर यहाँ पर यह रचना पूर्ण न हो सकी। दोस्तटिका नगरी की प्रजा के द्वारा निर्मित अर्चना और पूजा स्तुति से वहाँ के शांतिनाथ मंदिर में इसकी रचना पूर्ण हुई।<sup>77</sup>

### काव्यसौष्ठव

प्रस्तुत पुराण में इतिहास, राजनीति, धर्मनीति आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। लोक संस्थान के रूप में सृष्टिवर्णन भी ४ सर्गों में उपलब्ध है। तिरसठ शलाका पुरुषों का व राजागण, विद्याधर आदि के चरित्रों का भी वर्णन कवि ने सुंदर रूप से किया है।

इस ग्रंथ के पूर्व भद्रबाहु कृत “वसुदेव चरित” जो उपलब्ध नहीं है और संघदास गणि कृत वसुदेव हिण्डी में वसुदेव की कौतुकपूर्ण कथा वर्णित है। यह न केवल एक कथा ग्रंथ मात्र है अपितु महाकाव्य के गुणों से युक्त उच्चकोटि का काव्य भी है। इसमें प्रायः सभी रसों का वर्णन किया गया है। जरासंध और श्रीकृष्ण के बीच रोमांचकारी युद्धवर्णन में वीररस का सुंदर समावेश कवि द्वारा किया गया है। नेमिनाथ का वैराग्य और बलराम का विलाप जहाँ करुण रस को उभारता है वहीं द्वारिका निर्माण और यदुवंशियों का प्रभाव अद्भुत रस की द्योतक घटनाएँ प्रस्तुत करता है।

ग्रंथ की भाषा भावपूर्ण प्रौढ़ और उदात्त है। यत्र-तत्र अलंकारों की छटा भी बिखरी पड़ी है साथ ही विविध छंदों का सुंदर प्रयोग भी कवि ने किया है और अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। वसुदेव की संगीत कला को देखने के लिए १६वें सर्ग के १२० श्लोक पठनीय हैं। इनका संबंध भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से जोड़ा जा सकता है। जहाँ लोकविभाग तथा शलाकापुरुषों का वर्णन तिलोपपण्णत्ति से मेल खाता है वहाँ द्वादशांग का वर्णन राजवार्तिक से साम्य रखता है।

७६. सर्ग ६६ श्लोक ४२।

७७. सर्ग ६६ श्लोक ४३

### भारत की राजनैतिक परिस्थिति दिग्दर्शन

राजनीतिक स्थिति का दिग्दर्शन करते हुए जिनसेन ने लिखा है कि उस समय उत्तर दिशा में इन्द्रायुध, दक्षिण दिशा में कृष्ण का पुत्र श्री वल्लभ और पूर्व में अवन्तिनरेश वत्सराज तथा पश्चिम में सौरों के अधि-मण्डल सौषराट्ट में वीर जयवराह राज्य करते थे।<sup>78</sup> इसके अलावा भगवान महावीर से लेकर गुप्तवंश एवं कल्कि के समय तक मध्यदेश के शासन कर्ता प्रमुख राजवंशों की परंपराओं के उल्लेख, अवन्ती के गद्दीपर आसीन होनेवाले राजवंश और रासभवंश के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य का भी क्रम दिया है।<sup>79</sup> भगवान महावीर से लेकर ६८३ वर्ष की सर्वमान्य गुरुपरम्परा और उसके आगे अपने समय तक की अन्यत्र अनुपलब्ध अवि-च्छिन्न गुरु परंपरा भी दी गयी है।<sup>80</sup> अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियों तथा कृतियों का परिचय भी प्रस्तुत पुराण में उपलब्ध होता है। ग्रंथकर्ता जिन-सेन यद्यपि दिगंबर संप्रदाय से संबद्ध थे, तथापि हरिवंश के अंतिम सर्ग में उन्होंने प्रभु महावीर के विवाह प्रसंग को उल्लेखित किया है। यह बात दिगंबर संप्रदाय को मान्य नहीं है।<sup>81</sup>

जिनसेन ने अपने से पूर्ववर्ती जिन विद्वानों का उल्लेख किया है वे हैं—समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दि, वज्रसूरि, महासेन, सुलोचना कथा के कर्ता, रविषेण पद्मपुराण के कर्ता, जटासिंहनन्दि वरांगचरित के कर्ता, शान्त किसी काव्यग्रंथ के कर्ता, विशेषवादि गद्यपद्यमय विशिष्ट काव्य के रचयिता कुमारसेन, वीरसेन, कवियों के चक्रवर्ती जिनसेन—पार्श्वभ्युदय के कर्ता तथा एक अन्य कवि वर्धमान पुराण के कर्ता हैं।<sup>82</sup>

इससे जिनसेन के अध्यवसाय का पता चलता है।

#### (७) नेमिदूत

यह एक लघुकाव्य है। नेमिदूत के रचयिता विक्रम कवि हैं। इसके

७८. हरिवंशपुराण सर्ग ६६-५२-५३

७९. हरिवंशपुराण सर्ग ६०, ४८७-४९२

८०. हरिवंशपुराण सर्ग ६६, २१-३३

८१. " " ६६, ८ यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रया वीरविवाह  
मंगलम्।

८२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास पृ० ४८, भाग-६, डॉ० गुलाबचंद चौधरी

कुल १२६ पद्य हैं। इसमें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्रवर्णन है। पण्डित नाथूराम प्रेमी ने इस कवि को दिगंबर जैन संप्रदाय का सिद्ध किया है। खम्भात के चितामणि पार्श्वनाथ मंदिर में एक शिलालेख है जो वि० सं० १३५२ का है। इस लेख में २८ से ३१वें पद्यों में मालवा, सपादलक्ष और चित्तौड़ (चित्रकूट) से संभात में आए हुए सांगण जयता और प्रल्हादन आदि धनी श्रावकों का उल्लेख है। जिन्होंने उक्त मंदिर की निरंतर पूजा होते रहने के लिए व्यापार पर कुछ लाग बांध दी थी। इनमें सांगण हुंकार-वंश (हूम्बड) के और जयता सिंहपुर वंश (नरसिंहपुरा) के थे। संभव है कि इनमें से पहले श्रावक सांगण के पुत्र ही विक्रम रहे हों। सांगण आदि दिगंबर संप्रदाय के मालूम होते हैं। क्योंकि, इस लेख के चौथे पद्य में सहस्र-कीर्ति और सत्ताइसवें पद्य में यशःकीर्ति गुरु का उल्लेख है और ये दोनों दिगंबर साधु हैं। इसके सिवाय हूम्बड और नरसिंहपुरा जातियों के श्रावक इस समय भी दिगंबर आमनाय के अनुयायी हैं।<sup>83</sup>

दूसरा तर्क देने वाले श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई हैं। इन्होंने अपने “जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास” में सांगण सुत विक्रम को गुर्जर महाकवि ऋषभदास का भाई माना है और इनका समय १७वीं शती निर्धारित किया है। श्री प्रेमीजी ने इस मत की आलोचना की है।<sup>84</sup> तीसरा मत मुनि विद्याविजय जी का है। इनकी मान्यता है कि वि० की १२वीं शदी के कर्णावती के मन्त्री सांगण के पुत्र विक्रम थे।<sup>85</sup>

इन तीनों मान्यताओं की समीक्षा मुनि विनयसागर जी ने इस प्रकार की है—खरतरगच्छालंकार युगप्रधानाचार्य गुर्वावलि (१४वीं शदी के उत्तरार्ध की रचना) के अनुसार श्रीजिनपतिसूरिजी के शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरि ने वि० सं० १२८५ से १३३० तक लगभग १२, १५ शिष्य कीर्ति नन्दी में दीक्षित किए थे, जिनमें यशःकीर्ति का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त एक और बात यह भी है कि इसी गुर्वावलिमें सं० १२२६ में श्री जिनेश्वरसूरि जी की अध्यक्षता में एक यात्रासंघ निकला था जो क्रमशः यात्रा करते-करते खम्भात में पहुंचा। वहाँ मंदिर में फूलमाला की बोलियाँ लगी थीं। उनमें सांगणसुत ने द्रमों में चमरधारक पद धारण किया था।

८३. जैन साहित्य और इतिहास, नाथूराम प्रेमी पृ० ३६१

८४. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, पृ० २८६, ४८५, ७६०, ७६२, ८८२, ८६६, ६०४, १००३।

८५. नेमिदूत, कोटा प्रकाशन वि० सं० २००४, प्रस्तावना, पृ० २

जिस हूँबड जाति को देखकर कवि को दिगंबर बताया गया है, वह हूँबड जाति श्वेताम्बरों में भी होती है और आज मालव देशस्थ प्रतापगढ़ में लगभग ७५ घर हूँबड जाति के हैं। ये सब के सब श्वेतांबर हैं। पूर्व में भी १२ वीं शदी के युगप्रधान दादा पदधारक श्री जिनदत्तसूरि जी भी हूँबड जाति के ही थे।<sup>८६</sup>

नेमिदूत काव्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कृति सांप्रदायिक नहीं है। यहाँ श्वेतांबर या दिगंबर आम्नाय की कोई बात नहीं मिलती। जब तक कवि के गण-गच्छ का पता न लगे तब तक कवि के आम्नाय का यथार्थ निर्णय नहीं किया जा सकता। केवल श्वेतांबर-वृत्ति के आधार पर कवि को श्वेतांबर मानना ठीक नहीं। प्रेमीजी के तर्कों का अभी खण्डन नहीं हो पाया है।<sup>८७</sup>

नेमिदूत काव्य की एक हस्तलिखित प्रति वि० सं० १४७२ की लिखी हुई है और दूसरी वि० सं० १५१६ की है।<sup>८८</sup> अतः वि० सं० १४७२ के पूर्व कवि को मानने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। प्रेमीजी ने १३ वीं शती और विनयसागर जी ने १४वीं शदी माना है। कवि विक्रम खरतरगच्छ के जिनेश्वरसूरि के भक्त श्रावक थे।

### कथावस्तु

नेमिकुमार विरक्त होकर जब तपश्चरण करने के लिए गए तब विरह विधुरा राजीमती ने एक वृद्ध ब्राह्मण को नेमि की तपोभूमि में उनके कुशलक्षेप के समाचार जानने के लिए भेजा। इसके बाद अपने पिता की आज्ञा से अपनी एक सखी को साथ लेकर वह स्वयं अनुनय विनय करती हुई अपने विरह से जले हुए हृदय को भावनाओं का प्रलाप व्यक्त करने लगी। पति के त्याग तपश्चरण का प्रभाव भी उस पर पड़ा और वह भी तपस्विनी बन तपाचरण करने लगी।

कवि ने नाना प्रकार से द्वारिका नगरी का सौंदर्य और वैभव चित्रित किया है। राजीमती अनेकानेक उपायों द्वारा नेमिकुमार को संसाराभिमुखी बनाने का प्रयास करती रही पर उसे सफलता न मिली। रेवतक

८६. वही, प्रस्तावना पृ० ३

८७. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री  
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन: वाराणसी, सन् १९७१, पृ० ४७६

८८. नेमिदूत : म० विनयसागर, प्रस्तावना पृ० ४

पर्वत से द्वारिका के मार्ग तक पड़ने वाले अनेक प्राकृतिक दृश्यों का सजीव वर्णन कवि ने किया है। स्वर्णरेखा नदी व उसके तट, वामनपुरी, भद्रानदी तथा पौर नामक नगर का भी उल्लेख कवि ने किया है। इसके बाद गंध-मादन वेणुल पर्वत से द्वारका पहुंचने का अनुरोध किया गया। नेमिकुमार राजीमती का अनुरोध स्वीकार नहीं करते। तब सखी राजीमती की विरहावस्था का करुण चित्र प्रस्तुत करके नेमिकुमार को लौटाने का प्रयास करती है। अंत में नेमिकुमार दयार्द्रभाव से राजीमती को धर्मोपदेश देते हैं। राजीमती भी साध्वी बन जाती है। वृद्ध ब्राह्मण के दूतरूप में प्रेषित करने से संभवतः इस कृति का नाम नेमिदूत रखा गया हो। डॉ० फतेहसिंह के मतानुसार नेमी ने राजीमती को पत्नी रूप में भले ही ग्रहण न किया हो पर उसे आनंदपथ की संगिनी के रूप में ग्रहण करने का निश्चय अवश्य किया था।<sup>89</sup> सचमुच यह दूतकर्म बड़ा विचित्र रहा। संभवतः इसीलिए प्रेमी जी ने इसका नाम नेमिचरित रखा होगा।

### समीक्षा

कवि ने सखी के द्वारा राजीमती के विरह वेदना की मानसिक अवस्था का चित्रण, नायिका के शील और लज्जा का सुंदर ढंग से रक्षण करते हुए करवाया है। पतिपरायणा साध्वी राजीमती ने अपने वक्तव्य द्वारा कभी भी अपने आराध्य के समीप मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। काव्य में विप्रलंभ शृंगार और शांतरस का अद्भुत संगम हुआ है। राजीमती के विरह से काव्य आरंभ होता है और शांतरस की मोक्ष सौख्य की प्राप्ति में काव्य का अंत होता है। इसलिए काव्य विरह-सुखांत है। कुमारसंभव के नायक की तरह नेमिनाथ योगासक्त होकर पर्वत शिखर पर बैठे हैं, और नायिका उनकी अभिलाषा से वियोगव्यथित होकर, सम्मुख खड़ी होकर प्रेम की याचना करती है। वह कर्तव्य का नायक को ध्यान दिलाती है। सौंदर्य, वैभव व आकर्षण का वर्णन करती है। अंत में पार्वती के समान निराश होकर सखी के मुख से अपनी पवित्र प्रेम विरह वेदना को सजीवता से कहलाती है।

राजीमती को स्वप्न में भी प्रियमिलन नहीं हुआ है। कवि ने राजीमती की विरह वेदना और करुणदशा का चित्रण ८० से १२१ पद्यों में किया

८९. साहित्य और सौंदर्य, संस्कृतिसदन कोटा, ले० डॉ० फतेहसिंह, पृ० ६६

है। भाव व भाषा की दृष्टि से ये ३२ पद्य सरस चित्रण करते हुए लिखे हैं—यथा—

अन्तर्भिन्ना मनसिजशरैर्मौलिताक्षं मुहूर्तं  
लब्ध्वा संज्ञामियमथ दृशा वीक्षमाणातिदीना ।  
शय्योत्संगे नवकिशलयत्नस्तरे शर्म लेभे  
साम्रन्हीव स्थलकमलिनी न प्रबुद्धा न सुप्ता ॥<sup>९०</sup>

इस तरह से विप्रलम्भ शृंगार रस की अभिव्यक्ति सरस बन पड़ी है। शांतरस के पर्यवसान होने पर भी शृंगारपूर्ण अनेक भावचित्र इस कृति में मिल जाते हैं। द्वारिका की रमणियां मेघदूत की अलका की रमणियों की तरह मुग्ध दिखाई देती हैं।

कवि की रचना में कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती। भाषा प्रसादगुण युक्त है और काव्य में सर्वत्र प्रवाह मिलता है। जिस प्रकार मेघदूत का यश प्रेयसी के स्पर्श से आई हुई वस्तु में प्रेयसी के स्पर्श सुख का लाभ करता है उसी तरह राजीमती भी नेमिनाथ के स्पर्श से आई हुई वायु में स्पर्श सुख का आनंद लाभ करती है (पद्य ११५ में)। शांतरस प्रधान होते हुए भी विरहभावना का सांगोपांग चित्रण सजीवता व सरसता के साथ वर्णित है। श्री देवेन्द्रमुनि जी शास्त्री के कथनानुसार वैदिक साहित्य में जैसा स्थान राधा और श्रीकृष्ण का है वैसा ही स्थान जैन साहित्य में राजीमति और अरिष्टनेमि का है। राजीमती देह की नहीं, देही की उपासना करना चाहती है। इसीलिए अरिष्टनेमि की साधना का मार्ग ग्रहण कर वह अरिष्टनेमि से पूर्व ही मुक्त हो जाती है। उसका प्रेम वासना का प्रेम नहीं है, यह लोकोक्ति प्रसिद्ध ही है कि “जो न होते नेम राजीमति तो क्या करते जैन के यति”।<sup>९१</sup>

विरहिणी राजीमति गिरनार पर्वत पर रहती थी। विरक्त नेमिनाथ को संसाराभिमुख बनाने के लिए सखी के साथ अपनी विरह-व्यथा को व्यक्त करते हुए उसने कहलवाया है, यह व्यथा द्रष्टव्य है—

९९. नेमिदूत पृ० ६६

९१. भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन : ले० देवेन्द्रमुनि  
शास्त्री, पृ० ६४

विरहानलतप्ता सीदति सुप्ता  
 रचितनलिनदलतल्पतले मरकतविमले  
 न सखीमभिनन्दति गुरुमभिवन्दति  
 निन्दति हिमकरनिकरंपरितापकरम्  
 करकलितकपोलं गलितनिचोलं  
 नयति सततरुदितेन निशामनिमेषदृशा  
 मनुते हृदि भारं मुक्ताहारं  
 दिवसनिशाकरदीनमुखी जीवितविमुखी ॥<sup>92</sup>

इस प्रकार इस काव्य में विरहिणी राजीमती की विरह वेदनाओं का गंभीर चित्रण हुआ है।

(८) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित—आचार्य हेमचन्द्र

श्वेतांबरजैन कृष्ण साहित्य परंपरा की यह एक अति महत्पूर्ण रचना है। इसके कर्ता आचार्य हेमचन्द्र “कलिकालसर्वज्ञ” के विरुद्ध से विभूषित थे। वस्तुतः यह समर्थ कवि उच्चकोटि की काव्यात्मक प्रतिभा से सम्पन्न कुशल काव्य-शिल्पी थे। इस महाचरित में जैनों के कथानक, इतिहास, सिद्धांत व तत्त्वज्ञान का कवि ने समावेश किया है। यह ग्रंथ १० पर्वों में विभक्त है तथा प्रत्येक पर्व में अनेकों सर्ग हैं। ग्रंथ का श्लोक प्रमाण ३६००० है।<sup>93</sup> तिरसठ शलाका पुरुषों का चरित १० पर्वों में इस प्रकार कवि ने संयोजित किया है—

- ० प्रथम पर्व में ऋषभदेव व भरत चक्रवर्ती।
- ० द्वितीय पर्व में अजितनाथ व सगरचक्री।
- ० तृतीय पर्व में संभवनाथ से लेकर शीतलनाथ तक के ८ तीर्थंकरों के जीवन वृत्त।
- ० चतुर्थ पर्व में श्रेयांसनाथ से लेकर धर्मनाथ तक पांच तीर्थंकर, पांच वासुदेव, पांच प्रति-वासुदेव, पांच बलदेव तथा दो चक्रवर्ती-मघवा व सनत्कुमार इस प्रकार २२ महापुरुषों का वर्णन किया गया है।

९२. नेतिदूत ६-८८, जैन साहित्य नो इतिहास खंड २, ले० प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया, पृ० ४४६,

९३. जैन आत्मानंद सभा भावनगर



- ० पंचम पर्व में शांतिनाथ का चरित्र जो एक ही भव में तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती दोनों होने से दो चरित्र गिने गए हैं।
- ० षष्ठ पर्व में कुन्धुनाथ से मुनिसुव्रत तक के ४ तीर्थंकर, चार चक्रवर्ती, दो वासुदेव, दो बलदेव तथा दो प्रतिवासुदेव इस प्रकार १४ महापुरुषों का चरित वर्णित हुआ है। इनमें कुन्धुनाथ और अरहनाथ उसी भव में चक्रवर्ती हुए। अतः इनकी दो चक्रवर्तियों के रूप में गिनती की गयी है।
- ० सप्तम पर्व में नमिनाथ, १० वें व ११ वें चक्रवर्ती हरिषेण और जय तथा आठवें बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव—राम, लक्ष्मण, रावण के चरित मिलाकर ६ महापुरुषों के वर्णन हैं।
- ० अष्टम पर्व में नेमिनाथ तीर्थंकर तथा नवम वासुदेव, कृष्ण, बलदेव बलभद्र, तथा प्रतिवासुदेव जरासंध को मिलाकर ४ महापुरुषों के चरित वर्णित हैं।
- ० नवम पर्व में पार्श्वनाथ तीर्थंकर, और ब्रह्मदत्त नामक १२ वें चक्रवर्ती के चरित वर्णित हैं।
- ० दशम पर्व में भगवान महावीर का जीवन वृत्त जो कि १३ सर्गों में है, ग्रंथकार को प्रशस्ति भा है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रशस्ति अत्यंत उपयोगी है।

प्रस्तुत कृति के रचनाकार हेमचंद्र के जीवन वृत्त पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। प्रशस्ति के आधार पर ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ की रचना हेमचंद्र ने चौलुक्य नृप कुमारपाल के अनुरोध से की थी।<sup>१४</sup> डॉ० बूल्हर ने इसकी रचना का समय वि० सं० १२१६ से १२२८ माना है। वि० सं० १२२६ में हेमचंद्र का स्वर्गवास हुआ था।<sup>१५</sup>

जैन परंपरा में मान्य ६३ शलाका पुरुषों (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ वासुदेव, ६ बलदेव, ६ प्रतिवासुदेव) के जीवन चरित इस ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय रहे हैं।

प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ के पृ० २१६ में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा व्यक्त यह धारणा आचार्य हेमचंद्र के मूल्यांकन में सफल सहायक

६४. पर्व १० प्रशस्ति, पद्य १६-२०

६५. हेमचंद्राचार्य जीवन चरित्र : ले, कस्तूरमल बांठिया;

सिद्ध होती है कि वे मध्यकालीन साहित्य और संस्कृति के चमकते हुए हीरे थे।

### (६) लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित—मेघविजय

उपाध्याय मेघविजय द्वारा रचित प्रस्तुत कृति में हेमचंद्राचार्य विरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित का ही आधार रहा है। इसमें विशेष रूप से शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरित्रों के संकलन में अपनी प्रतिभा का विशेष परिचय दिया है। इसमें तीर्थंकर चरित्र, रामायण, महाभारत, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेवों का वर्णन भी यथाप्रसंग कवि ने किया है। इसका श्लोक प्रमाण ५ हजार है। प्रस्तुत कृति के लेखक सम्राट अकबर के कल्याणमित्र तपागच्छीय हीरविजयसूरि जी की परंपरा में हुए हैं। इनके रचित ग्रंथों में जो प्रशस्तियां दी गई हैं उनमें कुछ का रचना-काल दिया गया है, जो वि० सं० १७०६ से १७६० तक का है। कृतिकार ने अनेक काव्यग्रंथ रचे हैं। इनका ही मैं विवेचन कर आगे बढ़ रहा हूं। त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित तथा महापुराण पर आधारित कुछ अन्य रचनाओं की नामावली इस प्रकार है—

१. लघुमहापुराण या लघुत्रिषष्टि लक्षण महापुराण—इसके रचना-कार हैं—चंद्रमुनि
२. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र—रचयिता विमलसूरि
३. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित रचयिता—वज्रसेन
४. त्रिषष्टिशलाकापंचशिला—रचयिता कल्याणविजय के शिष्य
५. एक अज्ञात लेखक ने ६३ गाथाओं में त्रिषष्टिशलाकापुरुष विचार नामक ग्रंथ की रचना की है।<sup>१६</sup>

### (१०) त्रिषष्टिशलाकापुरुष विषयक काव्य

महापुराण—उत्तरपुराण (जिनसेन व गुणभद्र)

महापुराण जिसका अपर नाम उत्तरपुराण भी है। यह जैन संस्कृत कृष्ण साहित्य परंपरा की एक महत्वपूर्ण एवं विशाल कृति है। महापुराण दो भागों में रचित है, प्रथम भाग का नाम आदिपुराण तथा द्वितीय भाग का नाम उत्तरपुराण है। ७६ पर्वों में यह संपूर्ण ग्रंथ निर्मित हुआ है।

आरंभ के ४२ पर्व (सर्ग) तथा ४३ वें पर्व के प्रारंभिक ३ पद्य आचार्य जिनसेन रचित हैं। इस प्रकार आचार्य जिनसेन ने पूर्वार्द्ध की रचना की थी, शेषांश उत्तरपुराण की रचना गुणभद्राचार्य के द्वारा पूर्ण की गयी है। जो इन्हीं आचार्य जिनसेन के एक विद्वान पण्डित सिद्धकवि व सुयोग्य शिष्य रत्न थे। उत्तरपुराण के ७१, ७२ व ७३ वें पर्व में श्रीकृष्ण कथा का विवेचन है।

महापुराण के उत्तरार्द्ध उत्तरपुराण की रचना की समाप्ति विक्रम संवत् ६१० सन् ८५३ के लगभग बतायी जाती है।<sup>९७</sup>

हरिवंशपुराण और उत्तरपुराण परवर्ती ग्रंथकारों के लिए आधार-भूत ग्रंथ रहे हैं। इन्हीं आदर्शों पर विशेषतः दिगंबर जैन विद्वानों ने श्रीकृष्ण जन्म संबंधी अनेक रचनाएं प्रस्तुत की हैं। इसके प्रथम अंश आदि-पुराण में प्रथम तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव का चरित्र वर्णन है, तो शेष २३ तीर्थ-करों तथा अन्य शलाका पुरुषों का जीवन चरित्र उत्तरपुराण में विवेचित हुआ है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि कृष्ण वर्णन हरिवंश पुराण की अपेक्षा संक्षिप्त हुआ है। इसमें परंपरागत कृष्णचरित्र के प्रमुख प्रसंगों का ही विवेचन है। अन्य घटनाओं का उल्लेख मात्र आ पाया है। महापुराण के कर्ता जिनसेन से हरिवंशपुराण के रचनाकार जिनसेन भिन्न हैं। हरिवंश-पुराण के कर्ता पुननाटक संघीय आचार्य थे। जब कि महापुराणकार पंच-स्तूपान्वय संप्रदाय के थे। इस भिन्नत्व की चर्चा डॉ० हीरालाल जैन व डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने की है।<sup>९८</sup> इसी तथ्य का अनुमोदन नाथूराम प्रेमी ने भी किया है।<sup>९९</sup> जिनसेन ने इस कृति को पुराण और महाकाव्य दोनों नाम से कहा है। वास्तव में यह महाकाव्य के बाह्य लक्षणों से युक्त एक पौराणिक महाकाव्य है। स्वयं आचार्य ने पुराण व महाकाव्य की परिभाषा करते हुए लिखा है : जिसमें क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष और उनकी चेष्टाओं का वर्णन हो वह पुराण है और इस प्रकार के पुराणों में लोक, देश, पुर, राज्य, तीर्थ, दान-तप, गति तथा फल इन ८ बलों का वर्णन होना चाहिए।<sup>१००</sup> पुरातन पुराण अर्थात् प्राचीन होने से पुराण कहा जाता है।

९७. जैन साहित्य और इतिहास, ले० नाथूराम प्रेमी, पृ० १४०

९८. महापुराण (उत्तरपुराण) प्रस्तावना सं० पं० पुननालाल जैन,

९९. जैन साहित्य और इतिहास ले० नाथूराम प्रेमी

१००. पर्व १-२१-२५

जिसमें एक महापुरुष का वर्णन हो वह पुराण तथा जिनमें तिरसठ शलाका पुरुषों का वर्णन रहता है वह महापुराण है और जो पुराण का अर्थ है वही धर्म है। 'सत्त्वधर्मः पुराणार्थः' अर्थात् पुराण में धर्म कथा का प्ररूपण होना चाहिए। कृति के ७१वें पर्व में बलराम, श्री कृष्ण, उनकी ८ रानियों का एवं प्रद्युम्न आदि का वर्णन कवि ने किया है।

### (११) पाण्डव-पुराण (भट्टारक वादिचन्द्र)

प्रस्तुत पौराणिक काव्य में १८ सर्ग हैं।<sup>101</sup> इसकी रचना सं० १६५४ में नोधक नगर में हुई थी। इनके गुरु प्रभाचंद्र थे। इनके द्वारा रचित अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं। यथा—पार्श्वपुराण, ज्ञान सूर्योदय नाटक, पवनदूत, श्रीपाल आख्यान (गुजराती हिंदी), यशोधर चरित्र, सुलोचना चरित्र, होलिका चरित्र और अबिका कथा। इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के तेरहपंथी बड़े मंदिर में उपलब्ध है।

### (१२) महापुराण (मल्लिषेणसूरि)

मल्लिषेणसूरि विभिन्न विषयों के मर्मज्ञ पंडित तथा उच्चकोटि के कवि थे। इनकी रचना "महापुराण" में कुल २००० श्लोक हैं, इनमें ६३ शलाका पुरुषों की कथा का संक्षिप्त में वर्णन किया गया है। इसका अपरनाम त्रिषष्टि-महापुराण या त्रिषष्टिशलाका पुराण भी है। रचना सुंदर और प्रसादगुण युक्त है।

#### रचयिता और रचनाकाल

महापुराण की रचना का समय शक ६६९ वि० सं० ११०४ ज्येष्ठ सुदि पंचमी दिया गया है, इसलिए मल्लिषेण विक्रम की ११वीं के अंत में और १२ वीं सदी के प्रारंभ के प्रसिद्ध विद्वान हैं। मल्लिषेण की गुरु-परंपरा इस प्रकार है। गंगनरेश रायमल्ल और सेनापति चामुण्डराय के गुरु अजितसेन के शिष्य कनकसेन, कनकसेन के शिष्य जिनसेन और जिनसेन के शिष्य मल्लिषेण हैं। ये एक बड़े मठपति, कवि और बड़े मंत्रवादी थे। धारवाड जिले के मुलगुंद में इनका मठ था जहाँ पर यह ग्रंथ निर्मित हुआ था। इनकी अन्य कृतियाँ नागकुमारकाव्य, भैरव पद्मावतीकल्प, सरस्वती-मंत्रकल्प, ज्वालिनीकल्प और कामचाण्डालीकल्प हैं। ये सारी कृतियाँ मंत्रवादी रचनाएं हैं।<sup>102</sup>

१०२. जि० २० को० पृ० २४३, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८८

१०३. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, खण्ड ६, पृ० ६५, ले० गुलाचंद्र चौधरी

## (१३) पाण्डव-चरित (देवप्रभसूरि)

१८ सर्गों में बद्ध इस कृति का कथानक लोकप्रसिद्ध पाण्डवों के चरित्र पर आधारित है जो जैन परंपरा के अनुसार वर्णित है। साथ ही इसमें नेमिनाथ का चरित भी यथा-प्रसंग कवि ने अंकित किया है। वीररस प्रधान इस काव्य में शृंगार, अद्भुत और रौद्र रसों के साथ शांतरस में काव्य का पर्यवसान हुआ है। महाकाव्यत्व की दृष्टि से नगरी, पर्वत, वन, उपवन, वसन्त, ग्रीष्म आदि का वर्णन भी इसमें सुंदर ढंग से किया गया है। वर्ण्यविषयों के अनुसार ही सर्गों के नामकरण हुए हैं।

प्रस्तुत कृति के कथानक का आधार षष्ठांगोपनिषद् तथा हेमचंद्राचार्य चित त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित आदि ग्रंथ हैं जैसा कि ग्रंथकृता ने स्वयं कहा है—

षष्ठांगोपनिषत्त्रिषष्टिचरितानालोक्यकौतूहला-  
देतत् कन्दलयांचकार चरितं पाण्डोः सुतानामहम् ।

आठ हजार श्लोकप्रमाण इस ग्रंथ में अनुष्टुप् छंद का उपयोग हुआ है। वसंततिलका, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी आदि छंदों का भी प्रयोग कवि ने किया है। अनुप्रास, यमक, वीप्सा, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का उपयोग भी यथास्थान किया गया है। यह एक धार्मिक काव्य है जिसमें दानशीलता आदि का वर्णन करते हुए कवि ने संसार की अनित्यता का वर्णन किया है।

### रचयिता व रचनाकाल

कृति में दी गयी प्रशस्ति के अनुसार इसके रचयिता मलधारीगच्छ के देवप्रभसूरि थे। देवानंदसूरि के अनुरोध पर यह ग्रंथ रचा गया है।<sup>103</sup> पाण्डव चरित के संपादकों ने इसका रचनाकाल वि० सं० १२७० माना है।<sup>104</sup>

## (१४) हरिवंश पुराण (भट्टारक सकलकीर्ति)

प्रस्तुत कृति के रचनाकार भट्टारक सकलकीर्ति हैं। जिनसेन के हरिवंशपुराण के कथानक पर आधारित इस कृति में ४० सर्ग हैं।<sup>105</sup> इसमें हरिवंश कुलोत्पन्न २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ, श्रीकृष्ण तथा कौरव व पाण्डवों

१०३. पाण्डवचरित प्रशस्ति, पद्य, द-६

१०४. जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास : मो० द० देसाई

१०५. जि० २० को० पृ० ४६०, राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व और कृतित्व  
पृ० २६

का वर्णन है। इसके प्रारंभ के १४ सर्गों की रचना भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा व शेष सर्गों की रचना इन्हीं के शिष्य ब्रह्म जिनदास द्वारा की गयी है।

इनके समय को लेकर विद्वानों में भिन्न-भिन्न मत दिखलाई देते हैं। डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल के मतानुसार इनका जन्म वि० सं० १४४३ और स्वर्गवास १४६६ में हुआ तथा डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन के अनुसार १४१८ में जन्म एवं १४६६ में स्वर्गवास हुआ है। डॉ० मो० विन्टरनिस्स द्वारा निर्धारित स्वर्गवास का समय सं० १५२१ का ठीक नहीं है और न डॉ० जोहरापुरकर द्वारा निर्धारित काल सं० १४५० भी उचित बैठता है।<sup>106</sup>

ये डूंगरपर (ईंडर) पट्ट के संस्थापक तथा वागड (सागवाडा) वड-साजन पट्ट के भी संस्थापक थे। इनके द्वारा ३४ ग्रंथ जिनमें २८ संस्कृत भाषा में तथा ६ राजस्थानी भाषा में रचित हैं।

### (१५) पाण्डवपुराण (शुभचंद्र)

इस पौराणिक काव्य के २५ पर्व हैं जिनकी श्लोक संख्या ६००० है। इसमें पाण्डवों की रोचक कथा का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ को जैन महाभारत भी कहते हैं। पर्वों की रचना अनुष्टुप छंदों में हुई है तथा पर्वान्त में छंदपरिवर्तन किया गया है। पर्व का प्रारंभ तीर्थंकर स्तुति से है जो क्रमशः ऋषभदेव से लेकर पार्श्व तक चलती है।

ग्रंथ के कर्ता भट्टारक शुभचंद्र हैं जो भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य तथा ज्ञानभूषण के प्रशिष्य थे। इनके शिष्य श्रीपाल वर्णी थे। इनकी सहायता से भट्टारक शुभचंद्र ने वाग्बर(वागड)प्रांत के अंतर्गत (सागवाडा) नगर में वि० सं० १६०८ भाद्रपद द्वितीया के दिन इस ग्रंथ की रचना की है। पच्चीसवें पर्व में जो कवि-प्रशस्ति दी गयी है उससे इनकी गुरु परंपरा का तथा इनके द्वारा रचित २५, २६ ग्रंथों की सूची का परिचय उपलब्ध होता है।<sup>107</sup>

ये एक बड़े विद्वान व प्रतिभासंपन्न थे, इनके लिए त्रिविधविद्याधर (शब्दागम, युक्त्यागम और परमागम के ज्ञाता) और षट्भाषा कवि चरुवर्ती

१०६. राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० १-२१; जैन संदेश

शोधक १६, पृ० १८१ तथा १८८ तथा २०८-२०९

१०७. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८३-८४

ये उपाधियाँ लगायी जाती थी ।

भ० श्रीभूषण का पाण्डव पुराण सं० १६५७ का है । इन्हीं का लिखा हुआ एक हरिवंश पुराण भी मिलता है जिसका रचनाकाल सं० १६७७ है ।<sup>108</sup>

(१६) पाण्डव पुराण :अन्य रचनायें

“पाण्डव पुराण” इस नाम की कई रचनाएँ उपलब्ध हैं । इनके रचनाकार भी भिन्न-भिन्न हैं । इसकी सूची इस प्रकार है—पाण्डवचरित्र इसका अपरनाम हरिवंश पुराण भी है । सत्यविजय ग्रंथमाला अहमदाबाद से प्रकाशित है । नं० २ पाण्डवपुराण—कवि रामचंद्र सं० १५६० से पूर्व । नं० ३ हरिवंशपुराण—धर्मकीर्ति भट्टारक सं० १६७१ । नं० ४ हरिवंशपुराण-श्रुतकीर्ति । नं० ५ हरिवंशपुराण—जयसागर । नं० ६ हरिवंशपुराण—जयानंद । ७ हरिवंशपुराण—मंगरस । इन सब के लेखक व रचनाकाल अज्ञात हैं । लघुपाण्डव चरित्र के लेखक भी अज्ञात हैं ।<sup>109</sup>

जैन संस्कृत साहित्य का एक अनुशीलनात्मक अध्ययन

संस्कृत साहित्य विश्वभर में अपनी समृद्धि के लिए अनन्यतम स्थान रखता है—यह एक निर्विवाद तथ्य है । जीवन और जगत का व्यापक चित्र प्रस्तुत करने वाला यह संस्कृत साहित्य न केवल विभिन्न दिशा में बोध प्रदान करता है वरन् यह काव्य सौंदर्य से भी संपन्न है । सरसता संस्कृत साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है । संस्कृत साहित्य की इस व्यापक विशालता और समृद्धि में जैन कवियों की कृतियों का योगदान भी अति महत्वपूर्ण है ।

काव्य चमत्कार, सौंदर्य सृष्टि, रसानुभूति आदि किसी भी दृष्टि से जैन कृष्ण संस्कृत साहित्य कम महत्वपूर्ण नहीं है । सांस्कृतिक एवं नैतिक आदर्शों की स्थापना और उनके विकास में इस साहित्य का जो गरिमापूर्ण योगदान रहा है वह श्लाघनीय है । ऐसे अनेक चरित्रों की अवतारणा जैन संस्कृत श्रीकृष्ण साहित्य में हुई हैं जो न केवल प्रभावशाली आदर्शमय हैं अपितु जो स्वस्थ समाज-रचना और व्यक्ति कल्याण के लिए हितकर एवं अनुकरणीय हैं ।

सामान्यतः जैन संस्कृत श्रीकृष्ण साहित्य में जीवन के सरस आमोद-प्रमोद एवं सुखवैभव के चित्रण के साथ-साथ जीवन मूल्यों की व्याख्या भी

१०८ जैन साहित्य और इतिहास, ले० नाथूराम प्रेमी पृ० ३८३-८४

१०९ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, पृ० ५५

प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार जीवन को प्रवृत्ति की ओर से निवृत्ति की ओर उन्मुख करने का जो सफल और प्रभावपूर्ण प्रयत्न किया गया है उससे मानव कल्याण के क्षेत्र में एक नवीन स्थापत्य का सूत्रपात हुआ है। संस्कृत वाङ्मय में यह एक नया आयाम रहा है।

जैन कृष्ण काव्य की कृतियों का सब से महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस साहित्य में भोगवाद के ऊपर श्रमण परंपरा को प्रतिष्ठित किया गया है। कर्मवाद की महत्ता, पूर्वजन्म की व्याख्या, आध्यात्मिक जीवन के विभिन्न रूप, धार्मिक क्रियाओं के फलितार्थ आदि भी इन काव्यों की मूल संवेदनाएँ हैं। भोग के बाद की विरक्ति का युग जैन साहित्य में उपलब्ध होता है। यह संस्कृत साहित्य के लिए एक अनूठी वस्तु है। परम वैभवशाली पराक्रमी राजा, महाराजा, मांडलिक, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि तो असीम सुखोपभोग में निमग्न हैं, सांसारिक विषय वासनाओं से ग्रस्त हैं, वैभव एवं विलास की मदिरा से उन्मत्त हैं। ऐसे व्यक्ति कभी किसी छोटे से निमित्त को पाकर विरक्त हो जाते हैं। उनकी मनोवृत्ति सर्वथा परिवर्तित हो जाती है। वे सब कुछ त्याग कर वन को प्रस्थान करते हैं। मुनि जीवन स्वीकार कर वे आत्म-कल्याण की साधना में प्रवृत्त हो जाते हैं। व्यक्ति का यह उत्थानात्मक परिवर्तन और इस परिवर्तन की प्रेरणा संस्कृत साहित्य के लिए एक मूल्यवान वस्तु रही है।

**जैन संस्कृत कृष्ण काव्य की देन**

निश्चय ही अपनी मौलिक अवधारणाओं के माध्यम से जैन संस्कृत कृष्ण परंपरा की कृतियों ने संस्कृत साहित्य में अपना अनूठा स्थान ही नहीं बनाया वरन् समस्त संस्कृत वाङ्मय को नवीनताएँ भी प्रदान की है। इसकी श्रीवृद्धि की है ! इसको समृद्ध बनाया है। इस तथ्य को सर्वथा असंदिग्ध ही माना जाना चाहिए कि संस्कृत जैन कृष्ण साहित्य के अध्ययन के बिना संस्कृत साहित्य का अध्ययन परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

चरित्र-काव्य की दृष्टि से जैन संस्कृत साहित्य बड़ा संपन्न स्वरूप रखता है। समग्र संस्कृत साहित्य में चरित-काव्य के प्रणेताओं में जैन रचनाकार ही अधिक हैं और इनके द्वारा रचित चरित-काव्य ही अपेक्षाकृत अधिक हैं। जैन संस्कृत चरित्र-काव्य कवित्व की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस दृष्टि से कवि वीरनंदि रचित “चंद्रप्रभचरित” उल्लेखनीय है, जो भाव-तारल्य और शील निरूपण में कालिदास कृत “रघुवंश” के समकक्ष



माना जाता है। शील, शौर्य एवं ऐश्वर्य का जितना व्यापक चित्रण चंद्रप्रभ चरित में हुआ है उतना रघुवंश में नहीं। इंदुमति के स्वयंवर प्रसंग के उदात्त वर्णन में अवश्य ही रघुवंश चंद्रप्रभ चरित से आगे बढ़ गया है किंतु श्री वर्मा और अजितसेन की दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में तो वह पीछे ही रह गया है।

इसी प्रकार महाकवि असग द्वारा रचित “वधमानचरित”, वाग्भट कृत “नेमिनिर्वाण” आदि काव्य “किरात” के समान ही काव्यसौंदर्य-संपन्न हैं। अर्थ-गांभीर्य अवश्य ही किरात में बढ़ा चढ़ा है किंतु उक्त दोनों काव्य प्रकृति-चित्रण, शृंगार वर्णन, पदलालित्य, कल्पना प्रवणता, और समास-शैली के सौष्ठव में तो किरात से अधिक ही ठहरते हैं।

“कवि हरिश्चंद्र” के धर्मशर्माभ्युदय की तुलना शिशुपाल वध से भी की जा सकती है। कलात्मकता में तो धर्मशर्माभ्युदय अपेक्षाकृत शिशुपालवध से कुछ आगे ही है। दोनों ही काव्य कल्पना, उदात्तता, शब्द-सौंदर्य, अलंकार छटा आदि विशेषताओं में परस्पर समकक्ष हैं। पद-विन्यास, शैली की गंभीरता, भावों की मौलिकता आदि भी दोनों काव्यों में समस्तरीय रही है। शिशुपाल वध को माघ ने पारिभाषिक शब्दावली से कहीं-कहीं जटिल बना दिया है किंतु धर्मशर्माभ्युदय में ऐसी स्थिति कहीं भी दिखाई नहीं देती है। इस काव्य का १६वां सर्ग तो चित्रकाव्य का अनूठा उदाहरण ही है। अनुप्रास योजना में कवि हरिश्चंद्र और माघ एक से प्रतीत होते हैं।

वस्तुपाल कृत (नरनारायणानंद) भी एक सुंदर कृष्ण-चरित काव्य है। इसकी तुलना काव्य-सौष्ठव में तो शिशुपाल वध के साथ नहीं की जा सकती किंतु भाव पक्ष की दृष्टि से वस्तुपाल भी माघ के समीप ही हैं। अपने गांभीर्य से (नरनारायणानंद) काव्य सहृदय पाठकों को आकृष्ट कर रघुवंश जैसा प्रभाव अंकित करने की क्षमता रखता है। इसमें भारवि के समान नाद-सौंदर्य निहित है। कलापक्ष की दृष्टि से वस्तुपाल और भारवि परस्पर तुलनीय हैं।

“नैषधकाव्य” की कोटि की रचना जैन कवियों द्वारा संभव नहीं हो पायी है। यद्यपि मुनिभद्र ने संकल्प किया था कि वे माघ और नैषध से भी श्रेष्ठ काव्य की रचना करेंगे। किंतु (शांतिनाथ चरित) में उनका यह संकल्प पूरा नहीं हो पाया। तथापि प्रस्तुत काव्य अनेक दृष्टियों से मूल्यवान भी है। इसमें प्रासादिकता, प्रौढ़ गंभीर भाषा, भाव तरलता आदि विशेषताएँ

उल्लेखनीय रही है। कवि की पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति का भी संकेत नहीं मिलता है। अति विस्तृत कथानक होते हुए भी कहीं किसी प्रकार का शैथिल्य या विशृंखलता नहीं दिखायी देती है। प्रबंध कौशल में निःसन्देह मुनिभद्र माघ और भारवि से पीछे नहीं है। कला के क्षेत्र में अवश्य ही वे कुछ न्यून कहे जा सकते हैं। हां, जिनपालोपाध्याय रचित सनत्कुमार चरित्र चरित महाकाव्य परिपूर्ण रूप से अवश्य ही नैषध की कोटि का है।

जैन संस्कृत साहित्य के अंतर्गत जैनकुमार संभव की भी रचना हुई है। इस कृति की रचना कालिदास विरचित कुमारसंभव की प्रतिस्पर्धा में ही हुई है, ऐसा प्रतीत होता है।

प्रस्तुत रचना में शृंगार रस की योजना तो उतनी श्रेष्ठ नहीं मिलती जितनी कालिदास की है, किंतु कालिदास के कार्तिकेय जन्म-वृत्तांत जैसा ही वर्णन प्रस्तुत रचना में भरत जन्म की कथा में है। माधुर्य, प्रासादिकता, लालित्य, अर्थसौष्ठव एवं अलंकार योजना में दोनों रचनाएँ विष प्रतिविष सी हैं। जैन कुमार-संभव भी सरस उपमाओं के लिए विख्यात ग्रंथ है। अश्लीलत्व की अनुपस्थिति में ये उपमायें अपेक्षाकृत अधिक उत्तम लगती हैं। कालिदास ने शिवविवाह का जैसा चित्ताकर्षक एवं मार्मिक चित्रण किया है वैसा ही वर्णन जैन कुमार संभव में ऋषभदेव विवाह का हुआ है।

बुद्ध चरित और सौंदरानंद की समकक्षता जैन ग्रंथ चंद्रप्रभ चरित, पार्श्वनाथ चरित आदि काव्यों से की जाती है। संस्कृत काव्यों (उक्त) की अपेक्षा इन जैन संस्कृत काव्यों में मनुष्य की हृदय परिवर्तनशीलता का अत्यधिक मार्मिक चित्रण हुआ है। सांसारिक अनुभवों की अभिव्यक्ति भी अधिक कुशलता के साथ हुई है। साहसिकता के चित्रण में प्रद्युम्न चरित सौंदरानंद से अधिक प्रवाहपूर्ण रचना है। पात्रों की सजीवता, पारिवारिक कलह, सपत्नी आदि के चित्रण हेतु यह रचना संस्कृत जैन कृष्ण विषयक चरित्र काव्य की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

जैन संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्यों की रचना भी श्रेष्ठता के साथ हुई है। उदाहरणार्थ नयचंद्रसूक्तित हम्मीर महाकाव्य संस्कृत के विख्यात ऐतिहासिक काव्य विल्हण कृत विक्रमांकदेव चरित के समकक्ष है। हम्मीर महाकाव्य में वर्णित घटनाएँ इतिहास की दृष्टि से खरी उतरने वाली प्रामाणिक घटनाएँ हैं। इस महाकाव्य में कालिदास जैसा भाव, तथ्य, नैषध जैसा अर्थ-गौरव एवं भाषा-सौष्ठव में यह रचना राजरंगिणी के समकक्ष है।

संधान-काव्यों की रचना द्वारा भी जैन काव्यकारों ने संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि की है। इस कोटि की काव्य-परंपरा का आदि ग्रंथ धनंजय कृत द्विसंधान एक जैन कृष्ण संस्कृत काव्य कृति है। इस परंपरा में इससे भी पूर्व रचित दण्डि कृत द्विसंधान की चर्चा तो की जाती है। भोजकृत शृंगार-प्रकाश में भी उसका उल्लेख है, किंतु यह कृति उपलब्ध नहीं है। अतः मेरे मत से संधान काव्य-परंपरा का उदय धनंजय प्रणीत द्विसंधान से किया जाना अधिक समीचीन होगा। इस परंपरा में अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं—

विद्यामाधव कृत पार्वती शैवमयी (वि० सं० ११८३), कविराज कृत राघव पाण्डवीय (वि० सं० १२३०), सोमेश्वर द्वारा रचित राघव-यादवीय आदि। राघवयादवीय द्विसंधानरचना कतिपय अन्य कवियों द्वारा भी गई है। जैसे—वेंकटेश्वरी (१४वीं शताब्दी), रघुनाथाचार्य श्री विगसा-चार्य, वासदेव दिगंबर अनन्ताचार्य आदि। ये द्विसंधान काव्य निश्चय ही धनंजय कृत राघवपाण्डवीय की परवर्ती कृतियाँ हैं।

राघवपाण्डवीय काव्य में श्री राम और पाण्डवों की कथा एक साथ एक ही काव्य में वर्णित की गयी है। श्लोकों के दो-दो अर्थ प्रकट होते हैं। एक राम कथा के संबंध में एवं दूसरा पाण्डव कथा के संबंध में है। इसी प्रकार राघवयादवीय में श्री राम और श्री कृष्ण चरित का समानान्तर रूप में वर्णन है। आद्योपांत ऐसी अर्थ-निर्वाह-व्यवस्था कवि के बड़े-चढ़े काव्य-कौशल का परिचय देती है। हम इसे जैन संस्कृत संधान कृष्ण काव्य के अंतर्गत परिगणित करते हैं। आचार्य हेमचंद्र ने तो सप्तसंधान की रचना की थी। इसमें सात-सात महापुरुषों के जीवन चरित का वर्णन एक ही काव्य में प्रायः एक ही श्लोक के प्रयोग से किया गया था। यह अद्भुत काव्य ग्रंथ नष्ट हो गया। कालांतर में मेघविजय गणि ने पुनः सप्त-संधान काव्य की रचना की। कुछ पंचसंधान काव्य भी जैन कवियों ने रचे हैं।

संस्कृत साहित्य में संदेश काव्यों की एक समृद्ध परंपरा रही है—मेघ-दूत श्रेष्ठ संस्कृत संदेश काव्य है, जिसमें बाह्य प्रकृति वर्णन के साथ-साथ आंतरिक भावों का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। मेघदूत की समस्यापूर्ति के रूप में रचा गया पार्श्वभ्युदय अपने ढंग का अनूठा जैन संस्कृत काव्य है। जैन कवियों ने दूत अथवा संदेश काव्यों के स्वरूप में एक नया रंग जोड़ने का सफल प्रयास किया है। इन काव्यों में शांत रस का प्राधान्य रहा है और जैन सिद्धांतों, तत्त्वों और आदर्शों का प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि से

नेमिदूत (जैनकाव्य) विशेष महत्वपूर्ण है।

निसदेह जैन संस्कृत साहित्य सभी दृष्टियों से महान है। उसका वैभव प्राचुर्य भी ध्यातव्य है। उसका सौंदर्य तथा सौष्ठव भी उल्लेखनीय है। संस्कृत साहित्य के इस व्यापक पट पर जैन कवियों द्वारा रचित संस्कृत कृष्ण काव्यों को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह एक यथार्थ तथ्य है कि संस्कृत को जो प्रचुर गरिमा प्राप्त हुई है उसमें जैन संस्कृत कृष्ण साहित्य का योगदान भी अति महत्वपूर्ण रहा है। यहां यह स्मरणीय है कि जैनेतर कृष्ण काव्य में उधो को संदेश देकर गोपियों के पास कृष्ण ने भेजा था और गोपियों ने भी भृंग को लक्षित करते हुए कृष्ण और उधो पर फितियां कसी हैं, पर इस प्रकार का कोई प्रयत्न संस्कृत जैन कृष्ण काव्य में उपलब्ध नहीं हुआ है। उसका कारण जैन तत्त्वज्ञान और वीतरागी दृष्टि भी हो सकती है।

मैंने इस अध्याय में संस्कृत के करीब-करीब जैन कृष्ण काव्यों की सोलह कृतियों का अनुशीलन किया है। जो तथ्य और निष्कर्ष हाथ आये हैं उनका अब मैं यहां पर विवेचन कर रहा हूँ।

#### निष्कर्ष एवं तथ्य

(१) इस अध्याय में चरित महाकाव्य के अंतर्गत प्रद्युम्न चरित, नेमिनिर्वाण काव्यम् ये दो महाकाव्य चरित्र, महाकाव्य के रूप में मेरे अध्ययन में आए।

(२) नरनारायणानन्द महाकाव्य में अर्जुन और श्रीकृष्ण इन दो मित्रों की मैत्री, आनंद और उल्लास का वर्णन विषय होकर बड़ी सरस कृति प्रस्तुत की गई है। यही इन दोनों के चरित्र का आलेख आयाम भी बना है।

(३) सप्तसन्धान काव्य में सात महापुरुषों का चरित्र संक्षिप्त रूप से सात सर्गों में विवेचित किया है। इसके बाद एक द्विसंधान नाम का राघव और पाण्डवों की कथा को एक साथ प्रस्तुत करनेवाला काव्य मेरे अनुशीलन का विषय बना। पूरे चरित्रों को न लेकर श्रीराम और श्रीकृष्ण की प्रमुख जीवन घटनाओं को जैन दृष्टि से लेकर इनका विवेचन सामने आया है।

(४) पुराणसारसंग्रह, हरिवंशपुराण ये छोटी कृतियाँ हैं, पर श्रीकृष्ण चरित्र और अरिष्टनेमी का संबंध दूसरी कृति में जैन दृष्टि से अधिक स्पष्ट हो गया है।

(५) नेमिदूत यह अवश्य एक उल्लेखनीय सरस काव्यकृति है। चरित नायक नेमिनाथ और नायिका राजीमती हैं। यह विरह प्रधान करुण काव्य होने पर भी वीतराग रस की निर्मिती इसका प्रामुख्यता से उद्देश्य जान पड़ता है। जैन संस्कृत काव्यों में इसका अन्यतम स्थान है।

(६) त्रिशष्टिशलाका पुरुषों के चरित को लेकर कतिपय छोटी-बड़ी कृतियाँ भी जैन संस्कृत कवियों के काव्य-सृष्टि का विषय बनी हैं जो जैन तत्त्वज्ञान की पारंपरिकता को स्पष्ट करने में सहायक हो सकती हैं। इनमें पौराणिकता भी विद्यमान है। एक ही कृति के दो भाग दो पुराणों के नाम से सर्जित हैं। इसकी भी एक परंपरा चली है और कई पाण्डवपुराण भी लिखे गये हैं। काव्य की दृष्टि से कहीं सरस और कहीं मनोरम बन गये हैं।

(७) श्रीकृष्ण और पाण्डव, श्रीकृष्ण और नेमिनाथ इनका आपसी संबंध महाभारत और जैन पुराणों के अनुसार जोड़कर ये कृतियाँ जैन लेखकों ने रची हैं। इन सब का यथा-योग्य अध्ययन यथास्थान मैंने कर दिया है। पुराने संस्कृत काव्यों के कृतिकारों के साथ जैन श्रीकृष्ण संस्कृत कृतिकारों की यह स्पर्धा काव्य के क्षेत्र की एक श्रेष्ठ स्पर्धा मानी जाय ऐसी मेरी विनम्र प्रणति है।

अब तक की सारी सामग्री के आधार पर तथा अपभ्रंश की जैन कृष्ण कथा को लेकर छठे अध्याय में सारी कथा का अनुशीलन करूँगा। अगला अध्याय मेरे अध्ययन का अपभ्रंश जैन कृष्ण साहित्य होगा।

## अपभ्रंश जैन श्रीकृष्ण-साहित्य

भारतीय साहित्य के इतिहास की दृष्टि से जो अपभ्रंश का उत्कर्ष-काल समझा जाता है वही जैन कृष्ण काव्य का मध्याह्न काल है। इसी कालखण्ड में पौराणिक और काव्य साहित्य की अनेक कृष्ण-विषयक रचनाएँ सजित हुई हैं। विषय व शैली की दृष्टि से जैन अपभ्रंश श्रीकृष्ण साहित्य पर संस्कृत और प्राकृत परंपरा का प्रभाव दिखाई देता है। यह सत्य है कि ये अपभ्रंश काव्य-रचनाएँ प्रायः अप्रकाशित हैं। इनका उपलब्ध होना भी कठिन है। फिर भी यह श्रीकृष्ण साहित्य काव्यगुणों से वंचित नहीं माना जा सकता।

अपभ्रंश में नवमीं शताब्दी के पूर्व कोई कृति उपलब्ध नहीं है। दसवीं शताब्दी तक स्वल्प संख्या में ही कृतियाँ उपलब्ध हैं। अपभ्रंश की लाक्षणिक साहित्यिक एकाध कृति यदि मिल भी जाए तो वह उत्तरकालीन है। अपभ्रंश का बचा हुआ साहित्य विशेष रूप से धार्मिक साहित्य होने से केवल धार्मिक जैन-साहित्य के अंतर्गत ही आता है। वैसे जो कुछ भी अपभ्रंश-साहित्य बचा है वह भी अल्प प्रकाशित है और अन्य भण्डारों में हस्तलिखित प्रतियों के रूप में होने से सर्वसुलभ नहीं है।

संस्कृत एवं प्राकृत में पौराणिक और काव्य साहित्य की अनेक कृष्ण विषयक कथाओं की रचनाएँ मिलती हैं। इनमें हरिवंश, विष्णुपुराण तथा भागवत पुराण की कृष्ण कथाएँ ही तत्कालीन अपभ्रंश साहित्य रचनाओं का मूलस्रोत रही हैं। अपभ्रंश साहित्य में भी कृष्ण विषयक रचनाओं की दीर्घ व व्यापक परंपराओं का रहना सहज था। परंतु, जिन परिस्थितियों का हम वर्णन कर आए हैं उनके कारण अपभ्रंश का एक भी शुद्ध कृष्ण-काव्य उपलब्ध नहीं होता। जैनेतर कृष्णकाव्य भी उपलब्ध नहीं होता। जैन कृष्ण कथा में भी मुख्य-मुख्य प्रसंग उनके क्रम एवं पात्र के स्वरूप आदि

दीर्घकालीन परंपरा से नियत थे। जहां तक कथानक का संबंध है, वहां जैन श्रीकृष्ण कथा की विभिन्न कृतियों में परिवर्तन के लिए कम गुंजाइश रहती थी। तपशीलों के विषय में कार्यों की प्रवृत्ति, निर्मितों के विषय में और निरूपण की कथा के विषय में एक कृति और दूसरी कृति के बीच प्रचुर मात्रा में अन्तर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर और श्वेताश्वर जैन परंपरा के कृष्ण चरित्रों की भी अपनी-अपनी विशेषताएं रहती हैं। इसलिए उनके रूपान्तर के अनुसरण करने में भी कुछ भिन्नत्व मिलता है, विषयों को संप्रदायानुकूल बनाने के लिए मूल कथानक को लेकर कोई सर्वमान्य प्रणाली इनके सामने नहीं थी, इसलिए जैन रचनाकारों ने अपने-अपने स्वतंत्र मार्ग अपनाए हैं।

जैन कृष्ण चरित्र के अनुसार कृष्ण न तो दिव्य पुरुष थे, न ईश्वर के अवतार। वे तो एक असामान्य शक्तिशाली वीर पुरुष एवं सम्राट थे। जैन पुराण कथा के अनुसार तिरसठ महापुरुष या शलाकापुरुष हो गए हैं। इसके साथ तीर्थंकर चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और प्रति वासुदेव की संख्याओं का समावेश होता है।

जैन कृष्ण काव्य में एक नई त्रिपुटि मिलती है जो कृष्ण, बलराम और जरासंध की है। दिगम्बर परंपरा में चतुःपंचाशत महापुरुषों की परंपरा थी। ऐसी कृति को महापुराण कहा जाता है। इसके दो भाग हैं, एक का नाम—आदि पुराण और दूसरे का नाम उत्तर पुराण है। आदि पुराण में प्रथम तीर्थंकर व प्रथम चक्रवर्ती और उत्तर पुराण में शेष महापुरुषों के चरित्र विवेचित किए गये हैं। ६३ महापुरुषों के चरित्रों को ग्रथित करने-वाली परंपरा में रचनाओं के नाम त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र या त्रिषष्टि महापुरुष चरित्र कहा जाता है। जब इनमें नव प्रतिवासुदेवों की गिनती नहीं की जाती थी तब ऐसी रचना को “चतुष्पंचाशत महापुरुष चरित्र” ही कहते थे।

इसके अलावा किसी एक तीर्थंकर, वासुदेव, और चक्रवर्ती को लेकर भी कृतियां रची जाती रही हैं। इनको पुराण भी कहा जाता है, कृष्ण वासुदेव का चरित्र तीर्थंकर अरिष्टनेमि के साथ संलग्न है। ऐसी रचनाओं के नाम हरिवंश पराण या अरिष्टनेमि पुराण भी पाया जाता है।

## जैन अपभ्रंश साहित्य में श्रीकृष्ण

सोदाहरण :—

भारतीय वाङ्मय के विकास में अपभ्रंश साहित्य का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हमारे समस्त साहित्यिक गौरव-भवन के आधारभूत स्तम्भों में अपभ्रंश को स्वीकारना भी सभी दृष्टियों से समीचीन प्रतीत होता है। अपभ्रंश का उल्लेख हमारे इतिहास के अतिप्राचीन युग से मिलता है। पातंजल महाभाष्य में अपभ्रंश का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है जो ईसा से दो शताब्दी पूर्व की रचना है, किन्तु यह भी सत्य है कि अपभ्रंश साहित्य की रचना ईसा की आठवीं शताब्दी से ही सजित होने लगी थी। इससे पूर्व इस भाषा की रचना कहीं भी दृष्टिगत नहीं होती। अपभ्रंश का आदि कवि स्वयंभू माना जाता है।

अपभ्रंश साहित्य विपुल मात्रा में मिलता है और यह भी एक सत्य है कि इसको विपुलता का सर्वाधिक श्रेय जैन कवियों को दिया जाता है। इस समय उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य का सर्वेक्षण किया जाए तो यह निष्कर्ष प्रकट होता है कि इसके तीन चौथाई से भी अधिक अंश के रचयिता जैन रचनाकार ही मिलेंगे। अपभ्रंश के जैन साहित्य में श्रीकृष्ण चरित्र भी उल्लेखनीय मात्रा में वर्णित हुआ है। इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचनाएँ एवं उनके रचनाकारों का विवरण भी प्रासंगिक ही होगा।

स्वयंभू पूर्व के कृतिकार :

महाकवि स्वयंभू के पूर्व की कृष्ण विषयक अपभ्रंश रचनाओं के बारे में जो जानकारी मिलती है वह अत्यन्त स्वल्प और त्रोटक है। इसके लिए आधार हैं—स्वयंभूकृत छन्दोग्रन्थ स्वयंभूछन्द में दिए गये कुछ उद्धरण में हमें प्राप्त होते हैं। हेमचंद्रकृत—“सिद्धहेमशब्दानुशासन” के अपभ्रंश विभाग में दिए गए तीन उद्धरण और कुछ अपभ्रंश कृतियों में दिये गये कुछ कवियों के नाम-निर्देश इस प्रकार हैं।

स्वयंभू के पूर्वगामियों में चतुर्मुख स्वयंभू की ही कक्षा का समर्थ महाकवि था। सम्भवतः वह जैनैतर था। उसने एक रामायण विषयक और एक महाभारत विषयक ऐसे कम से कम दो अपभ्रंश महाकाव्यों की रचना



की है। इसे मानने का पर्याप्त आधार है<sup>1</sup> महाभारत विषयक कृष्णकाव्य में कृष्ण चरित्र के कुछ अंश ।

चतुर्मुख के अतिरिक्त स्वयंभू का एक और ख्यातनाम पूर्ववर्ती था, जिसका नाम गोविंद था। गोविंद के ६ छंद जो दिए गए हैं वे कृष्ण के बाल-चरित विषयक किसी काव्य के अंश हैं। जहां से वे लिए गए हैं, गोविंद के उद्धृत छंदों में इसके हरिवंश विषयक या नेमिनाथ विषयक काव्य में से लिए गये जान पड़ते हैं। संभवतः पूरे काव्य की रचना द्विभंगी छंद में की गयी होगी। हरिभद्र ने इसके बाद रड्डा छंद में ही “नेमिनाथ चरित” की रचना की थी।

स्वयंभू छंद में गोविंद से लिया गया मत्तविलासिनी नामक मात्रा छंद का उदाहरण जैन परंपरा के कृष्ण बालचरित्र का एक सुप्रसिद्ध प्रसंग है।

कालिय-नाग के निवासस्थान बने हुए कालिंदी में से कमल निकाल कर भेंट करने का आदेश नंद को कंस ने दिया था, इस संदर्भ का पद्य इस प्रकार है—

एहु बिसमउ सुद्धु आएसु

पाणुतिउ माणुसहो बिट्ठो विसु सप्पु कालियउ ।

कंसु वि भारेह घुउ कहि गम्मउ काइं किजउ ॥

(स्व-च्छ-४-१०-१)

यह आदेश अत्यंत कठोर था। वह यह कि मानव के लिए प्राण संहारक दृष्टि-विष वाला कालिय नाग अपने विषैले फूत्कार और विषैली दृष्टि से श्रीकृष्ण का हनन करे। और, दूसरा आदेश यह कि यदि सर्प उसे कुछ न कर पावे तो दूसरी ओर यह था (आदेश के अनादर से) कंस से अवश्य प्राप्तव्य मृत्युदण्ड—तो अब वह कहां जाएं और क्या करें ?

गोविंद का दूसरा पद्य जो मत्तकरिणी मात्रा छंद में रचा हुआ है, राधा की और कृष्ण का प्रेमातिरेक प्रकट करता है। हेमचंद्र के “सिद्धहेम” में भी यह उद्धृत हुआ है (देखो ८-४-४२२, ५) और वहीं कुछ अंश में

1. Caturmukha—One of the earliest Apābhraṃsīa—epic posts, Journal of the Oriental Institute, Baroda.

—ग्रंथ ७, अंक ३, ले० डा० एच० सी० भायाणी, १ मार्च १९५८, पृ० २१४-२४

प्राचीनतर पाठ सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त “सिद्धहेम”, ८-४-४२०, २ में जो दोहा उद्धृत है वह भी मेरी समझ में बहुत कर के गोविंद के ही उसी काव्य के ऐसे ही संदर्भ में रहे हुए किसी छंद का उत्तरांश है। “स्वयंभूछंद” में दिया गया गोविंदकृत वह दूसरा छंद इस प्रकार है। अंश हेमचंद्र वाले पाठ से लिया गया है।

एकमेकउ जइ वि जोएवि

हरि सुटू वि आअरेण तो विद्रोहि जहिं किं वि राही ।

को सक्कइ संवरे वि दड्ढ णयण णोहे पलुदटा ॥

(स्व० छ० ४-१०-२)

एक-एक गोपी की ओर हरि यद्यपि पूरे आदर से देख रहे हैं तथापि उनकी दृष्टि वहीं जाती है जहां राधा होती है : स्नेह से झुके हुए नयनों का संवरण भला कौन कर सकता है ?

इसी भाव से संलग्न “सिद्धहेम” में उद्धृत दोहा इस प्रकार है—

हरि नच्चाविउ प्रगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ ।

एवांहि राह-पओहरहं जं भावइ तं होउ ॥

“हरि को अपने घर के प्रांगण में नचा कर राधा ने लोगों को विस्मय में डाल दिया। अब तो राधा के पयोधरों का जो होना हो सो हो।”

“स्वयंभू छंद” में उद्धृत बहुरूपा मात्रा के उदाहरण में कृष्ण के वियोग में तड़पती हुई गोपी का वर्णन है। पद्य इस प्रकार है—

देह पाली थणहं पब्भारे

तोडेप्पिणु पालिणिदलु हरिविओअसंतावें तत्ती ।

फलु अण्णुहिं पावियउ करउदइअ जं किपि रुच्चइ ॥

कृष्ण वियोग के संताप से तप्त गोपी उन्नत स्तन प्रदेश पर नलिनी-दल तोड़ कर रखती है। उस मुग्धा ने अपनी करनी का फल पाया। अब देव चाहें सो करें।

हेमचंद्र के “त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र” ६-५ में किया गया वर्णन इससे तुलनीय है—गोपियों के गीत के साथ बालकृष्ण नृत्य करते थे और बलराम ताल बजाते थे।

मानो इससे ही संलग्न हो ऐसा 'मत्तबालिका मात्रा' का उदाहरण है—

कमल कुमुआण एक्क उप्पत्ति  
ससि तो वि कुमुआअरहं बेइ सोक्खू कमलहं दिवाअरु ।  
पाविज्जइ अवस फलु जेण जस्स पासे ठवेइउ ॥

(स्व० च्छ०, ४-६-१)

कमल और कुमुद दोनों का प्रभवस्थान एकही होते हुए भी कुमुदों के लिए चंद्र एवं कमलों के लिए सूर्य सुखदाता है। जिसने जिसके पास धरोहर रखी हो उसको उसी से अपने कर्मफल प्राप्त होते हैं।

इन पद्यों से गोविंद कवि की अभिव्यक्ति की सहजता का तथा उसकी प्रकृतिचित्रण और भावचित्रण की शक्ति का हमें थोड़ा-सा परिचय मिल जाता है। यह उल्लेखनीय है कि बाद के बालकृष्ण की क्रीडाओं के जैन कवियों के वर्णन में कहीं गोपियों के विरह की तथा राधा संबंधित प्रणय-चेष्टा की बात नहीं है। दूसरी बात यह है कि मात्रा या रड्डा जैसा जटिल छंद भी दीर्घ कथात्मक वस्तु के निरूपण के लिए कितना सुगम एवं लयबद्ध हो सकता है, यह बात गोविंद ने अपने सफल प्रयोगों से सिद्ध की। आगे चल कर हरिभद्र से इसी का समर्थन किया जाएगा। और, छोटी रचनाओं में तो रड्डा का प्रचलन १५ वीं, १६ वीं शताब्दी तक रहा। रड्डा छंद का उदाहरण यहीं पर दिया जा रहा है—<sup>२</sup>

इत्तउं बोप्पिणु सउणि ठिऊ पुणु दुसासणुबोप्पि ।  
तो हउं जाणउं एहो हरि जइमहु अगगह बोप्पि ॥

इतना कहकर शकुनी चुप रह गया और बाद में दुःशासन ने यह कहा कि मेरे सामने आकर जब बोले तब जानूँ कि यही हरि है।

प्रस्तुत अर्थ में कुछ अस्पष्टता होते हुए भी इतनी बात स्पष्ट है कि प्रसंग कृष्ण विषय का है। यह पद्य भी शायद गोविंद की जैसी ही अन्य कोई महाभारत विषयक रचना में से लिया गया है।

## (१) महाकवि स्वयंभूकृत रिठ्ठणेमिचरिउ

स्वयंभू नौवीं शताब्दी के कवि हैं और जैसा कि वर्णित किया ही जा

चुका है कि ये अपभ्रंश भाषा के प्रथम ज्ञात कवि हैं। इसके साथ यह तथ्य भी प्रमुखतः ध्यातव्य है कि यही कवि स्वयंभू अपभ्रंश के जैन श्रीकृष्ण साहित्य की परंपरा के भी प्रथम कवि हैं। स्वयंभू एक सिद्ध कवि थे और उनकी रचनाओं में प्रौढ़ता एवं परिपक्वता के दर्शन होते हैं। कवि की रचना रिठ्ठणेमिचरिउ (अरिष्टनेमिचरित्र) एक उल्लेखनीय महाकाव्य कृति कही जा सकती है। यह ग्रंथ ४ काण्डों में विभाजित है।

१. यादव काण्ड की १३ संधियां, २. कुरु काण्ड की १६ संधियां,

३. युद्धकाण्ड की ६ संधियां, ४. उत्तर काण्ड की २ संधियां।

संपूर्ण ग्रंथ में ११२ संधियां और १६३७ कड़वक हैं। महाकाव्य की ११२ संधियों में ६६ वें संधियां हैं जो स्वयंभू द्वारा रचित हैं। और, शेष का कर्तृत्व उनके पुत्र त्रिभुवन और १५वीं शताब्दी के यशकीर्ति भट्टारक को दिया गया है, क्योंकि इन दोनों ने इसे पूर्ण किया है। जैन ग्रंथों की यह परंपरा भी रही है कि उसे आरंभ एक कवि करता है और शेष अंश दूसरों के द्वारा पूर्ण किया जाता है। स्वयंभू ने जिनसेन और वैदिक परंपरा के कथानकों का अनुसरण किया है।

यह स्मरण रहे कि चंद वरदाई ने भी अपने पुत्र जल्हण से “पृथ्वीराज-रासो” को पूर्ण करने के लिये आदेश दिया था। इसी प्रकार भावार्थ रामायण के मराठी लेखक संत एकनाथ की कृति का उत्तरकाण्ड और युद्ध काण्ड का कुछ अंश उनके शिष्य गावबा ने पूर्ण किया था। इस प्रकार जैनों में भी यह भारतीय परंपरा मिलती है।

रिठ्ठणेमिचरिउ के प्रथम यादव काण्ड में श्रीकृष्ण चरित्र का विशद वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण जन्म, बाललीला, श्री कृष्ण के विभिन्न विवाह, प्रद्युम्न कुमार का जन्म नेमिजन्म, शाम्ब आदि की कथाएं आदि विभिन्न कृष्ण चरित्र के प्रसंगों का इस काण्ड में पर्याप्त महत्व के साथ चित्रण हुआ है।

संधि ४ (कड़वक १२) में कृष्ण जन्म का प्रसंग स्वयंभू द्वारा चित्रित है। स्वयंभू की प्रतिभा काव्यात्मक परिस्थिति को आंकने में विशेष जागरूक है। उदाहरण के लिए उनके कालियमर्दन वाले प्रसंग में से कल्पना से परिपूर्ण वर्णन वैशिष्ट्य से युक्त है, जो छं० १४-२ में विवेचित किया गया है।

ऐसे पराकाष्ठा युक्त बिबों में कवि स्वयंभू की कल्पनाशक्ति व प्रतिभा के दर्शन हमें उपलब्ध होते हैं।

पूतना के विषलिप्त स्तन को दो हाथों से पकड़ कर अपने मुँह से लगाते हुए बालकृष्ण का रूप देखिए।<sup>३</sup> :

सो थणु दुधधार धवलु हरिउहयकरंतरेमाइयउ ।

पहिलारउ असुराहयणे णं, पंचजणु महिलाइयउ ॥

(स्वयंभू-छं० ५-४ घत्ता)

पूतना का दुग्धधारा से युक्त धवलस्तन हरि के दोनों करों में ऐसा भाता था जैसा की असुरसंहार के लिए पहले पहल मुँह से लगाया हुआ पांचजन्य शंख। साथ ही काव्यत्व की दृष्टि से कवि ने सूक्तियों और कहावतों का भी प्रयोग किया है।

जं जे हउ दिण्णउ आसि तं तेहउ समावडइ ।

किं वयइए को दूव धणणे सालिकणिसु फले णिव्वडइ ॥

(स्व० छं० ६-१४ घत्ता)

जैसा देते हो वैसा पाते हो। क्या कोदों बोने से कभी धान निपज सकता है ?

## (२) महापुराण या तिसट्ठीमहापुरुषगुणालंकार—कवि पुष्पदन्त

यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है। जैन परंपरा में मान्य ६३ शलाका पुरुषों का चरित्र इस महाकाव्य का प्रतिपाद्य रहा है। ५१ से ६२ तक की संधियों में हरिवंशपुराण की कथा इसमें पद्यबद्ध मिलती है। डा. हरिवंश कोछड के मतानुसार इस महाकाव्य की रचना ६४७ से ६६४ के मध्य में हुई है।

तिसट्ठी महापुरुषगुणालंकार महाकाव्य को महापुराण के नाम से भी जाना जाता है। महापुराण की प्रचलित पद्धति के अनुसार यह रचना भी दो खण्डों में विभक्त है—१. आदिपुराण और २. उत्तरपुराण। आदि पुराण में प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का चरित्र अंकित है और उत्तर

३. भारतीय भाषाओं में कृष्णकाव्य, प्रथम खण्ड—सं० डा० भगीरथ मिश्र,

पुराण में शेष २३ तीर्थंकरों का । इन तीर्थंकरों के समकालीन महापुरुषों के जीवन का वर्णन भी यथास्थान कर दिया गया है । भगवान् अरिष्टनेमि के प्रसंग के साथ-साथ श्रीकृष्ण का चरित्र भी प्रस्तुत हुआ है ।

इस कृति की ८१ से ९२ तक की संधियां हरिवंश के कथानक को व्यापती हैं । इनमें से संधि ८५ में वासुदेव जन्म, ८५ में नारायण की बाल क्रीडा और ८६ में कंस और चाणूर के संहार का विषय है । ८५ वीं संधि के ९-१०-११ कडवकों में पूतना, अश्व, गर्दभ और यमलार्जुन के उपद्रवों का विवेचन है । संधि ८४ के १६ कडवकों में अष्टमात्रिक और पंचमात्रिक लघु छंदों का प्रयोग सफलता के साथ किया गया है । जिसमें लय और ध्वनि शक्ति निर्माण करने की विशेषता विद्यमान है । १६ कडवकों में वर्षा वर्णन है । ८५-१२ में अरिष्टासुर, ८५-१९ में गोप वेष वर्णन और ८८-५ से १५ तक कृष्ण जरासंध युद्ध एवं ८६-८ कडवकों में कंस-कृष्ण युद्ध का विवेचन है । इनमें से कुछ चुने हुए उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं ।

**नवजात कृष्ण को ले जाते हुए वासुदेव कालिंदी दर्शन का प्रसंग<sup>४</sup>**

ता कालिंदि तेहि अवलोइय मंथरवारिगामिणी ।  
 णं सरिरपु थरिवि थिय महियलि घणतमजोणि जामिणी । ।  
 णारायणातरणुपहंपति विव अंजणगिरिवारिदकंती इव ।  
 महिमयणाहिरइयरेहा इव बहुतरंग जरत्थदेहा इव ।  
 महिहरदंतिदाणरेहा इव कंसरायजीवियमेरा इव ।  
 वसुहणिलीणमेहमाला इव साम समुत्ताहल बाला इव ।  
 णं सेवालवाल दकखालइ पेणुप्परियणु णं तहि धोलइ ।  
 गेस्यस्तु तोउ स्तंबरु णं परिहइ चुयकुसुमहि कब्बुरु ,  
 किणरिथणसिहरइ णं दावइ विब्भमेहि णं संसउ पावइ ।  
 फणिमणिकिरणहि णं उज्जोयइ कमलच्छहि णं कणहु पलोयइ ।  
 भिसिणिपत्तथालेहि सुणिम्मल उच्चाइय णं जलकणतंदुल ।  
 खलखलंति णं मंगलु घोसइ णं माहवहु पक्खु सा पोसइ ।

४. भारतीय भाषाओं में कृष्णकाव्य, प्र० खण्ड — डा० भगीरथ मिश्र, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, भोपाल, सन १९७९, पृ० १६४—पुष्पदन्तमहापुराण ।

णउ कासु वि सामण्णहु अण्णहु अवसें तूसइ जवण सवण्णहु ।  
 विहि भाइहि थक्कउ तीरिणि जलु णं धरणारि विहन्नउं कज्जलु ।  
 दरिसिउ ताइ तलु किं जाणहुं णाहुत्ती ।  
 पेक्खवि महूमहेणु मयणे णं सरि वि विगुत्ती ॥  
 (महापुराण, ८५-२)

: तब मंथरगति से बहती हुई कालिंदी उनको दृष्टिगोचर हुई ।  
 मानो धरातल पर अवतीर्ण सरितारूपधारिणी तिमिरघन यामिनी ।  
 मानो कृष्ण की देहप्रभा की धारा ।  
 मानो अंजनगिरि की आभा ।  
 मानो धरातल पर खींची हुई कस्तूरी रेखा ।  
 मानो गिरिरूपी गजेंद्र की मदरेखा ।  
 मानो कंसराज की आयुःसमाप्ति-रेखा ।  
 मानो धरातल पर अवस्थित मेघमाला ।  
 वृद्धा की तरंगबहुल ।  
 बाला सी श्यामा और मुक्तफलवती ।  
 वह शैवालबाल प्रदर्शित कर रही है ।  
 फेनका उत्तरीय फहरा रही है ।  
 गेरुआ जलका, च्युत कुसुमों से कर्बुरित रक्तांबर पहने हुई है ।  
 किन्नरीरूपी स्तनाग्र दिखला रही है ।  
 विभ्रमों से संशयित कर रही है ।  
 सर्पमणि की किरणों से उद्योत कर रही है ।  
 कमलनयन से कृष्ण को मानो निहार रही है ।

वह कमल पत्र के थाल में जल-कण में अक्षत उछाल रही है । (कल-कल शब्द करती मंगल गा रही है ।) मानो कृष्ण के पक्ष की पुष्टि कर रही है ।

यमुना सचमुच सवर्ण पर प्रसन्न होती है, जैसों तैसों पर नहीं ।  
 फलरूप उसका जल दो विभागों में बंट गया ।

मानो धरा रूपी नारी ने काजर लगाया ।

क्या हम समझें कि अपने प्रियतम पर अनुरक्त हो कर उसने अपना निम्नप्रदेश प्रकट किया ?

मधुमंथन को देखकर नदी यमुना भी मदनव्याकुल हो उठी ।

### वर्षावर्णन-गोवर्धनोद्धरण<sup>५</sup>

कालें जते छज्जइ पत्तउ आसाढागमि वासारत्तउ ।  
 घत्ता : हरियउ पीयलउ दीसइ जणेण तं सुरधणु ।  
 उवरि पओहरंहं णं गहलच्छिहि उप्परियणु ॥  
 दुवई : दिट्ठउ इंदचाउ पुणु पुणु अइ पंथिपहिययभयहो ।  
 धणवारणपवेसि णं मंगलतोरणु गहणिकेयहो ॥

जलु गलइ	झलझलइ ।	दरि भरइ	सरि सरइ ।
तडयउइ	तडि पडइ ।	गिरि फुडइ	सिहि णडइ ।
मरु चलइ	तरु धुलइ ।	जलु थलु वि	गोउलु वि ।
णिरु रसिउ	भयतसिउ ।	थरहरइ	किर मरइ ।
जा ताव	थिरभाव ।	धीरेण	वीरेण ।
सरलच्छि	जयलच्छि ।	तण्हेण	कण्हेण ।
सुरथुइण	भुयजुइण ।	वित्थरिउ	उद्धरिउ ।
महिहरउ	दिहियरउ ।	तमजडिउं	पायडिउं ।
महिविवरु	फणियरु ।	फुप्फुवइ	विसु मुयइ ।
परिथुलइ	चलवलइ ।	तरुणाइ	हरिणाइ ।
तट्ठाइ	णट्ठाइ ।	कायरइ	वणयरइ ।
पडियाइ	रडियाइ ।	घित्ताइ	चत्ताइ ।
हिंसाल	चंडाल ।	चंडाइ	कंडाइ ।
तावसइ	परवसइ ।	दरियाइ	जरियाइ ।

५. भारतीय भाषाओं में कृष्णकाव्य, प्र० खंड—डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १६७,  
 महापुराण ८६-१५-१० से १६-१ से ३२.



घत्ता : गोवद्धणयरेण गोयोभिणिभारु व जोइउ ।

गिरि गोवद्धणउ गोवद्धणेण उच्चाइउ ॥<sup>६</sup>

(महापुराण, ८६-१५-१० से १२, १६, १ से ३२)

“कुछ समय के पश्चात् आपाढ मास में वरसात आ कर शोभा दे रही थी। लोग हरित और पीत वर्ण का सुरधनु देखने लगे, मानो वह नभ-लक्ष्मी के पयोधर पर रखा हुआ उत्तरीय हो। पथिकों का हृदय-विदारक इस इंद्रचाप कों वे बार-बार देखने लगे। मानो वह घनहस्ती के प्रवेश के अवसर पर गगनगृह पर लगाया गया मंगलतोरण हो। जल झलझल नाद से गिर रहा है। सरिता बहती हुई खोह को भर देती है। तडतडा कर तडित पडती है जिससे पहाड़ फूटता है, मयूर नाच रहा है, तरुओं को घुमाता पवन चल रहा है। गोकुल के सभी जलस्थल भयग्रस्त होकर थरथराते हुए चीखने लगे हैं। उनको मरणभय से ग्रस्त देखकर सरलाक्षा जयलक्ष्मी के लिये सतृष्ण धीरवीर कृष्ण ने सुरप्रशस्त भुजयुगल से विशाल गोवर्धन पर्वत उठाया और लोगों को धृति बंधाई। गोवर्धन को उखाड़ देने से अंधकार से भरा हुआ पाताल विवर प्रकट हुआ। जिसमें फणींद्रों के समूह फुंकारते थे, विष उगलते थे, सलसलाते और घुमराते थे। त्रस्त होकर हिरन के शिशु भागने लगे। कातर वनचर गिरकर चिल्लाने लगे। हिंसक चाण्डालों ने चंड शर फेंक दिये। परवशतावश लोग भय से भयभीत हो उठे। गोओं का वर्धन करने वाले गोवर्धन ने राज्यलक्ष्मी का भार जैसा गिरि गोवर्धन उठाया।”

महाकवि पुष्पदंत को अपभ्रंश का सर्वश्रेष्ठ कवि होने का गौरव प्राप्त है। उनकी रचनाओं में जो ओज, प्रवाह, रस और सौन्दर्य है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है और उनका शब्द भण्डार विशाल है। शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों से उनकी कविता समृद्ध है।<sup>७</sup>

पुष्पदंत की अन्य प्रमुख रचनाएं हैं—

णायकुमार चरिउ—नागकुमारचरित्र

जसहर चरिउ—यशोधर चरित्र

कोष—यह देशी भाषा का कोषग्रंथ है।

६. भारतीय भाषाओं में कृष्णकाव्य, प्र० खंड—डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १६८

महापुराण १६-१ से ३२ ।

७. जैन साहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी, पृ० १२५

## (३) नेमिनाहचरित : हरिभद्र

हरिभद्रसूरि द्वारा रचित “नेमिनाहचरित” रड्डा छंद में रचित तीन हजार छंदों का महाकाव्य है। इसके २२-२७ वें छंद से करीब-करीब १०० छंदों से आगे तक कृष्ण जन्म से कंस-वध तक की कथा आयी है। इसका रचना काल सन् ११६० है। हरिभद्र पुष्पदंत की परंपरा में आने वाला कवि है, विशेषतः कृष्ण की हत्या के लिए कंस द्वारा भेजे गए वृषभ, खर, तुरग, और मेष के चिन्ह दृढ़ रेखाओं से रेखांकित हैं। मल्लयुद्ध के प्रसंग में कवि की कवित्वशक्ति का परिचय मिल जाता है। यह कृति अप्रकाशित है। इसलिए इसमें से हमने उदाहरण नहीं लिए हैं।<sup>८</sup>

## (४) हरिवंश पुराण : कवि धवल

जैन कृष्ण काव्य की दृष्टि से धवलकृत हरिवंशपुराण का भी महत्वपूर्ण स्थान है।<sup>९</sup> जैन परंपरानुसार ही श्रीकृष्ण-कथा का वर्णन किया गया है और आचार्य जिनसेनकृत हरिवंशपुराण के अनुसरण में कथानक को रूपायित किया गया है। १२२ संधियों का यह एक पर्याप्त विशाल ग्रंथ है। इस रचना का काल ११ वीं शताब्दी के बाद का माना जाता है; क्यों कि अभी तक इसका रचना समय निश्चित नहीं हो पाया है। इस ग्रंथ की भाषा में हम पुरानी हिंदी के संकेत पाते हैं। धवलकृत हरिवंश की ५३, ५४, ५५ संधियों में कृष्ण जन्म से कंस वध तक की कथा आयी है। कथा के निरूपण और वर्णनों में रूढ़ि का अनुसरण होते हुए भी कवि ने मौलिकता प्रकट की है। यहां पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं, जैसे—

५३-१७ में नैमित्तिक बालकृष्ण के गुण-लक्षण वर्णित हैं<sup>१०</sup>—

कासु विखबरी उपपरी नेत्ती, कासु वि लोई लक्खारची ।

कासु वि सिसैंलिज थराली कासु विचुणी फुल्लडियाली ।

८. भारतीय भाषाओं में कृष्णकाव्य खंड १, संपादक डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १६६

९. धवल के हरिवंश की हस्तलिखित प्रति जयपुर के दिगंबर अतिशयक्षत्र श्री० महावीर जी शोध संस्थान के संग्रह में विद्यमान है। प्रति के पाठ में कई अशुद्धियां हैं।

१०. शोधपत्रिका, वर्ष २६, अंक २, १९७८, सं० डा० देवीलाल पालीवाल व डा० देव कोठारी, साहित्य संस्थान, उदयपुर, पृ० ३३

कासु वि तुंगु मउड सुविसुट्ठउ, ओढणु वाडुकहमि भंजिट्ठउ ।

सव्वहं सीखेरत्तेबद्धा, रीरीं घडियकडाकडिमुद्धा ॥

अर्थात् किसी के कंधे पर नेत्ती (नेत्रवस्त्र की साडी) थी तो किसी की “लोई” (कमली) लाख जैसी रक्तवर्ण थी, किसी के सिर पर धारदार लिजे (नीज) थी तो किसी की चुन्नी फूलवाली थी । किसी का मोर ऊंचा और दर्शनीय था तो किसी की ओढनी और बोड मजीठी रंग का था । सभी के सिर पर लाल (वस्त्रखंड) बंधा हुआ था और वे पीतल के कड़े, कड़ियां और मुद्रिका पहने हुयी थीं ।

### (५) पज्जुण चरिउ (प्रद्युम्न चरित्र)

यह एक खंड काव्य है जिसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कुमार का चरित वर्णित है । विक्रम की १३वीं शताब्दी में इसकी रचना का अनुमान लगाया जाता है । पज्जुणचरिउ के रचनाकार का नाम “सिंह” मिलता है, किंतु कुछ विद्वानों के मतानुसार यह नाम “सिद्ध” है । इस खंडकाव्य में १५ संधियां हैं । आरम्भ की आठ संधियों में कवि का नाम सिद्ध और शेष में सिंह व्यवहृत हुआ है । यह संभावना भी व्यक्त की जाती है कि कदाचित् सिंह नामक कवि ने बाद में कभी इस रचना का उद्धार किया हो । जो कुछ भी रहा हो, कवि नाम के विवाद के परे पज्जुणचरिउ एक सुंदर खंडकाव्य ठहरता है इतनी बात सत्य है ।

### (६) नेमिणायचरिउ : लखम देव

यह लक्ष्मणदेव कृत नेमिनाथचरित भी एक खंडकाव्य है । २२ वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का जीवन चरित्र इस काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य विषय रहा है । इसमें प्रासंगिक रूप में श्रीकृष्ण कथा के कतिपय प्रमुख अंश स्वतः ही सम्मिलित हो गए हैं । अंतःसाक्ष्य के अभाव में ग्रंथ के किसी निश्चित रचनाकाल का पता नहीं चलता । इस खंडकाव्य की एक ऐसी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है जिसका लेखन वि० सं० १५१० में हुआ है । इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह रचना १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की हो सकती है । इस प्रबंध रचना (खंडकाव्य) में ४ संधियां और ८३ कडवक हैं ।

(७) नेमिणाहचरित (रिट्ठणेमिचरित अथवा हरिवंश पुराण)<sup>11</sup>

रड्धु की यह अपभ्रंश भाषा में रचित रचना है। इसके कवि अपने समय के प्रकाण्ड पंडित और प्रभावशाली कवि थे। डा० राजाराम जैन ने अपने शोधप्रबंध में इनके द्वारा रचित अन्य अनेक कृतियों का उल्लेख किया है। कवि का अपर नाम सिंहसेन था। इनके पिता का नाम साहू हरिसिंह, माता का नाम विजयश्री, पत्नी का नाम सावित्री और पुत्र का नाम उदयरज था। इनका समय १४ वीं या १६ वीं शताब्दी विक्रम का है। इनका अधिकांश जीवन ग्वालियर के आसपास के क्षेत्र में व्यतीत हुआ। काष्ठासंघ माथुर गच्छ पुष्करणीय शाखा जो दिगंबर जैन आचार्यों का एक संघ था, इससे वे संबद्ध थे। इन्होंने अनेक जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठापना की थी इसलिए इनको प्रतिष्ठाचार्य भी कहा जाता है।

रड्धू लिखित नेमिणाहचरित की एक हस्तलिखित प्रति जैन सिद्धांत भवन, आरा में पायी गयी है। इसकी प्रतिलिपि संवत् विक्रम १९८७ की है, यह परंपरागत पौराणिक शैली का जैन काव्य है और इसका आधार जिनसेन कृत संस्कृत हरिवंश पुराण है। कवि ने १४ संधियों और ३०२ कडवकों में इसका वर्णन किया है। इसमें हरिवंश का आरंभ यादवों की उत्पत्ति, वसुदेव का चरित, कृष्णचरित, नेमिनाथ चरित, प्रद्युम्न चरित और पाण्डव चरित्र का वर्णन है।

काव्यतत्त्व की दृष्टि से यह सुन्दर तथा सरस कृति है। शृंगार, वीर, रौद्र और शांतरसों का इसमें उत्तम रूप से वर्णन किया गया है। अलंकारों की दृष्टि से भी उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, भ्रांतिमान, अर्थान्तरन्यास, काव्य-लिंग, व्यतिरेक, संदेह आदि के उदाहरण कृति में उपलब्ध हैं। कवि ने परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा में यह रचना की है। इसका प्रस्तुति कृति में कोई उदाहरण नहीं दिया गया है। अधिक जानकारी के लिये डा० हरिवंश कोछड की पुस्तक अपभ्रंश साहित्य दृष्टव्य है।<sup>12</sup>

## (८) पाण्डवपुराण व हरिवंशपुराण : यशःकीर्ति

यशःकीर्ति १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के कवि हैं। जैन श्रीकृष्ण

११. रड्धु साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, ले० डा० राजाराम जैन पृ० १८ मे २०७

१२. अपभ्रंश साहित्य : डा० हरिवंश कोछड

साहित्य की परंपरामें उनकी दो रचनाएं महत्त्व के साथ गिनी जाती हैं—  
पाण्डव पुराण एवं हरिवंश पुराण ।

पाण्डव पुराण का रचना कार्य वि०सं० १४६७ में (ई० सन् १४४०) कार्तिक शुक्लाष्टमी बुधवार को संपन्न हुआ । इसमें ३४ संधियां आई हैं । हरिवंश पुराण की रचना वि०सं० १५०० में समाप्त हुई याने (ई० सन् १४४३) । इस रचना में १३ संधियां और २६७ कडवक हैं । काव्यात्मकता की दृष्टि से हरिवंश पुराण एक उत्तम रचना मानी जाती है । डा० हरिवंश कोछड भी इस मान्यता का अनुमोदन करते हैं ।<sup>१३</sup> हरिवंश के पुराण-पुरुष अर्हत अरिष्टनेमि तथा वासुदेव कृष्ण का परंपरागत चरित वर्णन हुआ है । इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति दिगंबर जैन मंदिर बड़ा तेरापंधियान का जयपुर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध है । हरिवंश पुराण की रचना कवि ने योगिनीपुर में अग्रवाल वंशीय गर्ग गोत्रोत्पन्न दिउठा साहू की प्रेरणा से की थी ।<sup>१४</sup>

प्रस्तुत काव्य की रचना शैली इतिवृत्तात्मक है ।

### (६) हरिवंश पुराण : श्रुतिकीर्ति

श्रुतिकीर्ति १६ वीं शताब्दी (विक्रम) के कवि माने जाते हैं । इनकी कृति हरिवंश पुराण को डा० कोछड द्वारा महाकाव्य के रूप में मान्यता दी गई है ।<sup>१५</sup> आमेर (जयपुर) के शास्त्र भण्डार में इस ग्रंथ की प्रति उपलब्ध है । हरिवंश पुराण में ४४ संधियां हैं । श्रुतिकीर्ति की एक अन्य रचना “परमेष्ठिप्रकाश” भी अभी हाल ही में प्रकाश में आयी है ।

अपभ्रंश में रचित साहित्य के विपुल भण्डार में जैन साहित्य का तो महत्त्वपूर्ण स्थान है ही किंतु जो ज्ञात अंश है वह कृष्ण कथा से संबद्ध है । इधर अनेक नव-नवीन अपभ्रंश रचनाओं की जो खोज होती चली आ रही है, इससे आशा बनती है कि भविष्य में अपभ्रंश जैन कृष्ण साहित्य की सूची में और भी अभिवृद्धि होगी ।

१३. अपभ्रंश साहित्य : डा० हरिवंश कोछड, प० १२०-१२२

१४. वही, पृ० १२७

१५. वही, पृ० १२६

अपभ्रंश साहित्य में कृष्ण काव्य की झलक और निरूपण विशेष रूप से बाल-चरित्र को लेकर ही हुआ है। इसकी बलिष्ठ परंपरा जैन कृष्णकाव्य कृतिकारों के द्वारा निर्मित हुयी है। वर्णनशैली और भाव-लेखन की गुण-वत्ता का स्तर ऊंचा है। जैन कृष्ण काव्य के कवियों में पुष्पदंत और स्वयंभू निःसंदेह उस गौरवयुक्त स्थान के अधिकारी हैं जिस स्थान के अधिकारी ब्रजभाषा के महान कृष्णकवि सूरदास हैं। सूरदास को यह स्थान दिलाने में जैन अपभ्रंश कृष्ण साहित्य का निर्माण करने वाले कवियों को इसका श्रेय देना होगा। संस्कृत-प्राकृत का कृष्णकाव्य भारतीय साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है तो भाषा साहित्य के कृष्णकाव्य के बीच की एक शृंखला के रूप में अपभ्रंश का जैन कृष्ण काव्य महत्वपूर्ण कार्य करता है। इसका अपना निजी वैशिष्ट्य है और महत्ता भी।

जैन कृष्ण कथा नियम से ही एकाधिक कथाओं के साथ संलग्न हुआ करती थी। अल्पाधिक मात्रा में, ३, ४ विभिन्न कथाओं का गुंफन हुआ करता था। एक कथा कृष्ण के पिता वसुदेव के परिभ्रमण की है तो दूसरी २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के चरित्र की और तीसरी कथा पाण्डवों के चरित्र की। इनके अतिरिक्त मुख्य मुख्य पात्रों के भवांतरों की कथाएं भी दी गयी हैं। वसुदेव हिण्डी के नाम से जैन परंपरा की कथा में वसुदेव ने एक सौ वर्ष तक विविध देशों का परिभ्रमण किया और अनेकानेक मानव कन्याओं और विद्याधर कन्याओं से भी विवाह किया। कृष्णकथा के प्रारंभ में वसुदेव का वंश वर्णन और उसका चित्रण आया है। यहीं पर वसुदेव के परिभ्रमण की अनेक कथाओं का वर्णन भी आया है।

अरिष्टनेमि कृष्ण (वासुदेव) के चचेरे भाई थे। फलतः अनेक बार कृष्ण चरित्र नेमिचरित्र के साथ आया है। इसके अलावा पाण्डव और कौरवों का कृष्ण के साथ निकट संबंध होने से कृष्ण के उत्तर चरित्र में महा-भारत की कथा भी जुड़ जाती है। इस कृति का नाम जैन महाभारत भी कहीं कहीं प्रचलित है। तात्पर्य यह है कि कृष्ण चरित्र विषयक जिस अंश को प्रधानता दी गयी है उसके अनुसार उसके नाम को अरिष्टनेमिचरित्र, नेमि-पुराण, हरिवंश पुराण, पांडव पुराण और जैन महाभारत की संज्ञा भी दी गई है। वैसे यह कोई नियम नहीं है, न कोई एकवाक्यता; क्योंकि कहीं-कहीं विशिष्ट अंश को समान प्राधान्य देनेवाली कृतियों के नाम भी भिन्न-भिन्न रूप से मिलते हैं। जैन पुराण कथाओं का स्वरूप एक ओर अपभ्रंश में मिलता है, तो दूसरी ओर संस्कृत प्राकृत में मिलता है। यहां

यह विवेचन इसलिए दिया गया है कि अपभ्रंश कृष्णकाव्य का अध्ययन प्रस्तुत करने के पहले जैन परंपरा से मान्य कृष्ण कथा की रूपरेखा जानी व समझी जा सके। इस रूपरेखा के दो आधार हैं—

**प्रथम :** यह कथा दिगम्बराचार्य जिनसेन के (सन् ७८४) संस्कृत हरिवंश पुराण के ३३, ३४, ३५, ३६, ४०, ४१ सर्गों पर आधारित है।

**द्वितीय :** श्वेताम्बराचार्य हेमचंद्र के सन् ११५६ के करीब रचित त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित्र का ८ वां पर्व है जिसमें सविस्तार श्रीकृष्ण चरित्र है। जैन कृष्ण चरित्र के स्पष्ट रूप से दो भाग किये जा सकते हैं। प्रथम में कृष्ण यादवों के द्वारावती प्रवेश तक का अंश आता है और शेष कृष्ण चरित्र का अंश दूसरे भाग में समाविष्ट हो जाता है।

कृष्ण जितने पूर्व भाग में केंद्रवर्ती हैं उतने उत्तर भाग में नहीं हैं।

इस अध्याय में मैंने अपने अध्ययन में कुछ कवियों की कृतियों से उदाहरण देकर अपने कथन को पुष्ट किया है और अन्य कवियों की कृतियों का और उनका निरूपण इसलिए कर दिया है; क्योंकि ये कृतियाँ अप्रकाशित और हस्तलिखित रूप में हैं। इनका मिलना इसलिए भी कठिन है; क्योंकि ये भिन्न-भिन्न स्थानीय जैन संग्रहालयों में हैं।

इसके बाद के अध्यायों में अब हिंदी जैन कृष्ण साहित्य का विवेचन—अनुशीलन प्रस्तुत किया जायगा। इन पाँच अध्यायों के बाद अब तक किये गये अध्ययन के आधार पर जैन कृष्ण कथा को षष्ठ अध्याय में विवेचित किया जाएगा। इसके संदर्भ भी उसके साथ में दे दिये हैं।



## ६

### प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत तथा अन्य (हिंदी) पर आधारित जैन श्रीकृष्ण कथा का विवेचन

अब तक प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत में जैन श्रीकृष्ण साहित्य का अनुशीलन किया गया। यहाँ पर इन सब पर आधारित जैन साहित्य की श्रीकृष्ण कथा की संक्षिप्त विवेचन करने का उद्योग किया गया है।

#### वासुदेव श्रीकृष्ण

जैन एवं वैदिक दोनों ही परंपराओं में श्रीकृष्ण को वासुदेव कहा गया है, किंतु दोनों परंपराओं में इस शब्द के प्रयोग में उल्लेखनीय अंतर है। वैदिक परंपरा में तो वसुदेव के पुत्र होने के नाते “वासुदेव” श्रीकृष्ण का नाम अमर हो गया है, किंतु जैन परंपरा में वासुदेव किसी व्यक्ति विशेष का नाम न होकर विशिष्ट गुणयुक्त महापुरुषों की एक श्रेणी में वासुदेव भी एक हैं। प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में ऐसे ६ वासुदेव होते रहे हैं। श्रीकृष्ण वर्तमान अवसर्पिणी काल के ऐसे ६ वासुदेवों में से एक हैं। ऐसे प्रत्येक आरक में इस प्रकार ६३ महापुरुषों का आविर्भाव होता है। वे “शलाकापुरुष” कहलाते हैं। इनमें से २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव, ६ वासुदेव और ६ प्रतिवासुदेव होते हैं।

वर्तमान अवसर्पिणी काल में आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव एवं अंतिम—२४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी हुए हैं। २२ वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के समकालीन वासुदेव ही श्रीकृष्ण थे। ये अपनी वासुदेव परंपरा के ६ वें, अर्थात् अंतिम वासुदेव थे।

#### कंस परिचय

वासुदेव ने अनेक विवाह किये थे। देवकी के साथ उनका अंतिम विवाह था। वसुदेव-देवकी ही श्रीकृष्ण के जनक-जननी थे। वसुदेव-देवकी



के परिणय में कंस की अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका रही। त्रिषष्टिशलाका<sup>१</sup> आदि ग्रंथों में वसुदेव के साथ कंस की घनिष्टता एवं अनुराग वर्णित हुआ है।

कंस का यह नाम क्यों रहा ? इसके पीछे भी एक कथा है। भोज वृष्णी के आत्मज उग्रसेन मथुराधिप थे और धारिणी उनकी महाराणी थी। कंस इसी राज-दम्पति का पुत्र था। कंस जब गर्भ में था, रानी धारिणी को एक अद्भुत दोहद (इच्छा) होने लगी कि वह अपने स्वामी उग्रसेन का मांस भक्षण करे।<sup>२</sup> इस अमंगल कामना की पूर्ति एक विकट समस्या बन गयी। एक अंधेरे कमरे में राजा को ले जाया गया और एक खरगोश का वध कर दिया गया। योजनानुसार उग्रसेन जोर-जोर से कराहते रहे जिसे धारिणी ने सुना<sup>३</sup> और अपने पति का मांस समझ कर उसने खरगोश के मांस का भक्षण किया। कालांतर में वह सोचने लगी कि जो संतान गर्भावस्था में ही पिता के लिये ऐसा कष्टकारी है तो वह जन्म लेकर और बड़ा हो जाने पर पिता के लिये कितना घातक सिद्ध हो सकता है ? भावी अनिष्ट की कल्पना-मात्र से वह आकुल रहने लगी और पुत्र उत्पन्न होने पर उसने उसे कांस्यपेटिका में बंद कर यमुना में प्रवाहित कर दिया। माता और पिता के नाम अंकित कर दो मुद्रिकाएं उस पेटिका में रख दीं। एक धनिक सुभद्र के हाथ यह पेटिका लगी और वह स्नेहपूर्वक बालक का लालन-पालन करने लगा। कांस्य पेटिका से प्राप्त होने के कारण बालक का नाम रखा गया—कंस।

वयस्क होने पर कंस वसुदेव के आश्रय में अनुचर के रूप में रहने लगा, उन्होंने उसे युद्धादि समस्त कलाओं की शिक्षा दी।<sup>४</sup> तदनंतर एक घटनाक्रम ने उसे मथुरा नरेश बना दिया। इस काल का प्रतिवासुदेव जरासंध राजगृही का अधिपति था। यह अति बलवान और पराक्रमी था और अनेक नृपति उनके वर्चस्वाधीन थे। जरासंध ने वसुदेव के भ्राता

१. वर्तमान अवसर्पिणी काल के १४ महापुरुषों के साथ ६ प्रतिवासुदेवों को मिलाकर ६३ विशिष्ट व्यक्तियों का चित्रण इस ग्रंथ में किया गया है।

२. त्रिषष्टि शलाका : ६।२।९

३. त्रिषष्टि : ८।२।६२

४. त्रिषष्टि : ८।२।७०

सोरियपुर-नरेश समुद्रविजय को आदेश दिया कि वह विद्रोही सिंह राजा को पकड़कर उसके समक्ष उपस्थित करे। उसने यह घोषणा भी की कि सिंह राजा को पकड़ने वाले के साथ वह अपनी पुत्री जीवयशा का विवाह भी कर देगा और उसे पुरस्कार में राज्य भी दिया जायगा।<sup>5</sup> कुमार वसुदेव की इच्छा स्वीकारते हुए राजा समुद्रविजय ने उन्हें इस अभियान पर जाने की अनुमति तो प्रदान कर ही दी, किंतु साथ ही उन्हें चपके से इस रहस्य से अवगत भी करा दिया कि जीवयशा कनिष्ठ लक्षणों की है। वह अपने पिता तथा पुत्र—दोनों के लिये अमंगलकारिणी बनेगी, दोनों कुलों के लिए कलंक का कारण बनेगी।<sup>6</sup> भ्राता ने निर्देश दिया कि जीवयशा से वसुदेव स्वयं विवाह न कर कंस के साथ उसका विवाह करवा दे।

कंस के वंश की खोज की जाने लगी और मुद्रिकाओं के द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि वह मथुरा का राजकुमार है। परिणामतः वह जरासंध की घोषणा का लाभ उठाने के योग्य भी समझा जाने लगा। अपने अभियान में सफल होकर वसुदेव जब जरासंध के समक्ष पहुंचे तो जरासंध ने पूछा कि सिंह राजा को बंदी बनाने वाला वीर कौन है?<sup>7</sup> अपनी योजना-नुसार वसुदेव ने कंस का परिचय प्रस्तुत कर दिया। जीवयशा के साथ कंस का विवाह संपन्न हो गया। वसुदेव सुरक्षित हो गये और कंस उनका कृतज्ञ हो गया। अपने जन्म और उसके पश्चात् के समस्त वृत्तांत से अवगत होकर कंस अपने पिता उग्रसेन के प्रति रोष से भर गया और जरासंध की सेना सहित वह मथुरा आया।<sup>8</sup> उसने पिता उग्रसेन को बंदी बना लिया और स्वयं मथुरा का राजा बन बैठा।<sup>9</sup> पिता की यह दुर्गति देख कर कंस के अनुज अतिमुक्त के मन में विरक्ति उत्पन्न हो गयी और उसने दीक्षा ग्रहण कर ली।<sup>10</sup>

### वसुदेव-देवकी परिणय

कंस अपनी गौरवपूर्ण स्थिति के लिए वसुदेव का आभारी था।

५. त्रिषष्टि : ८।२।८२-८४

६. विशिष्ट निमित्तज्ञ क्रोष्टुकी से यह ज्ञात हुआ था।

७. त्रिषष्टि : ८।४।६५-६६

८. त्रिषष्टि : ८।२।८५-८४

९. त्रिषष्टि : ८।२।८५-८६

१०. त्रिषष्टि : ८।२।१०८

उसने अत्यन्त आदर भाव के साथ वसुदेव को अपने यहाँ आमंत्रित किया और उन्होंने यह अनुरोध स्वीकार कर लिया।<sup>११</sup> कंस के चाचा देवक मृतकावती-नरेश थे जिनकी राजकुमारी देवकी थी। अनुरागानुकुलता सहित कंस ने वसुदेव से रूप-गुणशीला नृपकन्या देवकी के साथ विवाह का अनुरोध किया। इस सानुनय आग्रह को वसुदेव भी अस्वीकार नहीं कर सके। प्रसन्न मन कंस ने वसुदेव के साथ मृतकावती के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में नारद ने वसुदेव को देवकी से विवाहार्थ प्रेरित करते हुए कहा कि वह तुम्हारी समस्त पत्नियों से श्रेष्ठ है। सर्वत्रविहारी नारद जी ने वसुदेव से पूर्व मृतकावती पहुँच कर नृपकन्या के समक्ष वसुदेव के गुण, रूप, शौर्य, शक्ति, शील आदि का ऐसा वर्णन किया कि देवकी मुग्ध हो गयी। उसने वसुदेव को पति-रूप में वरण करने का मन ही मन संकल्प कर लिया।

राजा देवक ने वसुदेव-कंस का भव्य स्वागत किया। वह बड़ा प्रसन्न था, किन्तु सहसा विवाह प्रस्ताव सुनकर वह अस्तव्यस्त हो गया। ना या हाँ करते हुये भी वह तत्काल स्वीकृति नहीं दे पाया। पर, राज-कुमारी का प्रबल झुकाव देखकर अन्ततः उसे प्रस्ताव स्वीकार करना ही पड़ा। अत्यन्त भव्यता के साथ विवाह संपन्न भी हो गया। देवकी ने पाणिग्रहण के समय अतुल संपत्ति के साथ दस गोकुल के अधिपति नंद को भी वसुदेव को समर्पित किया।<sup>१२</sup>

**अतिमुक्त मुनि द्वारा भावी संकेत**

मथुरा आगमन पर कंस ने वसुदेव-देवकी के सम्मान में भव्य समारोह आयोजित किया।<sup>१३</sup> कंस-वधू जीवयशा ने महोत्सव में अत्यधिक रुचि दिखायी। मदिरापान से वह उन्मत्त थी, तभी उसकी दृष्टि अतिमुक्त मुनि पर पड़ गयी जो पारणे के प्रयोजन से मथुरा के राजभवन में पहुँचे थे। यहां जीवयशा के मर्यादाहीन व्यवहार को देख कर वे उलटे पाँव लौट पड़े। जीवयशा ने उन्हें पुकार कर कहा—अरे देवर ! तुम ठीक ही समय पर आये हो। अच्छा हो तुम मेरे साथ नृत्य करो, गान करो।<sup>१४</sup> मुनि उपेक्षा करते रहे, किन्तु अत्यन्त प्रताडित किये जाने पर उन्होंने रोषपूर्वक अमंगल

११. त्रिषष्टि : ८।५।४३,

१२. त्रिषष्टि : ८।५।६९

१३. त्रिषष्टि : ८।५।७०

१४. त्रिषष्टि : ८।५।७१

भवितव्य का संकेत किया और कहा—हे जीवयशा जिस (देवकी) के निमित्त यह समारोह मनाया जा रहा है, उसी का सातवां गर्भ तेरे पति और पिता का वध करेगा ।<sup>15</sup> “उत्तर पुराण” के अनुसार यह प्रसंग अन्यथा रूप में भी ग्रहण किया जाता है ।<sup>16</sup>

गंभीर मुनि-वाणी से जीवयशा का नशा उतर गया और उसने मुनि का पीछा छोड़ दिया । मुनिवाणी सदा सत्य होती है—इस मान्यतावश जीवयशा भावी अनिष्ट से आतंकित एवं विचलित हो गयी और उसने कंस को तत्काल इससे अवगत कराया । आत्मरक्षार्थ सतर्क कंस अपने प्रति वसुदेव की प्रसन्नता एवं विश्वस्तता का लाभ उठाना चाहा । उसने नाटकीय विनम्रता के साथ वसुदेव से निवेदन किया कि आपके मुझ पर बड़े उपकार हैं । अब कृपापूर्वक एक वचन और दीजिये कि आप देवकी के सात गर्भ जन्मते ही मुझे दे दें ।<sup>17</sup> “उत्तरपुराण” में यह कथानक कुछ भिन्नता के साथ आया है ।<sup>18</sup> मुनि की भविष्यवाणी से अनभिज्ञ और देवकी के साथ अपने परिणय प्रसंग के कारण कंस से प्रसन्न वसुदेव ने यह वचन दे दिया ।<sup>19</sup> वैदिक परंपरा में यह प्रसंग अन्यथा रूप में मान्य है । तथापि दोनों ही परंपराओं में यह साम्य अवश्य है कि कंस ने इसके पश्चात् वसुदेव-देवकी को स्वतंत्र नहीं रखा ।

१५. त्रिषष्टि : ६।१।७४

१६. उत्तरपुराणानुसार अतिमुक्त की तीन भविष्यवाणियां थी । १. देवकी का पुत्र अवश्य ही तेरे पुत्र को मारेगा । २. तेरे पति को ही नहीं तेरे पिता को भी मारेगा । ३. देवकी का पुत्र समुद्रपयन्त पृथ्वी का पालन करेगा ।

उत्तरपुराण श्लोक ३७३-३७५

१७. त्रिषष्टि : ८।५।७४

त्रिषष्टि : ८।५।७७-८३

१८. उत्तरपुराण में उल्लेख है कि किसी अन्य दिन अतिमुक्त मुनि आहारार्थ देवकी के घर गये और देवकी ने प्रश्न किया कि हम दोनों दीक्षा ग्रहण करेंगे या नहीं ? इस पर मुनि ने कहा कि तुम लोग इस प्रकार बहाने से क्यों पूछते हो । तुम्हारे ७ पुत्र होंगे । अंततः समय ग्रहण करके मुक्त हो जायेंगे । सातवां पुत्र अर्द्धचक्री होगा और पृथ्वी का चिरकाल तक पालन करेगा ।

१९. त्रिषष्टि : ६।५।८४-८६

वैदिक परंपरानुसार देवकी-वसुदेव मथुरा से विदा होकर घर जा रहे थे, स्वयं कंस उनका रथ वाहक था। देवक ने ४०० हाथी, १५ हजार घोड़े, १८ सौ रथ व २०० दासियां दहेज में दी थीं।<sup>२०</sup> मार्ग में कंस को आकाशवाणी सुनायी दी कि जिसे तू रथ में बिठाकर ले जा रहा है उसी देवकी का आठवां बालक तुझे मारेगा।<sup>२१</sup> और वह तत्काल देवकी-वध करने को उद्धत हो उठा। उसने देवकी के केश पकड़ लिये।<sup>२२</sup> इस पर वसुदेव ने कंस को समझाया<sup>२३</sup> कि देवकी का वध उचित नहीं है। इससे तो कोई भय तुम्हें है ही नहीं। इस के पुत्र से ही भय है, तो मैं इसके सभी पुत्र तुम्हें सौंप दूंगा।<sup>२४</sup> इस प्रकार कंस को आश्चस्त कर आसन्न अनर्थ को वसुदेव ने घटित न होने दिया।<sup>२५</sup>

### वासुदेव श्रीकृष्ण जन्म

कंस ने अपनी मृत्यु के भय से देवकी-वसुदेव को कारागृह में डाल रखा था। जहाँ देवकी ने ६ पुत्रों को जन्म दिया और वे सभी वचनानुसार कंस को दे दिये गये। कंस ऐसा मान रहा था कि ये देवकी के पुत्र हैं, अन्य-जन भी ऐसा ही मान रहे थे, किंतु यथार्थ इससे भिन्न था—

भद्रिदलपुर में नाग सेठ की पत्नी सुलसा को मृत शिशु उत्पन्न हुआ करते थे।<sup>२६</sup> उसने हरिणगमेषी देव की उपासना की। वह प्रसन्न हो गया। संयोगवशात् देवकी और सुलसा को एक ही समय प्रसव होता था और देव सुलसा के मृत पुत्र को देवकी के पास और देवकी के जीवित पुत्र को सुलसा के पास रख देता था। प्रसन्नमना सुलसा इसे देव का आशीर्वाद मानती थी। शिशुओं का विनिमय ऐसी छद्म रीति से होता था कि देवकी, सुलसा आदि किसी को भी इसका बोध न हो पाता।

इस प्रकार देवकी के ६ पुत्र सुलसा के घर में पोषित होने लगे। उधर तथाकथित देवकी पुत्रों (सुलसा के मृत पुत्रों) का कंस अंतिम संस्कार करा देता था। देवकी के अपने पुत्रों के नाम थे—१ अनीकयश, २

२०. श्रीमद्भागवत : १०।१।३१-३२

२१. श्रीमद्भागवत : १०।१।३४

२२. वही १०।१।३५

२३. वही १०।१।३६

२४. वही १०।१।५४

२५. १०।१।५५

२६. त्रिषष्टि : ८।५।८१

अनंतसेन, ३ अजितसेन, ४ निहतारि, ५ देवयश और ६ शत्रुसेन<sup>२७</sup>। श्रीकृष्ण वसुदेव-देवकी के सातवें पुत्र थे।<sup>२८</sup> वे श्लाघनीय पुरुषों की श्रेणी में थे।<sup>२९</sup> स्वर्ग से च्युत होकर मुनि गंगदत्त का जीव माता देवकी के गर्भ में स्थित हो गया और माता ने दिव्य स्वप्न देखे।<sup>३०</sup> जो महापुरुषोद्भव के पूर्व संकेत थे। भाद्र-मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी की अर्धरात्रि में देवकी ने मेघनील कांतिवाले सुंदर शिशु श्रीकृष्ण को जन्म दिया।<sup>३१</sup> श्रीकृष्ण के प्रभाव से उस समय प्रहरीजन निद्रामग्न हो गये।<sup>३२</sup> देवकी ने पति वसुदेव से कहा कि कंस ने मेरे ६ पुत्रों को मार डाला है।<sup>३३</sup> अब इस बालक की रक्षा करने गोकुल में नंद के घर छोड़ दें। वहीं यह बड़ा होगा।<sup>३४</sup> वसुदेव के सामने कंस को दिये गये वचन के पालन की समस्या थी। देवकी ने वसुदेव को प्रबोध देते हुए कहा कि छलपूर्वक लिया गया अनीति आधारित वचन-वचन ही नहीं रह जाता है। अनीतिकारी, अहितकारी वचन का पालन न करना अनीति नहीं है। वसुदेव सुदृढ़ हो गये और श्रीकृष्ण की रक्षा के लिये सन्नद्ध भी। नंद देवकी के साथ दहेज में आया हुआ उनका दास था। बालक को इसके यहाँ छोड़ना निश्चित किया। घोर अंधेरी रात,

२७. त्रिषष्टि : ८।१।६०-६७

२८. वैदिक परंपरानुसार श्रीकृष्ण देवकी के ८ वे पुत्र थे।

२९. वैदिक परंपरानुसार श्रीकृष्ण भगवान विष्णु के अवतार हैं।

३०. (क) त्रिषष्टि : ८।४।६८, (ख) वसुदेव हिण्डी अनु० पृ० ४८२

३१. त्रिषष्टि ८।५।१००

३२. देखें—“वसुदेव हिण्डी”

३३. (क) “वसुदेव हिण्डी” में (पृ० ३५८-६) मारने का स्पष्ट उल्लेख है।

(ख) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र में (पर्व ८, सर्ग ५, श्लोक ६०-६७) और (चउपन्न महापुरुष चरियं (पृ० १८३ श्लोक ४६-४७) व हरिवंश-पुराण (सर्ग ३५, श्लोक १-१५) के अनुसार हरिणगमेषी देव सुलसा के मृत पुत्रों को देवकी के पास रख आता है और कंस उन्हें पछाड़ देता है।

(ग) भागवत स्कंध १० अ० २ अर्थात् देवकी के जन्मे हुए बलभद्र के पहले के ६ सजीव बालकों को कंस पटक कर मार देता है।

३४. त्रिषष्टि : ८।५।१०२, १०४

मसलाधार वर्षा, प्रहरी निद्रामग्न और वसुदेव बालक को लेकर चले । देवताओं ने पुष्पवर्षा की, आठ दीपक प्रज्वलित कर दिये और कृष्ण वसुदेव पर छत्र तान दिया । वसुदेव कारागार के मुख्य द्वार पर पहुँचे । यहीं पर कंस के पिता उग्रसेन बंदी थे । उन्होंने पूछा इस समय बालक को कहाँ ले जा रहे हो ? वसुदेव ने कहा यह कंस का शत्रु है जो आपको भी कारामुक्त करेगा और शत्रु-निग्रह करेगा । इस बात को गोपनीय ही रखें ।<sup>३५</sup>

**श्रीकृष्ण : गोकुल में**

यमुना पार कर वसुदेव गोकुल में नंद के घर पहुँचे । उन्हें नवजात शिश के साथ देखकर नंद आश्चर्यचकित रह गया । नंद-वधू यशोदा ने उसी समय एक कन्या को जन्म दिया था । वसुदेव का प्रयोजन सुगम हो गया । कन्या के स्थान पर शिशु श्रीकृष्ण को रखकर नंद ने वसुदेव को अपनी कन्या सौंप दी । जिसे साथ लेकर वे मथुरा के कारागार में लौट आए और देवकी को उन्होंने यह कन्या दे दी ।<sup>३६</sup> इसी समय प्रहरीजन जाग गये । क्या हुआ...क्या हुआ ? पूछते हुए प्रहरियों ने पाया कि इस बार एक कन्या ने जन्म लिया है ।<sup>३७</sup>

भोर होने पर जब कंस को ज्ञात हुआ तो आश्वस्त हो वह कहने लगा मुनिवाणी असत्य सिद्ध हुई । देवकी की आठवीं संतान तो पुत्र नहीं पुत्री है । भला यह मेरी क्या हानि कर सकेगी ? कंस ने कन्या का वध नहीं किया<sup>३८</sup> । नासिका छेद कर उसे देवकी को लौटा दिया ।<sup>३९</sup> जैन

३५. (क) वसुदेवहिण्डी; (ख) त्रिषष्टि : ८।५।१०५-११०; (ग) भवभावना गाथा २।१६३-१६५ पृ० १४६ ।

३६. (ख) भवभावनागाथा—२।१६६-१७ ।

३७. (अ) त्रिषष्टि ८।५।११३-११४

३८. संघदासगणि और आचार्य हेमचन्द्र के क्रमशः वसुदेवहिण्डी तथा भवभावना में वर्णन है कि कंस ने कन्या की नाक चपटी कर दी । जिनसेनकृत हरिवंशपुराण में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है ।

(क) वसुदेवहिण्डी

(ख) भवभावना २।१६६

(ग) हरिवंशपुराण ३।३२। पृ० ४५२

३९. छिन्ननासां पुटां कृत्वा देवक्यास्ता समर्यपत्—त्रिषष्टि ८।५।११५.

साहित्य<sup>40</sup> में यह वृत्तान्त अन्य रूप में भी प्राप्त होता है। उत्तरपुराण में इस प्रकार वर्णित है—

(क) वैश्य कन्या का नाम (सुलसा के स्थान पर) अलका था। हरिणगमेषी देवकी पुत्रों का हरण इंद्र की प्रेरणा से करता है। (पृ० ३८४-८६)।

(ख) रोहिणी-पुत्र बलभद्र श्रीकृष्ण को अंक में ले जाते हैं। नंद छत्र तान कर साथ चलते हैं। बैल रूप नगरदेवता आगे चलते हैं जिसके सींगों की मणियां दीपक का काम करती हैं (पृ० ३६०-६२)।

(ग) नंद इन्हें मार्ग में मिल गया। उसने कहा कि मूलदेवता की आराधिका मेरी पत्नी ने यह कन्या आपको सौंपने को भेजी है। बलभद्र ने बालक नंद को दिया और कन्या के साथ लौट आये (पृ० ३६६-४००)।

(घ) नासिकाच्छेद कर कंस ने धाय द्वारा तलघर में कन्या को पोषित करवाया जो आयु पाकर सुव्रता आर्या के पास दीक्षा ग्रहण करती है और विध्याचल में तपस्या करती है। कालांतर में वह बाघ का शिकार होकर स्वर्गलाभ करती है। गिरीजन उसे विध्यवासिनी देवी रूप में पूजने लगते हैं (पृ० ४०७-४११)।

वैदिक संदर्भ इससे सर्वथा भिन्न प्रकार का है।<sup>41</sup>

### गोपूजन प्रारंभ

अतुलित शोभाधारी श्रीकृष्ण नंदगृह में बड़े होने लगे। मथुरा में माता देवकी का ममता भरा मन पुत्र-मुख-दर्शन हेतु आकुल-व्याकुल रहने लगा। जननी का गोकुल आना-जाना संदेहजनक हो सकता था। अस्तु, देवकी गोपूजन के बहाने गोकुल आयी<sup>42</sup> और उसने छक कर अपने सुत को देखा, तुष्ट हुई। प्रतिमाह यही क्रम चलता रहा और इस प्रकार इस देश

४०. उत्तरपुराण

४१. श्रीमद्भागवत १०।४।८ से १२, पृ० २३३-३४

४२. (क) वसुदेवहिण्डी देवकी लम्भक अनुवाद, पृ० ४८३ :

(ख) त्रिषष्टि० ८/५/११६-१२१।

(ग) भवभावना गाथा—२२०१-२२०४।



में गो-पूजन का समारंभ हुआ।<sup>43</sup> मेघनील कांति संपन्न होने के कारण बालक को “श्याम” का संबोधन और “श्रीकृष्ण” नाम मिला।<sup>44</sup>

### शकुनी-पूतना बाधा

वसुदेव के साथ वैमनस्य के कारण<sup>45</sup> प्रतिशोधार्थ विद्याधर शूर्पक ने अपनी दो कन्याओं—शकुनी और पूतना को सक्रिय किया। कृष्ण-वध के प्रयोजन से दोनों गोकुल आयीं।<sup>46</sup> दुर्योग से बालक घर में अकेला था। ये बालक को आंगन में घसीट लाईं और शकुनी उसे भारी गाड़ी के नीचे कुचलने लगी, पर विफल रही। पूतना अपने विषलिप्त स्तन का पान कराने

४३. श्रीमद्भागवत के अनुसार गोकुलवासी इंद्र के उपासक थे। वर्षा के देवता इंद्र का गवं मंग करने को श्रीकृष्ण ने इंद्र पूजा रुकवा दी और गोपूजन आरंभ करवाया। इसीसे कुपित होकर इंद्र ने ७ दिन तक अविरल वर्षा की और श्रीकृष्ण ने गोवर्धन धारण कर ब्रजवासियों व गोधन का त्राण किया।

दशमस्कंध, अध्याय २५/२६।

४४. त्रिषष्टि : ८/५/११६।

४५. शूर्पक विद्याधर दिवस्तिलक नगर के राजा त्रिशिखर का पुत्र था। वसुदेव ने युद्ध में त्रिशिखर का मस्तक काट दिया था, अतः शूर्पक का वसुदेव से वैर था और उसकी पुत्री इसका प्रतिशोध लेना चाहती थी।

४६. (क) जिनसेन के अनुसार ये दोनों कंस द्वारा भेजी गयी देवियां थी। एक दिन कंस को अपने शुभाकांक्षी देव वरुण (जो निमित्तज्ञ था) से ज्ञात हुआ कि उसका संहारक समीपस्थ क्षेत्र में ही कहीं बड़ा हो रहा है तो उसने अपने शत्रु के विनाश के लक्ष्य से ३ दिन का उपवास किया, परिणामतः उसकी पूर्वजन्म में सिद्ध की गयी दो देवियां प्रकट हुयीं। कंस ने उनसे प्रच्छन्न रूप में बह रहे अपने शत्रु के वध के लिए कहा। देवियां गोकुल पहुंची, उनमें से एक ने शकुनी (पक्षी) का रूप धारण कर लिया और अपनी पंती चांच से श्रीकृष्ण के कोमल तन को गोदने का प्रयास करने लगी, बालक कृष्ण ने उसकी चांच को इतनी जोर से मर्दित किया कि वह चीत्कार करती हुयी भाग खड़ी हुयी। दूसरी देवी अपने स्तनों पर विष का लेपन करके आयी और बालक को स्तनपान कराने लगी। श्रीकृष्ण ने अपने मुख से स्तन को इतनी कठोरता व शक्ति के साथ दबाया कि वह असीम पीड़ा से कराहने लगी ॥

लगी। रक्षक देवताओं ने दोनों विद्याधरियों का प्राणांत कर दिया। इसी समय नंद घर लौट आये। आंगन में यह अस्त-व्यस्तता और विद्याचारियों का मृत शरीर देखकर किसी अनिष्ट की आशंका से आतुर हो उठे और लपक कर वे भीतर गये। श्रीकृष्ण को सकुशल पाकर वे आश्चर्य हो गये। एक सेवक ने बताया कि स्वामी, आपका पुत्र बड़ा पराक्रमी है, उसी ने इन उपद्रवी स्त्रियों का वध किया है। वैदिक परंपरानुसार कंस राक्षसी पूतना को भेजता है जो विषाक्त स्तनपान कराने लगती है और बालक कृष्ण इतनी उग्रता से स्तनपान करते हैं कि उसका देहांत हो जाता है।<sup>47</sup>

### दामोदर श्रीकृष्ण और यमलार्जुन

निश्चय कर लिया गया कि माता यशोदा बालक को अकेला नहीं छोड़ेगी। कुछ बड़ा हो जाने पर बालक श्रीकृष्ण माता की दृष्टि से छिपकर इधर-उधर खिसक जाते थे। मां बालक की कमर में रस्सी बांधकर उसका दूसरा छोर ओखली से बांध देती और निश्चित हो जाती। यह प्रतिबंध जब तक श्रीकृष्ण चाहते, तभी तक प्रभावी रहता था। स्वेच्छा-धारित इस बंधन से वे जब चाहते मुक्त हो सकते थे। शूर्पक विद्याधर का पुत्र बालक कृष्ण के विरुद्ध अपनी बहनों और पिता के वध का प्रतिशोध पूरा कर लेने को व्यग्र था। यह यमला जाति के दो वृक्षों का रूप धरकर नंद के आंगन में स्थित हो गया। पुत्र को उदर से बांधकर निश्चित मां कहीं अन्यत्र चली गयी थी। बालक श्रीकृष्ण ओखली को घसीटते हुए आंगन में आ गये और वृक्षों की ओर बढ़े। दोनों वृक्ष पास-पास सटने लगे ताकि बालक को बीच में दबाकर कुचल दें। बालक के सबल प्रहार से दोनों वृक्ष ध्वस्त हो गये और इस प्रकार शूर्पक पुत्र की जीवन लीला समाप्त हो गयी। पेट पर रस्सी के बंधन के कारण श्रीकृष्ण को “दामोदर” कहा जाने लगा।<sup>48</sup> आचार्य जिनसेन ने यमल और अर्जुन नामक दो देवियों का होना माना है।<sup>49</sup> श्रीमद्भागवत में यह प्रसंग अन्यथा रूप में है। कुबेर-पुत्र नलकबर और मणिग्रीव यक्ष कन्याओं के साथ जलक्रीडा कर रहे थे कि सहसा नारद

४७. श्रीमद्भागवत १०/६/४ से १३।

४८. (क) त्रिषष्टि : ८/५/१४१।

(ख) भवभावना गा० २२११-२२१५।

४९. हरिवंशपुराण— ३५/४५, पृ० ४५३।

जी पहुंच गये। कन्याओं ने वस्त्रधारण कर लिए पर ये दोनों भाई निर्लज्ज ठूठ की भांति खड़े रहे। क्षुब्ध ऋषि ने शाप दिया कि जाओ इसी तरह वृक्ष योनि में जा पड़ो। इनके बहुतेरे गिडगिडाने पर नारद जी ने उद्धार की व्यवस्था बतायी कि जब कृष्णावतार होगा तब भगवान तुम्हारा उद्धार करेंगे। नंद आँगन में ये दोनों भाई ही वृक्ष बने थे और श्रीकृष्ण से उद्धार पाकर वे अपने मूल स्वरूप में आये थे।<sup>50</sup>

### बलभद्र का गोकुल-आगमन

पुत्र-वत्सला माता-पिता का मन इन बाधाओं और उपद्रवों से विचलित रहने लगा। यह भय भी था कि ऐसे चमत्कारों से श्रीकृष्ण का वास्तविक रूप भी कंस से अधिक समय तक छिपा न रह सकेगा। अतः बालक के रक्षणार्थ वसुदेव ने बलभद्र को नंद के यहां भेज दिया। श्रीकृष्ण एवं बलराम गोकुल में नाना भांति क्रीडा करते और ग्रामवासियों को सुख-मग्न रखते। बलराम श्रीकृष्ण को धनुर्विद्या एवं अन्य युद्धकौशल सिखाने लगे<sup>51</sup>। श्रीकृष्ण आयुध संचालन में प्रवीण बने। उनके शौर्य, शक्ति और पराक्रम में अद्भुत गति से विकास होने लगा। उनकी रूपमाधुरी भी विकसित होने लगी। वे कलावंत हो गये। सभी उनसे अतिशय प्रेम करने लगे। ११ वर्षकी आयु में ही वे गोकुल-नायक बन गये। मुरली के स्वर पर गोपियां उनके पास दौड़ी आतीं। वे गोपाल थे। गायें उनसे अमित स्नेह करती थीं। श्रीकृष्ण ब्रजराज हो गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने ग्यारह वर्षीय गोकुलप्रवास पूर्ण किया।<sup>52</sup>

### कंसारि की खोज

एक दिन राजभवन में कंस ने नासिकाहीन कन्या को देख लिया और उसे मुनि की भविष्यवाणी स्मरण हो आयी। वह विचलित हो उठा। एक निमित्तज्ञ को बुलाकर उसने प्रश्न किया कि मुनिवाणी सत्य होगी

५०. श्रीमद्भागवत १०/१०/१ से ४३। गीता प्रेस, गोरखपुर

५१. (क) त्रिषष्टि : ८/५/४६ से ५३।

(ख) हरिवंशपुराण—३५, ६४, पृ० ४५६।

(ग) भवभावना—२२१७ और २२१६।

५२. त्रिषष्टि ८/५/१६६।

अथवा मिथ्या ?<sup>53</sup> उत्तर मिला कि मुनिवाणी रंचमात्र भी मिथ्या नहीं हो सकती । निमित्तज्ञ ने कहा कि तुम्हारा संहारक तो जन्म ले चुका है और वह आस-पास ही कहीं बड़ा हो रहा है । समस्या यह थी कि कंस अपने विनाशक को पहचाने कैसे ? निमित्तज्ञ ने राह बतायी कि कंस अपने दुर्धर्ष और बलवान बैल अरिष्ट, अश्व केशी, दुर्दान्त खर और मेष को मुक्त विचरणार्थ वन में छोड़ दें । खेल ही खेल में जो इन चारों का वध कर दे—वही कंस का शत्रु होगा । वही देवकी का सातवां गर्भ है ।<sup>54</sup> निमित्तज्ञ से कंस को यह भी ज्ञात हुआ कि उसका शत्रु इस युग का वासुदेव होगा और वासुदेव महाबलवान होता है । वह कालियमर्दन भी करेगा और समय आने पर वह उसका भी अंत कर देगा ।<sup>55</sup> निमित्तज्ञ के कथन से कंस आतंकित हो गया । वह आत्मरक्षा के लिए सक्रिय हो गया और शत्रु की खोज के लिए सुझाये गये उपायों को क्रियान्वित करने लगा ।

प्रचण्ड बैल अरिष्ट को वृन्दावन में मुक्त विचरण हेतु छोड़ दिया गया । उसके भयंकर उत्पात से सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी ।<sup>56</sup> श्रीकृष्ण ने सींगों से पकड़कर इस क्रूर बैल को नियंत्रित कर लिया । वह पिछले पैरों से ऐसा ऊपर उठा कि अपने ही भार से उसकी ग्रीवा भंग हो गयी और वह भयानक चीत्कार के साथ मर गया । गोकुलवासी प्रसन्नता से झूम उठे ।<sup>57</sup> वैदिक परंपरानुसार एक दैत्य बछड़े (वत्स) का रूप धारण कर गो-समूह में घुस आया । श्रीकृष्ण ने पिछले पैर पकड़ कर वत्सासुर को उठा लिया और उसे आकाश में तेजी से ऐसा घुमाया कि उसका प्राणांत हो गया । उत्तरपुराणानुसार अरिष्ट नामक देव बैल रूप में श्रीकृष्ण के बल की परीक्षा लेने आया । श्रीकृष्ण उसकी गर्दन मरोड़ने लगे, किंतु देवकी ने उसे छुड़ा लिया ।<sup>58</sup> अरिष्ट के पश्चात् उद्दंड अश्व केशी को भेजा गया । उसने

५३. (क) त्रिषष्टि ८-५-२००, २०१ । (ख) भवभावना २३४७ से २३५० ।

५४. (क) त्रिषष्टि : ८/५/२०२-२०४ । (ख) भवभावना २३५२ से २३५६ ।

५५. (क) त्रिषष्टि : ८-२-२०५-२०७ ।  
(ख) भव-भावना गा० २३५७ से २३५९ ।

५६. श्रीमद्भागवत में अरिष्ट के स्थान पर वत्सासुर नाम का बछड़ा उल्लिखित है ।

५७. (क) त्रिषष्टि : ८/५/२०६-२१६ ।  
(ख) भवभावना २३६८ से २३७५ ।

५८. उत्तरपुराण श्लोक ४२७-२८ ।

अपने उत्पात से गायों और गोपों को आतंकित कर दिया। श्रीकृष्ण ने पूर्ण शक्ति के साथ अपना हाथ उसके मुख में डाल दिया और दम घुटने से उसका भी प्राणांत हो गया।<sup>59</sup> खर और मेष की भी इसी प्रकार दुर्गति हुई। कंस को निश्चय हो गया कि श्रीकृष्ण ही उसके शत्रु हैं और वे परम बलवान एवं शूरवीर हैं।<sup>60</sup>

श्रीमद्भागवत में खर का नाम नहीं आता, किंतु धेनुकासुर प्रसंग के साथ इसकी समकक्षता स्थिर की जा सकती है जो इस प्रकार है कि तालवन मधुर फलों से लदा था और धेनुकासुर वहां प्रतिपल प्रहरी रूप में सतर्क रहा करता था। अपनी सखा मंडली सहित श्रीकृष्ण वहां पहुंचे और धेनुकासुर ने बलराम के वक्ष में लात मारी। बलराम ने उसके पिछले पैर पकड़ कर घुमा दिया और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। इस पर धेनुक के बंधु-बांधवों का समूह एकत्रित होकर चढ़ आया और दोनों भाइयों ने उन सभी को मार कर तालवन को निरापद कर दिया।<sup>61</sup>

#### शारंग धनुष प्रकरण

कंस के राजभवन में शारंग नामक एक अति प्राचीन धनुष था। उसने घोषणा करवा दी कि जो कोई इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा उसके साथ वह सत्यभामा का विवाह करवा देगा। इस बहाने कंस एक बार पुनः निश्चित कर लेना चाहता था कि श्रीकृष्ण ही उसके शत्रु हैं।<sup>62</sup> यथासमय आयोजन किया गया। अनेक राजा-राजकुमार अपनी शक्ति का परिचय देने को एकत्र हुए। श्रीकृष्ण भी बलराम और अनाधृष्टि के साथ स्वयंवर सभा में पहुंचे।

अनाधृष्टि वसुदेव-मदनवेगा का पुत्र था जो शौर्यपुर से मथुरा यात्रा में रात्रि विश्राम हेतु गोकुल रुक गया था। मार्ग से अपरिचित होने के कारण अगले दिन श्रीकृष्ण एवं बलराम को साथ लेकर उसने मथुरा प्रस्थान किया। मार्ग उबड़-खाबड़ था और उसका रथ बार-बार अटक जाता था।

५९. (क) त्रिषष्टि : ८/५/२१७-२२०।

(ख) भवभावना २३७६-७७।

६०. (क) त्रिषष्टि : ८/५/२२१।

(ख) भवभावना : २३८१।

६१. श्रीमद्भागवत स्कंध १, अध्याय १५, श्लोक २०-४०।

६२. त्रिषष्टि : ८/५/२२३-२२४।

जब एक भारी पेड़ की बाधा से रथ रुक गया तो अनाधृष्टि ने वृक्ष को उखाड़ फेंकना चाहा पर पसीना-पसीना होकर भी वह सफल न हो सका। श्रीकृष्ण ने बड़ी सुगमता से उसे समूल उखाड़ कर रास्ता बना दिया। अनाधृष्टि श्रीकृष्ण की शक्ति पर आश्चर्य करने लगा और उनका प्रशंसक बन गया। स्वयंवर सभा में जब ये पहुंचे तो संयोग ऐसा हुआ कि अनाधृष्टि का मुकुट धरती पर गिर कर खंडित हो गया। उसका पैर फिसल गया था। उपस्थित राजा-महाराजा अट्टहास कर उठे और सत्यभामा भी व्यंग्य से मुस्कुराने लगी। आत्मविश्वास डिंग जाने के कारण अनाधृष्टि प्रत्यंचा न चढ़ा सका। पराजय की इस स्थिति से श्रीकृष्ण तड़प उठे। उन्होंने क्षणमात्र में शारंग को प्रत्यंचायुक्त कर दिया।<sup>63</sup> सभास्थल हर्षध्वनि से गूँज उठा...पर वसुदेव इस आशंका से चिंतित हो उठे कि इस पराक्रम से कंस ने श्रीकृष्ण को अपने शत्रु रूप में पहचान लिया तो नया संकट उठ खड़ा होगा। उनके निर्देश पर श्रीकृष्ण और अनाधृष्टि तत्काल सभा त्याग कर गोकुल पहुंच गये। लोक में नंदनंदन श्रीकृष्ण “शारंगधर” के रूप से विख्यात हो गये।

#### मल्लयुद्धोत्सव : रहस्योद्घाटन

अब निश्चित हो जाने पर कंस अपने शत्रु श्रीकृष्ण को मारने की नयी-नयी चालें चलने लगा। उसने मथुरा में एक मल्लयुद्ध का आयोजन किया। श्रीकृष्ण भी बलराम के साथ पहुंचे। दूरद्रष्टा वसुदेव ने श्रीकृष्ण

६३. (क) जिनसेन कृत हरिवंशपुराण के अनुसार कृष्ण को खोजने में असफल रहकर जब कंस गोकुल से मथुरा लौटा, उसी समय मथुरा में ३ दिव्य पदार्थ प्रकट हुए—सिंहवाहिनी नागशय्या, अति तेज धनुष, और पांचजन्य शंख। ज्योतिषियों से ज्ञात हुआ कि जो मनुष्य नागशय्या पर चढ़कर इस धनुष को प्रत्यंचायुक्त कर देगा और पांचजन्य फूंक कर सस्वर कर देगा, वही निश्चय रूप से कंस का शत्रु है। तदनुसार कंस ने घोषित करवाया कि जो इस पराक्रमपूर्ण कार्य में सफल रहेगा, वह मेरा मित्र माना जाएगा और इस नाते में उसको अलम्य इष्ट वस्तु भी भेंट करूंगा।

(ख) जब धनुष रक्षक असुरों व कंस के सैन्य ने श्रीकृष्ण का विरोध किया तो उन्होंने धनुष को खंड-खंड कर दिया और धनुष के टुकड़ों से ही सब को मार गिराया। श्रीमद्भागवत १०/४२/१५-२१।

की रक्षा हेतु अपने सभी भाइयों और पुत्रों अक्रूर आदि को बुलाया था। कंस ने यदुवंशियों का खूब स्वागत किया और उनके लिए पृथक् से एक उच्च मंच निर्मित करवाया।<sup>64</sup>

इससे कुछ पूर्व गोकुल में एक घटना घटित हो गयी। मथुरा हेतु प्रस्थानपूर्व स्नानार्थ बलराम ने यशोदा को पानी गर्म करने को कहा। व्यस्ततावश हुए विलंब से कुपित हो बलराम ने यशोदा को ताड़ना देते हुए कहा—हमारी दासी होकर तुमने हमारी आज्ञा के उल्लंघन का साहस कैसे किया?<sup>65</sup> माता के इस अपमान से श्रीकृष्ण चंचल हो उठे। दोनों भाई यमुना-स्नान के लिए चल दिये। अधीर श्रीकृष्ण ने जब पूछा—मां को तुमने दासी क्यों कहा?<sup>66</sup> तो सारा वृत्तांत बताते हुए बलराम ने स्पष्ट किया कि श्रीकृष्ण भी वसुदेव-देवकी के पुत्र हैं। रहस्योद्घाटन पर कंस के प्रति श्रीकृष्ण के मन में प्रतिशोध की प्रचण्ड ज्वाला धधक उठी और उन्होंने कंस वध की प्रतिज्ञा कर ली।<sup>67</sup>

यमुना में स्नानार्थ जब ये उतरे तो पाया कि इस स्थल का यमुना जल बड़ा दीप्तिमान और आलोकित है। इस यमुनाद्रह में भयंकर कालिय नाग का निवास था। उसी के मणि-प्रकाश से जल दीप्तिमान हो उठा था। श्रीकृष्ण इस तथ्य से अपरिचित थे। इनके जलप्रवेश करते ही भयंकर नाग लपका, किंतु त्वरा के साथ श्रीकृष्ण ने उसे नाथ लिया और उसके साथ क्रीडा करते रहे। अंततः उसका मर्दन कर नष्ट ही कर दिया। कुतूहलवश एकत्रित विशाल जनसमुदाय ने श्रीकृष्ण का जय-जयकार किया। दोनों भाई सभी का साधुवाद लेकर मथुरा के लिए चल दिये।<sup>68</sup>

हरिवंश पुराण और उत्तर पुराण में यह प्रसंग अन्यथा रूप में है कि कंस ने गोकुलवासियों को एक विशिष्ट कमल लाने का आदेश दिया जो यमुना में असंख्य सर्पों वाले द्रह में खिला था। कंस जानता था कि श्रीकृष्ण ही कमल लेने को जायेगा और मारा जायेगा। श्रीकृष्ण ने जब जल में प्रवेश किया तो प्रचंड कालिय ने क्रुद्ध होकर आक्रमण कर दिया। श्रीकृष्ण

६४. त्रिषष्टिः ८/५/२४४-२४६।

६५. (क) —वही— ८/५/२४८-२५१। (ख) भवभावना—२४०३-२४०५।

६६. (क) त्रिषष्टिः ८/५/२५२-२५४। (ख) भवभावना २४०६।

६७. (क) त्रिषष्टिः ८/५/२५५-२६। (ख) भवभावना २४८।

६८. त्रिषष्टिः ८/५/२६२-२६५।

ने उसे मर्दित कर दिया और कमल लेकर तट पर आ गये; जिसे गोकुल-वासी कंस के पास ले गये। कंस का भय और भी घना हो गया। उसने आज्ञा दी कि नंद के पुत्र सहित सभी गोप युद्ध के लिए तैयार हो जाँय।<sup>69</sup>

श्रीमद् भागवतानुसार रमणकद्वीप में नागों का निवास था। नाग-माता कद्रू और गरुड-माता विनता के मध्य विकट शत्रुता थी अतः गरुड जी जहाँ भी सर्प को देखते तुरंत उसे खा जाते थे। ब्रह्मा जी से निवेदन किये जाने पर उन्होंने निर्णय दिया कि प्रत्येक अमावस्या को एक साँप गरुडजी को दे दिया जाय और गरुडजी साँपों का व्यापक विनाश नहीं करेंगे। इन सर्पों में कालिय बड़ा भयंकर और घमंडी था जो गरुडजी को दिया गया साँप भी स्वयं खा जाता था। कालिय और गरुडजी के मध्य भयंकर युद्ध हुआ जिससे आतंकित कालिय अन्य सुरक्षित स्थान पर बस जाना चाहता था।

एक अन्य कथानुसार यमुना के एक द्रह में मत्स्यों का समूह रहता था और गरुडजी यहाँ मत्स्याहार किया करते थे। एक दिन जब वे मत्स्यनायक को ही खा गये तो उसकी पत्नियों ने ब्रह्माजी के समक्ष करुण पुकार की। उन्होंने गरुडजी को शाप दिया कि वे इस द्रह की मछलियाँ नहीं खाएँगे। यह द्रह इस प्रकार गरुडजी से सुरक्षित था और कालिय यहाँ निवास करने लगा। तब से यमुना के इस द्रह का जल विष के प्रभाव से सदा उबलता रहता था, जलचर भी इस प्रभाव से झुलस जाते थे। तट पर दूर-दूर तक कोई वनस्पति नहीं उगती थी। श्रीकृष्ण ने यमुना जल को शुद्ध करने का निश्चय कर लिया। जब इस उद्देश्य से श्रीकृष्ण ने जल में छलांग लगायी तो क्रुद्ध कालिय ने उन पर आक्रमण किया और उन्हें अपनी दृढ़ कुंडली में जकड़ लिया। तब श्रीकृष्ण ने अपना तन इतना विकसित किया कि भयंकर पीड़ा से कराह कर कालिय को श्रीकृष्ण को मुक्त कर देना पड़ा। श्रीकृष्ण ने कालिय के मस्तक पर तीव्र पदाघात किये और उसे मर्दित कर दिया। अचेत नाग की पत्नियाँ पति के प्राणों के रक्षार्थ श्रीकृष्ण से प्रार्थना करने लगीं। सचेत होकर कालिय भी प्राणों की भीख मांगने लगा। श्रीकृष्ण ने कालिय से कहा—यह स्थान छोड़कर तुम अपने मूल स्थान रमण द्वीप जाओ। मेरे चरण चिह्न तुम्हारे वक्ष पर अंकित हैं, अतः गरुड अब तुम्हें नहीं खायेगा। कालिभ ने ऐसा ही किया और यमुना जल शुद्ध हो गया।<sup>70</sup>

६९. हरिवंश पुराण : ३६/८-१० पृ, ४६

७०. श्रीमद्भागवत : स्कंध १०—अध्याय १६-१७



### कंस संहार :

मल्ल युद्ध आयोजन पर जब श्रीकृष्ण बलराम मथुरा पहुंचे। नगर द्वार पर दो सजे-सजाये गज—पद्मोत्तर और चंपक अगवानी के लिये खड़े किये गये थे।<sup>71</sup> श्रीकृष्ण के घात के लिए ऐसा किया गया था। इससे बलराम और श्रीकृष्ण भी अनभिज्ञ न थे। पद्मोत्तर ने श्रीकृष्ण पर और चंपक ने बलराम पर आक्रमण कर दिया। मुष्टि प्रहार से श्रीकृष्ण ने पद्मोत्तर गज का प्राणान्त कर दिया और उसके दोनों दाँत खींच कर निकाल लिये। चंपक हस्ति भी बलराम के हाथों मारा गया। दोनों भाई इस विजय पर बिना कोई गर्व दिखाते हुए समारोह-स्थल पर पहुंच गये।<sup>72</sup> अनेक राजा-महाराजा एकत्रित थे। वसुदेव के ९ भ्राता (दशार्ह) भी उपस्थित थे। बलराम ने दूर से ही श्रीकृष्ण को सब का परिचय दिया।<sup>73</sup>

कंस का प्रिय मल्ल चाणूर अखाड़े में उतर कर उपस्थित समुदाय को चुनौती देने लगा। कोई शक्तिशाली हो तो आये और मुझ से मल्लयुद्ध करे। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। इस बलिष्ठ से बाहुयुद्ध करना सुगम कार्य न था। श्रीकृष्ण ताल ठोंककर आगे बढ़े। भीमकाय चाणूर के विपरीत किशोर कृष्ण को खड़ा देख एक बार तो सभी ओर कोलाहल मच गया। श्रीकृष्ण ने सभी को आश्वस्त किया के मैं इस मल्ल को पराजित कर दूंगा। कंस को विश्वास हो गया कि यही मेरा शत्रु है और उसने अन्य मल्ल मुष्टिक को भी अखाड़े में उतरने का आदेश दे दिया। यह अधर्म युद्ध था। अकेले कृष्ण के दो प्रतिद्वंद्वी थे। कंस तो किसी भी प्रकार शत्रु-संहार चाहता था। अब बलराम भी अखाड़े में उतर गये। श्रीकृष्ण चाणूर से और बलराम मुष्टिक से भिड़ गये। मल्लयुद्ध के भीषण घात-प्रतिघातों के

७१. श्रीमद्भागवत में एक ही गज “कुवलापीड” की चर्चा आती है जिसे रंगशाला (मल्लयुद्धस्थल) के बाहर द्वार पर खड़ा किया गया था। श्रीकृष्ण ने महावत से कहा कि हमें प्रवेश का मार्ग दे अन्यथा तुम्हें हम हाथी सहित मार देंगे। चिढ़कर महावत ने हाथी को आगे बढ़ाया। श्रीकृष्ण ने कुछ समय तो पूंछ पकड़कर हाथी को घुमाया, फिर सूंड पकड़कर धरती पर पछाड़ दिया, उसका दांत उखाड़ लिया और उसी के प्रहारों से महावत और हाथी दोनों की जीवनलीला समाप्त कर दी।

७२. भवभावना गा० २४३१-३२

७३. (क) हरिवंशपुराण—३६/३६ पृ० ४६४; (ख) त्रिपष्टि : ८/५/२७२

दौरान श्रीकृष्ण के उरुस्थल पर चाणूर ने ऐसा प्रहार किया कि वे अचेत हो गये।<sup>74</sup> कंस ने चाणूर को इसी समय श्रीकृष्ण का अंत कर देने का संकेत दिया। चाणूर ने आक्रमण किया भी, पर बलराम ने उसे विफल कर दिया। सचेत होकर श्रीकृष्ण ने चाणूर को भुजाओं में ऐसा जकड़ा कि उसका प्राणांत हो गया।<sup>75</sup> कंस ने बौखला कर अपने सेवकों को आज्ञा दी कि इन अधम गोपों को मार दो, इनके पालक नंद को भी समाप्त कर दो और उसका सब कुछ लूट लाओ। जो भी नंद का पक्ष ले उसे भी मार डालो।<sup>76</sup>

कंस को ललकार कर श्रीकृष्ण ने कहा—पापी, चाणूर वध पर भी तू स्वयं को मृत नहीं मानता। मुझे मारने के पूर्व तू आत्मरक्षा का उपाय कर ले। झपट कर वे कंस के पास गये और उसके केश पकड़ उसे खींच लिया। वह धराशायी हो गया। उधर बलराम भी मुष्टिक का काम तमाम कर चुके थे। कंस की रक्षा के लिए जब उसके कर्मचारी शस्त्रादि लेकर दौड़े तो बलराम ने मण्डप के एक स्तंभ को उखाड़ कर उसकी सहायता से सबको खदेड़ दिया। श्रीकृष्ण ने कंस के मस्तक पर पैर रखा और उसे यमलोक भेज दिया। जैसे दूध में से मक्खी को निकाल दिया जाता है वैसे ही श्रीकृष्ण ने कंस की मृतदेह को उठाकर मंडप से बाहर फेंक दिया।<sup>77</sup> हरिवंश पुराण के अनुसार कंस तलवार लेकर श्रीकृष्ण पर झपटता है और कृष्ण तलवार छीन कर उसे वालों से पकड़कर पछाड़ देते हैं और मार डालते हैं।<sup>78</sup> कंस ने जरासंध की सेना को भी समारोह में नागरिक रूप व वेश में खड़ा कर रखा था। कंस-वध पर वे शस्त्र लेकर लपके, पर समुद्रविजय आदि दशार्ही के शौर्य के सामने वे टिक न सके।

७४. (क) त्रिषष्टि : ८/५/२८४-२८५

(ख) भवभावना : २४४३-२४५६

(ग) हरिवंशपुराण में कृष्ण के बेहोश होने का वर्णन नहीं है।

७५. (क) त्रिषष्टि : ८/५/२८६-३०० (ख) भवभावना : २४५७-२४६१

७६. (क) त्रिषष्टि : ८/५/३०१-३०२ (ख) भवभावना : २४६२-२४६४

७७. (क) त्रिषष्टि : ८/५/३१३

(ख) भवभावना : २४६६-२४७७

७८. (क) हरिवंशपुराण ३६/४५ पृ० ४६५

(ख) उत्तरपुराणानुसार श्रीकृष्ण ने कंस को पैर पकड़ कर घुमाया और भूमि पर पटक कर मार डाला। श्रीकृष्ण ने ऐसा तब किया जब चाणूर की मृत्यु के पश्चात् कंस स्वयं अखाड़े में उतरा।

वसुदेव ने बलराम को अर्धासन दिया और श्रीकृष्ण को अंक में विठाकर उनका भाल चूमा। उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राताओं को श्रीकृष्ण व बलराम का परिचय दिया और अतिमुक्त मुनि की भविष्यवाणी आदि की समग्र पूर्वकथा सुनायी।<sup>79</sup> उन्होंने बताया कि वचनबद्धता की विवशता के कारण ही उन्हें कंस के अत्याचार सहने पड़े। देवकी के अतिशय आग्रहवश ही उसका सातवां गर्भ नंद के यहां छोड़कर उसके स्थान पर उसकी पुत्री को लाना पड़ा।<sup>80</sup>

समुद्रविजय ने उग्रसेन को कारामुक्त किया व उनके साथ जाकर कंस का अंतिम संस्कार किया।<sup>81</sup> जीवयशा को छोड़ कर शेष रानियों ने अपने पति को जलांजलि दी। जीवयशा ने प्रतिशोध वश प्रतिज्ञा कर ली कि यादव कुल का सर्वनाश करके ही मैं पति को जलांजलि दूंगी, अन्यथा जीवित ही अग्निप्रवेश कर लूंगी। वह मथुरा त्याग कर पितृगृह चली गयी। पिता ने उसे आश्वस्त किया कि तू कोई चिंता न कर, मैं तेरे शत्रु का विनाश कर दूंगा।<sup>82</sup>

श्रीकृष्ण व बलराम के अनुरोध पर समुद्रविजय ने उग्रसेन को पुनः मथुरा के सिंहासन पर आरूढ़ किया और महाराज उग्रसेन ने राजकुमारी सत्यभामा का श्रीकृष्ण के साथ विवाह संपन्न कराया।<sup>83</sup> हरिवंशपुराण के अनुसार विद्याधरों के राजा सुकेतु ने अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण का विवाह कर दिया।<sup>84</sup>

**सोमक प्रसंग :—**

जरासंध भी श्रीकृष्ण विरोधी हो गया था और राजा सोमक के साथ उसने समुद्रविजय को सन्देश भेजा कि कंस-संहारक श्रीकृष्ण बलराम को हमें सौंप दो अन्यथा तुम्हें हमारा कोपभाजन बनना होगा।<sup>85</sup> समुद्र-

७९. (क) त्रिषष्टि : ८/५/३१८-३२० (ख) भवभावना २४८०-२४८६

८०. त्रिषष्टि : ८/५/३२३, ३२६

८१. त्रिषष्टि : ८/५/३२८-३२९

८२. (क) त्रिषष्टि : ८/५/३३५-३३८ (ख) हरिवंशपुराण : ३६/६५-६६

८३. (क) त्रिषष्टि : ८/५/३४०-३४३ (ख) भवभावना : २५००-२५०२

८४. हरिवंशपुराण : ३६/५३-६१ पृ० ४६७-६८

८५. (क) त्रिषष्टि : ८/५/३४०-३४३ (ख) भवभावना : २५००-२५०२

विजय ने कहा कि कंस अत्याचारी था। उसने कृष्ण के भाइयों का वध किया है। कंस का संहार कर श्रीकृष्ण ने उचित ही किया है। वे निर्दोष हैं।<sup>86</sup> पर, सोमक का मंतव्य था—श्रीकृष्ण-बलराम ही नहीं, वसुदेव भी अपराधी हैं, जिन्होंने वचनबद्धता का निर्वाह न कर अपने सातवें पुत्र को गुप्त रख लिया। उसने कहा—जरासंध महाराज के आदेश का पालन तुम्हारा कर्तव्य है। पिता पर किये गये आक्षेप ने श्रीकृष्ण को क्रुद्ध कर दिया। वे बोले—कंस के साथी होने से जरासंध भी हमारा शत्रु है।<sup>87</sup> उसने हमसे स्नेह-सम्बन्ध तोड़ लिया है। स्नेह वश ही तो हम उसका आदेश माना करते थे। श्रीकृष्ण को कुलांगार कहने पर सोमक को अनाधृष्टि ने भी खरी-खोटी सुनायी। लज्जित हो वह लौट गया।<sup>88</sup> जरासंध की ओर से भावी आपदाओं की कल्पना से समुद्रविजय चिंतित हो गये। उन्होंने निमित्तज्ञ क्रौष्टुकी से इस नये वैमनस्य का परिणाम पूछा।<sup>89</sup> संकेत मिला कि युद्ध होगा और श्री-कृष्ण व बलराम द्वारा जरासंध-वध होगा और उसके स्थान पर स्वयं श्रीकृष्ण ही त्रिखंडेश्वर होंगे। उसने परामर्श दिया कि यादवों को मथुरा त्याग कर पश्चिम की ओर प्रस्थान करना चाहिए और समुद्र तट पर नया नगर स्थापित करना चाहिए। यात्रारंभ के साथ ही शत्रुपक्ष का क्षय भी आरंभ होगा। मार्ग में सत्यभामा जहां दो पुत्रों को जन्म दे, वही स्थान निरापद होगा, वहीं नगर बसा लेना उचित रहेगा।<sup>90</sup> परामर्शानुसार समुद्रविजय ने पश्चिम की ओर सदल-बल प्रस्थान किया। अग्रसेन भी साथ हो लिये। ११ कुल कोटि यादवजन मथुरा से समुद्रविजय के साथ निकल पड़े। शौरियपुर से सात कोटि यादव और उनके साथ हो गये। विशाल यादव समूह विंध्या-चल की ओर अग्रसर हुआ।<sup>91</sup>

८६. त्रिषष्टि : ८/५/३४४-३४७

८७. (क) वही—(ख) भवभावना : २५११

८८. त्रिषष्टि : ८/५/३५७

८९. —वही—८/५/३५८-२५९

९०. (क) —वही—८/५/३६०-६२ (ख) भवभावना २५२०-२५२४

९१. हरिवंशपुराण में यह सारा प्रसंग अन्य ही प्रकार से वर्णित मिलता है। कंस-वध की सूचना ज्यों ही जीवयशा से जरासंध को मिली उसने यादवों का मारने के लिए अपने पुत्र कालवन को मथुरा भेजा। उसत १७ बार यादवों से युद्ध किया और अंत में अतुल मालावत पर्वत पर वह मारा गया। तब जरासंध ने अपने भाई अपराजित को भेजा। उसने यादवों के साथ २४६ बार युद्ध किया और

**कालकुमार प्रसंग :**

क्रुद्ध पिता जरासंध ने पुत्र कालकुमार के इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया कि वह यादवों पर आक्रमण करे। उसने कहा—“यादव समुद्र में अथवा अग्नि में कहीं भी छिप जाय मैं उन्हें वहां से खींच लाऊंगा और नष्ट कर दूंगा।” वह विशाल सेना लेकर यादवों के विरुद्ध निकल पड़ा। श्रीकृष्ण के रक्षक देवों ने यादव पक्ष की सहायता की। देवों ने एक विशाल एक-द्वारीय दुर्ग की रचना की और भीतर स्थान-स्थान पर अनेक चिताएं प्रज्वलित कर दीं। कालकुमार जब इस दुर्ग पर पहुंचा तो द्वार पर एक अकेली वृद्धा बैठी रो रही थी।<sup>92</sup> उसने बताया कि कालकुमार के भय से सभी यादव अग्नि में प्रवेश कर गये। मैं भी जल मरूंगी।<sup>93</sup> कालकुमार अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर अग्नि से यादवों को खींच लाने के लिए चिता में प्रविष्ट हो गया। वह भस्म हो गया।<sup>94</sup> सेना ने रात्रि के कारण वहीं विश्राम किया। प्रातः जाग कर जब सैनिकों ने पाया कि वहां न तो कोई दुर्ग है और न ही वह वृद्धा तो वे आश्चर्यचकित रह गये।

मार्ग में अतिमुक्त मुनि से भेंट हो जाने पर समुद्रविजय ने उनसे पूछा—इस विपत्ति में हमारा क्या होगा?<sup>95</sup> उत्तर मिला—चिंता का कारण ही नहीं है। समुद्रविजय के पुत्र अरिष्टनेमि २२ वें तीर्थंकर होंगे। बलराम व श्रीकृष्ण क्रमशः बलदेव और वासुदेव हैं। वासुदेव श्रीकृष्ण प्रतिवासुदेव जरासंध का वध कर स्वयं तीन खण्डों के अधिपति होंगे।<sup>96</sup>

वह भी श्रीकृष्ण के बाणों से मारा गया। श्रीकृष्ण-बलराम आनंदपूर्वक मथुरावास करने लगे। अपराजित की मृत्यु का समाचार पाकर स्वयं जरासंध ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया, तब ये मथुरा छोड़कर पश्चिम की यात्रा आरंभ करते हैं।  
—हरिवंशपुराण सर्ग ३६/६५-६७, ४०/१-२३

६२. हरिवंशपुराण के अनुसार स्वयं जरासंध जाता है और इस प्रकार का दृश्य देख-कर शत्रुनाश के कारण उसके मन में संतोष होता है और वह राजगृह लौट आता है।—हरिवंशपुराण—४०/२८-४३ पृ० ४६४-६७

६३. (क) त्रिषष्टि : ८/५/३६७-३७६ (ख) भवभावना : २५२६-२५३५

६४. त्रिषष्टि : ८/५/३७८-३८०

६५. त्रिषष्टि : ८/५/३८६-३८७

६६. (क) त्रिषष्टिशलाका : ८/५/३८८-३८९ (ख) भवभावना : २५५८

## द्वारका-निर्माण—

यादव दल सौराष्ट्र में रैवतक पर्वत के समीप शिविर डाले था कि सत्यभामा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। यहीं पर यादवों को नगर बसाना था। श्रीकृष्ण ने समुद्र पूजन के पश्चात् अष्टम भक्त तप आरंभ किया और लवणसागर का स्वामी सुस्थित देव प्रकट हुआ। देव ने श्रीकृष्ण को पांच-जन्य और बलराम को सुघोष नामक शंख व रत्नादि भेंट किये<sup>97</sup> और निर्देश चाहा कि, वह क्या सेवा कर सकता है? श्रीकृष्ण ने कहा—पूर्व वसुदेव की द्वारका इसी स्थल पर थी जिसे तुमने जलमग्न कर दिया था। अब वैसी ही द्वारका पुनः निर्मित करो। सुस्थित देव से वृत्तांत जानकर इंद्र ने कुबेर को आदेश दिया, जिसने द्वारका का निर्माण करवाया।<sup>98</sup>

कुबेर ने श्रीकृष्ण को दो पीतांबर, नक्षत्रमाला, हार, मुकुट, कौस्तुभ-मणि, शारंग धनुष, अक्षय बाण तुणीर, नंदन खड्ग, कौमुदी गदा और गरुडध्वज रथ उपहार में भेंट किये। इसी प्रकार बलराम को दो नील वस्त्र, वनमाला, मूसल, अक्षय बाण तुणीर, धनुष और हल का उपहार दिया गया। श्रीकृष्ण के पूज्य सभी दशार्हों को भी रत्नजटित आभूषणादि उपहार दिये गये। यादवों ने शत्रुसंहारक श्रीकृष्ण का राज्याभिषेक किया और वे द्वारकाधीश हो गये। और, तब यादव कुल का द्वारका में प्रवेश हुआ।

## रक्षिणी प्रसंग—

श्रीकृष्ण का द्वारका में अनुशासन चल रहा था। श्रीकृष्ण प्रजावत्सल, विनम्र और मृदु नरेश थे। वैभव और सुखाधिक्य के कारण द्वारावती देवपुरी-समकक्ष थी। एक दिन नारद जी राजभवन में पहुंचे। विनम्रता और श्रद्धा के साथ श्रीकृष्ण ने उनका हादिक स्वागत किया। एक प्रश्न उनके मन में मचल उठा कि श्रीकृष्ण की भांति ही रानियां भी विनम्र हैं अथवा नहीं? नारद जी अंतःपुर में पहुंचे। रानियों ने उनका स्वागत नम्रता से किया, किंतु शृंगार-व्यस्त सत्यभामा से उनकी उपेक्षा हो गयी। नारद जी ने निश्चय किया कि सत्यभामा का अपहरण अनिवार्य है। और, वे अंतः-पुर से लौट गये।<sup>99</sup>

६७. (क) त्रिषष्टि : ८/५/३९१-३९५ (ख) भवभावना : २५६५

६८. (क) त्रिषष्टि : ८/५ (ख) भवभावना : २५७१-२५८८

(ग) हरिवंशपुराण ५१/३२-३७ पृ० ५०१

६९. (क) त्रिषष्टि : ८/६/७-९ (ख) भवभावना : २६३८-३९

नारद जी अब ऐसी अनुपम सुन्दरी के खोज में थे जिसे श्रीकृष्ण की नवरानी बनाकर सत्यभामा का गर्वभंग कर सकें। कुण्डिनपुर नरेश भीष्मक की राजकन्या रुक्मिणी त्रैलोक्यसुन्दरी थी। नारद जी के आगमन पर रुक्मिणी ने विनत हो उन्हें प्रणाम किया। ऋषि ने उसे आशीर्वाद दिया—बेटी, द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण तेरे पति होंगे।<sup>100</sup> जिज्ञासा तुष्ट करते हुए उन्होंने रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के रूपगुण से सविस्तार परिचित कराया। राजकुमारी के मन में श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग जागृत हो गया और उसने उन्हें पतिरूप में वरण करने का निश्चय कर लिया। नारद जी ने स्वयं ही रुक्मिणी का एक चित्रफलक तैयार कर श्रीकृष्ण को दिया। इस अनुपम रूपमाधुरी पर श्रीकृष्ण मुग्ध हो गये। परिणय का प्रस्ताव कुण्डिनपुर भेजा गया। कुमार रुक्मि प्रस्ताव से क्षब्ध हो गया। दूत को उसने उत्तर में कहा—रुक्मिणी का हाथ मैं एक ग्वाले को नहीं दे सकता। उसका परिणय पूर्वनिश्चित वर शिशुपाल के साथ संपन्न होगा।<sup>101</sup>

रुक्मिणी जब बालिका थी—अतिमुक्त मुनि ने भविष्यवाणी की थी कि, वह भी कृष्ण की पट्टरानी बनेगी।<sup>102</sup> धाय फुड्बा ने इसकी चर्चा करते हुए कहा कि, कुमार रुक्मि ने ठीक नहीं किया। फुड्बा रुक्मिणी की मनो-कामना पूर्ण करने में सहयोगिनी बनी। एक गोपनीय पत्र में उसने श्रीकृष्ण को लिख भेजा कि माघ शुक्लाष्टमी को नागपूजा के मिस मैं रुक्मिणी को उद्यान में लाऊंगी। हे कृष्ण ! यदि रुक्मिणी का प्रयोजन हो तो वहां आ जाना। अन्यथा वह शिशुपाल की हो जायगी।<sup>103</sup> श्रीकृष्ण के बल पराक्रम से परिचित रुक्मि का सशंक मन भी अशांत हो गया था। उसने शिशुपाल को शीघ्र आने का निमंत्रण भेज दिया। श्रीकृष्ण-रुक्मिणी प्रणय से अवगत शिशुपाल सेना सहित कुण्डिनपुर पहुँच गया। इधर योजनानुसार फुड्बा के

(ग) हरिवंशपुराण : ४२/२४-२६

१००. (क) त्रिषष्टि : ८/६/१०-१३ (ख) भवभावना। २६४०-४२

(ग) हरिवंशपुराण : ४२/३०, ४२ पं० ५०७

१०१. (क) त्रिषष्टि : ८/६/१४-२१ (ख) भवभावना : २६४३-४४

(ग) हरिवंशपुराण : ४२/४३-४८

१०२. (क) त्रिषष्टि : ८/६/२४ (ख) हरिवंशपुराण : ४२/४६-४६

१०३. (क) त्रिषष्टि : ८/६/२८-३० (ख) हरिवंशपुराण : ४२/५७-६४

(ग) प्रद्युम्नचरित्र महाकाव्यम् सर्ग २, श्लोक ७३

साथ रुक्मिणी उद्यान में पहुँची। बलराम सहित आये श्रीकृष्ण प्रतीक्षारत थे। उन्होंने फुड़वा को प्रणाम कर रुक्मिणी को स्थावृद्ध होने का संकेत किया। धात्री की अनुमती से उसने ऐसा ही किया। रथ ने प्रस्थान किया और फुड़वा व अन्य दासियां सहायतार्थ चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगीं कि, श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर ले गये।<sup>104</sup> रुक्मि और शिशुपाल अपनी सेना-सहित पीछा करते हुए समीप आ गये तो इनकी शक्ति से परिचित रुक्मिणी अत्यन्त व्याकुल हो गयी। श्रीकृष्ण ने बाण चलाकर ताडपंक्ति को बेध दिया, चुटकी में मोड़कर अंगूठी के हीरे का चूरा कर दिया। उनके पराक्रम का परिचय पाकर रुक्मिणी आश्चस्त हो गयी। श्रीकृष्ण से बलराम ने कहा कि, तुम बधू को लेकर आगे चलो, मैं शत्रुओं को रोककर उनका निग्रह करता हूँ।<sup>105</sup> भाई के आसन्न काल से रुक्मिणी व्याकुल हो गयी और उसने बलराम को वीनती की—भाई का बध न करें। श्रीकृष्ण आगे बढ़ गये और बलराम ने मूसल से अरिदल का नाश कर दिया। हलधारण करने पर शेष सैन्य भी तितर-बितर हो गया। अकेला रुक्मि बच गया। बलराम ने बाणों से उसका रथ खंडित कर कवच विदीर्ण कर दिया। क्षुरप्र बाण से उसकी दाढ़ी-मूँछ भी उखाड़ दी। वे बोले—मेरी अनुज-बधू का बंधु होने के कारण मैं तेरा बध न करूँगा, जा, छोड़ देता हूँ।<sup>106</sup> लज्जित होकर रुक्मि लौटकर कुण्डिनपुर न गया, भोजकट नगर बसाकर वहीं रहने लगा।<sup>107</sup>

द्वारका पहुँचते-पहुँचते रुक्मिणी के मन में हीनत्व आने लगा। श्रीकृष्ण की अन्य रानियां अपने साथ वैभव लायी होंगी और वह खाली हाथ है। श्रीकृष्ण ने उसे “अनुरागमूर्ति” कहकर उसके संकोच को दूर कर दिया, तथापि उसे सत्यभामा के महल के पास पृथक् महल में रखा और उसके साथ गांधर्व विवाह किया।<sup>108</sup>

१०४. (क) त्रिषष्टि : ८/६/३१-३६ (ख) हरिवंशपुराण : ४२/६५-७७

(ग) वसुदेवहिण्डी (घ) पद्मचरित्र सर्ग ३-४

१०५. (क) त्रिषष्टि : ८/६/४०-४८ (ख) हरिवंशपुराण : ४२/७८-८६ पृ० ५१

(ग) हरिवंशपुराण में बलराम को छोड़कर कृष्ण जाते नहीं हैं, किंतु वहीं पर रहकर युद्ध करते हैं—देखो—हरिवंशपुराण—४२/६०-७५

साथ ही शिशुपाल के वध का वर्णन किया है, पर वह त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र में नहीं है।

१०६. त्रिषष्टि : ८/६/५०-५७ १०७. त्रिषष्टि : ८/६/५८

१०८. त्रिषष्टि : ८/६/६४



**भाठ पट्टरानियाँ : अग्र महिषियाँ—**

श्रीकृष्ण की अनेक रानियाँ थीं, जिनकी संख्या १६ हजार मानी जाती हैं।<sup>109</sup> इनमें से सत्यभामा एवं रुक्मिणी सहित ८ प्रमुख थीं जो पट्टरानियाँ थीं और अग्रमहिषियाँ कहलाती थीं। शेष ६ पट्टरानियों के नाम थे—जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती एवं गांधारी।

जांबवती गगननंदन के विद्याधर राजा जांबवान की पुत्री थी और उसकी माता का नाम श्रीमती था। लक्ष्मणा सिंहस्वामी हिरण्यलोम की पुत्री थी जो श्रीकृष्ण की आशाओं की अवमानना किया करता था। लक्ष्मणा का हरण किया गया था।<sup>110</sup> सुसीमा अराक्षरी (आयुस्वरी) नगरी के राजा की पुत्री थी और नमुची की बहन थी जिसे अपनी अजेयता का दर्प था। प्रभास तीर्थ से श्रीकृष्ण नमुची का वध कर उसे हरण कर लाये थे।<sup>111</sup> गौरी मरुदेश के राजा वीतभय की पुत्री थी।<sup>112</sup> पद्मावती बलराम की माता रोहिणी के भाई अरिष्टपुर नरेश हिरण्यनाभ की पुत्री थी।<sup>113</sup> गांधारी गांधार देश की पुष्कलावती नगरी के राजा नग्नजित की पुत्री थी।<sup>114</sup> नग्नजित के निधन पर गांधारी का भाई चन्द्रदत्त राजा बना, पर स्वजनों द्वारा अपहृत कर दिया गया था। श्रीकृष्ण ने उसे पुनः राज्यारूढ़ कराया था। उसने गांधारी का विवाह श्रीकृष्ण के साथ करा दिया।<sup>114</sup>

१०९. (क) अन्तगडदसाओ वर्ग १ अ० १ (ख) प्रश्नव्याकरण, ३ धर्मद्वार

(ग) वैदिक परंपरा में रानियों की संख्या १६१०१ मानी गयी हैं। भगवतो-प्यत्र-मर्त्यलोकेऽवतीर्णस्य षोडशसहस्राण्येकोत्तर-शतानि स्त्रीणामभवत्—विष्णुपुराण। इनमें से रुक्मिणी, कालिंदी, मित्रविन्दा, सत्या (नग्नजित की पुत्री), जाम्बवती, रोहिणी, सुशीला, (मद्राजपुत्री) सत्यभामा और लक्ष्मणा इन ६ रानियों को प्रमुख माना गया है।

महाभारत के अनुसार प्रमुख रानियाँ—रुक्मिणी, सत्यभामा, गांधारी, शैव्या, हेमवती, जाम्बवती। हरिवंशपुराणानुसार लक्ष्मणा ही जलहासिनी है। और, प्रमुख रानियाँ इस प्रकार हैं—कालिन्दी, मित्र-वृन्दा, सत्या, जाम्बवान की कन्या रोहिन्दी, माद्रीसुशीला, सत्यजित की कन्या सत्यभामा, जलहासिनी लक्ष्मणा, शैव्या।

११०. वसुदेवहिण्डी पृ० ७६ १११. वही—पृ० ७६

११२. वही—पृ० ७८ ११३. वही—७८

११४. वही—पृ० ७८

प्रद्युम्न जन्म एवं अपहरण प्रसंग :—

अतिमुक्त मुनि से रुक्मिणी ने एक प्रश्न किया, सत्यभामा भी उपस्थिति थी। मुनिराज ने उत्तर दिया कि तुम्हें श्रीकृष्ण जैसा ही पुत्र उत्पन्न होगा।<sup>116</sup> तदनंतर दोनों रानियों में विवाद हो गया। प्रत्येक का मानना था कि कथन उसके ही विषय में था। निर्णयार्थ वे श्रीकृष्ण के पास आयीं। दुर्योधन भी उस समय उपस्थित था; जिससे सत्यभामा ने कहा कि मुझे पुत्र हुआ तो वह तुम्हारा जामाता बनेगा। तुरन्त ही यह अधिकार रुक्मिणी अपना जताने लगी। दुर्योधन यही कह सका कि दोनों में से जिसे भी पुत्र होगा—उससे अपनी पुत्री का विवाह कर दूंगा। सत्यभामा ने एक क्रूर शर्त रख दी कि हम दोनों में से जिसका पुत्र पहले विवाह करेगा, विवाह के समय दूसरी को अपना सर मुंडवा लेना पड़ेगा। रुक्मिणी ने शर्त स्वीकार कर ली।<sup>117</sup> बलराम, श्रीकृष्ण, व दुर्योधन शर्त के साक्षी बने।

एक रात्रि रुक्मिणी ने स्वप्न देखा कि वह श्वेत बैल पर स्थित विमान में आरुढ़ है। तभी उसकी निद्रा भंग हो गयी और एक महर्षिक देव महाशुभ्र देवलोक से च्युत होकर उसके उदर में प्रविष्ट हुआ। श्रीकृष्ण ने कहा कि मुनिवाणी सत्य घटित होनेवाली है।<sup>118</sup> ज्ञात होने पर सत्यभामा ने भी एक अनदेखे स्वप्न की चर्चा श्रीकृष्ण से की, वे यथार्थ को भांप गये। संयोग से दोनों रानियों ने एक साथ ही गर्भ धारण किया। रुक्मिणी गूढगर्भा थी, उसमें बाह्य लक्षण नहीं दिखायी देते थे, पर दोनों ने एक ही दिन पुत्रों को

११५. वही—७६

११६. त्रिषष्टि : ८/६/११०-११

११७. (क) त्रिषष्टि : ८/६/११२-११७

(ख) कुछ परिवर्तन के साथ—हरिवंश में भी यही वर्णन है—देखो हरिवंश ४३/१६-२८

११८. उत्तरपुराण में प्रद्युम्न के पूर्वभवों के विषय में नारद जी के स्थान पर बलभद्र जी की जिज्ञासा जगती है और वे अरिष्टनेमि के गणधर वरदत्त से इस विषय पर प्रश्न करते हैं। कुछ नामों के परिवर्तन के अतिरिक्त विवरण लगभग वही है।

धूमकेतु प्रद्युम्न का हरण श्रीकृष्ण के अंक से नहीं करता, अपितु वह अंतःपुर के सभी लोगों को मोहनिद्रा में सुलाकर अपहरण करता है। उसी प्रकार कालसंवर के स्थान पर कालसंभव और कनकमाला के स्थान पर कंचनमाला नाम का प्रयोग हुआ है।

जन्म दिया। रुक्मिणी के पुत्र का नाम प्रद्युम्न और सत्यभामा के पुत्र का नाम भानु रखा गया।<sup>119</sup>

शिशु प्रद्युम्न को श्रीकृष्ण अंक में लिए बैठे थे कि उन्हें लगा कि रुक्मिणी बालक को उठा ले गयी। किंतु, उसे वह नहीं ले गयी थी। बालक का अपहरण कोई रुक्मिणी का रूप धारण कर ले गया था। इससे माता बड़ी दुःखी हुई।<sup>120</sup> प्रद्युम्न के पूर्वभव के शत्रु धूमकेतू ने ही रुक्मिणी का रूप धर अपहरण कर लिया था और वैताढ्यगिरि पर छोड़ गया कि बालक भूख-प्यास से तड़प कर प्राण त्याग देगा। विद्याधर कालसंवर बालक को उठा ले गया और उसकी निस्सन्तान पत्नी कनकमाला उसे पोषित करने लगी। कालसंवर ने घोषित कर दिया कि उसकी गूढगर्भा पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया है। बालक की खोज में नारद जी ने सहायता की। उनसे सीमंधर स्वामी से पता लगाने का अनुरोध किया गया। सीमंधर स्वामी ने बताया— बालक मेघकूट नगर में कालसंवर के घर बड़ा हो रहा है, किंतु पूर्वजन्म के कर्मवश उसे अभी सोलह वर्ष वहीं रहना होगा। मेघकूट में वे बालक को सकुशल देखकर द्वारका लौटे और श्रीकृष्ण से सारा वृत्तांत कह सुनाया। सीमंधर स्वामी ने प्रद्युम्न के पूर्वभवों का परिचय भी नारद जी को दिया।<sup>121</sup> १६ वर्ष की आयु प्राप्त करते-करते प्रद्युम्न गुण-शील और कलाओं में ही बड़े-चढ़े नहीं हो गये अपितु सुन्दर व आकर्षक युवक भी हो गये थे। कंचनमाला उन पर मुग्ध हो गयी। रहस्योद्घाटन करते हुए—मैं तुम्हारी जननी नहीं हूँ। उसने निमंत्रण दिया—आओ मेरे साथ क्रीडा करो। प्रद्युम्न ने कालसंवर और उसके पुत्रों का भय बताकर पिंड छुड़ाना चाहा कि वे मुझे जीवित न छोड़ेंगे। कामांध कंचनमाला ने प्रज्ञप्ति और गौरी विद्याएं दीं और कहा—इनसे तुम कभी किसी से भी पराजित न हो सकोगे। प्रद्युम्न ने दोनों विद्याओं को सिद्ध भी कर लिया और कंचनमाला के प्रस्ताव को अनुचित बताकर घर छोड़कर चल दिया। प्रतिशोधवश कंचनमाला ने अपने पति-पुत्रों को रो-रोकर कहा—प्रद्युम्न मेरा शील भंग कर गया है। पिता-पुत्र उसके पीछे भागे और घोर युद्ध हुआ। विद्याधर की पराजय हुई

११९. (क) त्रिषष्टि : ८/६/१८ (ख) हरिवंशपुराण ४२/२९-३०

१२०. (क) त्रिषष्टि : ८/६/१२७-१२९ (ख) भवभावना : २६४६

१२१. वसुदेवहिण्डी के अनुसार रुक्मिणी के वहाँ कृष्ण देखने जाते हैं तभी कोई देव उसे हरण कर जाता है। देखें—वसुदेवहिण्डी पृ० ८२

और उसे सन्देह हुआ कि इसे विद्याएं प्राप्त हैं। लौटकर कालसंवर ने कंचन-माला से अपनी विद्याएं लौटाने को कहा, किंतु वह तो प्रद्युम्न को दे चुकी थी। पत्नी के दुराचार को समझकर उसने उसको भर्त्सना की और प्रायश्चित्त हेतु प्रद्युम्न के पास लौटा। तभी नारद जी आ गये जिन्हें प्रद्युम्न ने प्रज्ञप्ति विद्या से पहचान लिया और वह उनके साथ द्वारका के लिए चल पड़े।<sup>122</sup>

सत्यभामा प्रसन्न थी; आज उसके पुत्र के विवाह का दिन था। रुक्मिणी उदास थी। पति-पुत्र युक्त होते हुए भी उसे केश कटवा कर कुरूप बनना होगा। वह चिंतामग्न थी कि इसी समय द्वार पर लघु मुनि ने आकर कहा—मैं १६ वर्षीय दीर्घ तपस्वी हूँ, मुझे आहार दान दो। घर में केवल सिंह केसरिया मोदक थे, जिन्हें श्रीकृष्ण ही पचा सकते थे। मुनि (प्रद्युम्न) सारे मोदक खा गये।<sup>123</sup> इसी समय केश काटने को सत्यभामा की दासियां आ गयीं, किन्तु प्रद्युम्न ने सत्यभामा सहित इन दासियों को विद्याप्रयोग से केशरहित कर दिया। शर्त पूरी करवाने में सहायता के लिए सत्यभामा श्रीकृष्ण के पास गयी जिन्होंने बलराम को रुक्मिणी के पास भेजा। उन्होंने श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के पास देखा और लौट आये। रुक्मिणी को यह जानकर हर्ष हुआ कि मुनि उसी का पुत्र प्रद्युम्न है। विद्या से प्रद्युम्न ने दुर्योधन की राजकुमारी का अपहरण कर लिया। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से सहायता मांगी। श्रीकृष्ण ने कहा—मैं तो स्वयं १६ वर्षों से पुत्र वियोगी हूँ, सर्वज्ञ नहीं हूँ, मैं क्या सहायता करूँ? इस पर प्रद्युम्न ने अनुमति लेकर राजकुमारी को वहीं उपस्थित कर दिया और उसका भानु के साथ पाणिग्रहण करवाया।<sup>124</sup> इसके पूर्व अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट होने के पहले उसने माता रुक्मिणी को रथ में बिठाकर श्रीकृष्ण को ललकारा कि मैं इसका अपहरण कर ले जा रहा हूँ, तुममें शक्ति हो तो रोको। भीषण युद्ध हुआ और मुनिवेशधारी प्रद्युम्न ने श्रीकृष्ण को शस्त्रविहीन कर दिया। उनकी सेना बिखर गयी। श्रीकृष्ण का दक्षिण नेत्र

१२२. (क) त्रिषष्टि : ८/६/१३० से ४०४

(ख) प्रद्युम्नचरित्र : महासेनाचार्य

(ग) प्रद्युम्नचरित्र महाकाव्य सर्ग ५-८, पृ० १०४ ले० रत्नचन्द्र गणी।

(घ) प्रद्युम्नचरित्र अनुवाद : चारित्रविजय, पृ० १४५ तक

१२३. वसुदेवहिण्डी में मोदक के स्थान पर खीर का वर्णन आता है।

देखें—वसुदेवहिण्डी पृ० ६५ प्रथम भाग

१२४. त्रिषष्टि : ८/७/१-५

स्फुरित हुआ और उसी समय नारद ने श्रीकृष्ण को बताया कि यह तुम्हारा पुत्र प्रद्युम्न ही है जिसने सिद्ध कर दिया कि पुत्र पिता से बढकर है।<sup>125</sup>

**शाम्ब प्रसंग :—**

ईष्यविश सत्यभामा ने श्रीकृष्ण से कहा—मुझे प्रद्युम्न सा ओजस्वी पुत्र चाहिए। श्रीकृष्ण ने अष्टमभक्त युक्त पौषधव्रत ग्रहण किया और हरिनैगमेषी ने प्रकट होकर एक हार देते हुए कहा कि जिस स्त्री को यह हार पहनाकर आप भोग-वासना सेवन करेंगे उसे प्रद्युम्न सा पुत्र होगा। जब श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को निमंत्रित किया तो प्रद्युम्न प्रज्ञप्ति विद्या से सारा रहस्य जान गये। जांबवती को सारी बात बताकर उसे सत्यभामा का रूप दे दिया और श्रीकृष्ण के पास भेज दिया। वह धन्य हो गयी। प्रसन्न और तुष्ट मन से वह लौट आयी। तभी सत्यभामा पहुँची। श्रीकृष्ण आश्चर्य में पड़ गये। सोचा सत्यभामा कामोत्सुक हो पुनः आयी है। उन्होंने पुनः क्रीडा की। तभी प्रद्युम्न ने भेरी बजा दी। सत्यभामा का हृदय भय-कंपित हो गया श्रीकृष्ण जान गये कि प्रद्युम्न ने सत्यभामा को छल लिया है। अब इसे कायर पुत्र होगा। इसका हृदय भय से जो भयभीत हो गया था। कालांतर में जांबवती ने पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम सांब रखा गया।<sup>126</sup> और, सत्यभामा के पुत्र का नाम रखा गया भीरु कुमार।

**वैदर्भी प्रद्युम्न परिणय :**

रुक्मिणी अपने पितृगृह से बिगड़े संबंधों को सुधारना चाहती थी। भाई रुक्मि की पुत्री वैदर्भी के साथ प्रद्युम्न के विवाह को अच्छा साधन समझ उसने परिणय प्रस्ताव भेजा, किंतु रुक्मि ने अनादर पूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया। प्रद्युम्न ने माता को आश्वस्त किया की यह विवाह अवश्य होगा और माता की स्वीकृति से होगा। पूर्वभव के संबंधों के कारण प्रद्युम्न का सांब से विशेष स्नेह था। दोनों किन्नर और चाण्डाल रूप में भोजकट नगर पहुँचे। रुक्मि और वैदर्भी इनकी संगीत कला से प्रभावित हुए। राजकुमारी वैदर्भी ने पूछा—तुम द्वारका से आये हो तो क्या प्रद्युम्न को भी जानते हो? इनके मुख से प्रद्युम्न की प्रशंसा सुन वैदर्भी बड़ी तुष्ट और प्रसन्न हुई। राजा का हाथी मतवाला होकर विनाश करने लगा। राजा ने घोषणा की जो इस हाथी को वश में कर लेगा उसे मुंह-

१२५. त्रिषष्टि ८/६/४८-६०

१२६. उत्तरपुराण में संभव अथवा जाम्बकुमार नाम आता है।

मांगा पुरस्कार दिया जाएगा। प्रद्युम्न ने हाथी को नियंत्रित कर लिया। भोजन में कठिनाई बताकर राजकुमारी को पुरस्कार में मांग लिया। क्रुद्ध होकर राजा ने इन लोगों को बाहर निकाल दिया। विद्याबल से प्रद्युम्न ने नगर के बाहर भव्य महल बनवाया। एक रात्रि को प्रद्युम्न अपने वास्तविक रूप में प्रज्जप्ति विद्या के बल से वैदर्भी के कक्ष में पहुँच गया। वैदर्भी की सहमति से दोनों का गांधर्व विवाह हो गया। अपना नाम गोपनीय रखने का निर्देश देकर प्रद्युम्न चला गया। सौभाग्य और परिणय सूचक चिन्हों को देख सबने अनेक प्रश्न किये, पर वैदर्भी मूक बनी रही। कुपित होकर राजा ने किन्नर चांडाल को बुलाकर राजकुमारी को उन्हें दे दिया। नगर बाहर के महल में जब ये पहुँचे तो बंदीजन प्रशस्तिगान करने आये और सारा रहस्य खुला कि किन्नर और चांडाल तो प्रद्युम्न-सांव हैं। राजा ने इन्हें सादर अपने महल में बुलवाया और वैदर्भी-प्रद्युम्न परिणय संपन्न कराया।<sup>127</sup>

जरासंध युद्ध—

प्रवासी व्यापारियों से राजगृह के जीवयशा ने सुना कि समुद्र तट पर एक संपन्न नगरी द्वारका है जहाँ वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण का शासन है।<sup>128</sup>

१२७. (क) त्रिषष्टि : ८/७/३८/८६

(ख) प्रद्युम्नचरित्रम्—महासेनाचार्य सर्ग ८, ९. पृ० ८९-१७४

(ग) प्रद्युम्नचरित्र—रत्नचंद गणि

(घ) वसुदेवहिण्डी—पृ० १८ से १०० में प्रस्तुत कथा अन्य रूप से आयी है। विस्तारभय से उसे यहां नहीं लिखा गया है।

१२८. उत्तरपुराणानुसार जलमार्ग से यात्रा करते हुए मगध के कुछ व्यापारी मूल से द्वारका पहुँच गये और वहां के वैभव से चकित रह गये। उन्होंने वहां से कुछ रत्न खरीदे और राजगृह आकर ये रत्न उन्होंने जरासंध को भेंट किए। अमूल्य रत्न देखकर जरासंध ने पूछा कि ये रत्न कहाँ से लाए गये हैं, तो व्यापारियों ने द्वारावती नगरी और श्रीकृष्ण का वर्णन किया।

देखें—७१/४२-६४ पृ० ३६८-३७९

हरिवंशपुराण के अनुसार जरासंध राजा के पास अमूल्य मणिराशियों के विक्रयार्थ एक वणिज पहुँचा। ५०/१-४

पांडवपुराण (शुभचन्द्राचार्य द्वारा रचित) के अनुसार एक विद्वान ने जरासंध को रत्न अर्पित किए और उनसे ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण यादवकुल सहित जीवित हैं। देखें—१९/८/११ पृ० ३९

प्रतिशोध की ज्वाला में जीवयशा फंक उठी कि, मेरे पति का हत्यारा अब तक जीवित कैसे है? जरासंध ने पुत्री को शांत करते हुए तुरन्त विशाल सेनासहित प्रयाण किया। नारद ने श्रीकृष्ण को युद्ध की पूर्व सूचना दे दी और उन्होंने अरिष्टनेमि से युद्ध का परिणाम जानना चाहा। अरिष्टनेमि ने मुस्कुरा कर “ओम्” का उच्चारण कर दिया, जो युद्धार्थ उनकी सहमति भी थी और श्रीकृष्ण-विजय का पूर्व संकेत भी।<sup>129</sup>

युद्धोत्साहित श्रीकृष्ण सैन्य संगठन करने लगे।<sup>130</sup> प्रयाण कर मथुरा से ४५ योजन दूर सेनपत्नी में शिविर स्थापित किया गया।<sup>130A</sup> यहीं कुछ विद्याधरों ने एकत्रित होकर श्रीकृष्ण से सहयोग का प्रस्ताव किया और कहा—वासुदेव, प्रद्युम्न, शांब आदि को हमारे साथ जरासंध के सामने भेज दिया जाये। हम उसके खेचर विद्याधरों को रणभूमि तक पहुंचने से रोककर माया के प्रभाव से युद्ध की रक्षा कर लेंगे। ऐसा किया भी गया। जरासंध की सेना ने यादव शिविर से ४ योजन दूर अपना शिविर लगाया। श्रीकृष्ण की शक्ति से इस सेना में बड़ा आतंक था। मंत्री हंसक ने जरासंध से कहा कि आक्रमण के पूर्व शत्रु का बलाबल हमें आंकना चाहिए क्योंकि कृष्ण पक्ष बड़ा सशक्त है। जरासंध ने मंत्री को फटकार दिया। कहा कि मैं यादवों का सर्वनाश कर दूंगा।

जरासंध ने एक हजार आरे वाला चक्रव्यूह रचा, जिसके केंद्र में वह स्वयं अपने पुत्रों व ५००० राजाओं सहित रहा। प्रत्येक आरे में १०० हाथी, २०० रथ, ५०० अश्व और १६००० सैनिकों सहित एक-एक राजा और चक्र की परिधि में ६२५० राजाओं को नियुक्त किया गया। पृष्ठभाग में गांधार व सैधवसेना, दक्षिण में १०० कौरव भी नियुक्त किये गये। इसके आगे शकट व्यूह रचा गया। यादवों ने गरुड व्यूह रचा। अरिष्टनेमी युद्ध में उनके साथ रहे। शकेन्द्र ने अपना विशाल रथ भी सारथी मातलि के साथ भेजा।

१२६. पांडवपुराण—१६/१२-१४ पृ० ३६

१३०. त्रिषष्टि : ८/७/१६६.

१३०अ. श्वेताम्बर परंपरा के जैन ग्रन्थों के अनुसार अरिष्टनेमि द्वारा यह स्वीकृति इस कारण संभव है कि उस समय वे ३ ज्ञान के धारक थे और गृहस्थाश्रम में थे। वे जानते थे कि प्रतिवासुदेव के साथ वासुदेव का युद्ध भी और उसमें वासुदेव की विजय भी सर्वथा सुनिश्चित रहती है।

प्रचंडता के साथ ही समरारंभ हुआ। दोनों पक्षों के बीच विकट घात-प्रतिघात होने लगा। आरंभ में ही यादवों के सशक्त प्रहार से तिल-मिलाकर जरासंध सैन्य भाग खड़ा हुआ, पर क्रोध व प्रतिहिंसा का साक्षात रूप जैसे बने हुए जरासंध ने रणांगण में आकर जो प्रहार किये तो समुद्र-विजय के अनेक पुत्र धराशायी हो गये। जरासंध के २८ पुत्रों का बलराम ने वध कर दिया तो उन्हें जरासंध ने गदा प्रहार से अचेत कर दिया। श्रीकृष्ण ने जरासंध के ६ पुत्रों का वध कर दिया तो उसने इतना प्रचंड आक्रमण किया कि एक बार तो श्रीकृष्ण के वध हो जाने का प्रवाद भी सेना में व्याप्त हो गया। मातली के अनुरोध पर अरिष्टनेमि ने पौरंदर शंख-ध्वनित कर शत्रु-पक्ष को कंपित कर दिया<sup>131</sup> और बाणवर्षा से व्यापक संहार किया। प्रतिवासुदेव का वध वासुदेव के हाथों ही होना चाहिये इस मर्यादानुसार उन्होंने स्वयं जरासंध का वध नहीं किया।<sup>132</sup> अब श्रीकृष्ण व जरासंध आमने-सामने थे। जरासंध ने अनेक विकट अस्त्र-शस्त्र जब विफल रहे तो उसने अमोघ अस्त्र चक्र का प्रयोग किया, पर वह भी श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा कर उनके ही हस्तगत हो गया।<sup>133</sup> उसी समय घोषणा हुई कि नौवां वासुदेव उत्पन्न हो गया है। जब श्रीकृष्ण के सावधान करने पर भी जरासंध सन्मार्ग पर नहीं आया तो श्रीकृष्ण ने चक्रप्रहार से जरासंध का शिरच्छेद कर दिया।<sup>134</sup> सर्वत्र श्रीकृष्ण की जय-जयकार होने लगी।<sup>135</sup>

१३१. त्रिषष्टि : ८/७/४२०-४२६

१३२. त्रिषष्टि : ८/७/४३२

१३३. (क) त्रिषष्टि : ८/७/४४६-४५७ (ख) हरिवंशपुराण : ४२/६७/६०१

१३४. वैदिक परंपरा में युद्ध का वर्णन भिन्न ही प्रकार का है। महाभारत के अनुसार युद्ध नहीं होता, अपितु केवल जरासंध वध होता है। कंस वध के पश्चात् जरासंध श्रीकृष्ण को अपना शत्रु मान बैठा था। उसने १७ बार मथुरा पर आक्रमण किया, किंतु विजय उसे नहीं मिली। मथुरा की प्रजा को व्यर्थ ही में पीड़ित देखकर श्रीकृष्ण ने यह नगर त्यागकर द्वारका का निर्माण किया। श्रीकृष्ण इस तथ्य से अवगत थे कि युद्ध में जरासंध का वध संभव नहीं है। अतः वे भीमसेन व अर्जुन के ब्राह्मण वेश में जरासंध के दरबार में पहुंचे। राजा ने स्वागत कर इनके आगमन का प्रयोजन पूछा। श्रीकृष्ण ने शेष दो ब्राह्मणों के विषय में कहा कि अभी इनका मौनव्रत है। अर्द्धरात्रि को वार्ता संभव होगी, इन्हें सादर यज्ञशाला में ठहराया गया। अर्द्धरात्रि को जरासंध यज्ञशाला में पहुंचा। उसने कहा—आप लोगों का तेज देखते हुए आप ब्राह्मण तो प्रतीत नहीं होते? श्रीकृष्ण ने तब तीनों का वास्तविक परिचय देते हुए



जरासंध की ओर से युद्ध करने वाले राजाओं की क्षमा याचना पर श्रीकृष्ण ने उन्हें अभय दान किया, जरासंध के पुत्रों का भी स्वागत किया। उसके एक पुत्र सहदेव को मगध राज्य के चतुर्थांश का स्वामी बनाया। समुद्रविजय सुत महानेमि को शौर्यपुर का, हिरण्याभपुत्र रुक्मनाभ को कौशल का और उग्रसेन पुत्र धर को मथुरा का राज्य सौंपा गया। शत्रुसंहार असंभव हो जाने पर प्रतिज्ञानुसार जीवयश ने अग्निप्रवेश कर लिया।<sup>136</sup> यादवों ने भव्य विजयोत्सव मनाया और सेनपल्लि का नामकरण “आनंदपुर” के रूप में किया गया।<sup>137</sup> श्रीकृष्ण विजयी होकर द्वारका पहुंचे। यहां पर श्रीकृष्ण का अर्धचक्रेश्वर के रूप में अभिषेक किया गया।

### बाणासुर वध :

बाणासुर श्रीनिवासपुर का खेचरपति था जिसकी अनिद्य-सुंदरी कन्या उषा थी। उसकी आराधना से प्रसन्न हो गौरीविद्या ने उसे बताया

अपना प्रयोजन स्पष्ट किया, और कहा कि तूने क्षत्रिय राजाओं को बंदी बनाया है और अब उनकी महादेव के आगे बलि देना चाहता है। इसी कारण हम तेरा वध करने आए हैं। तू क्षत्रिय होकर क्षत्रियों का विनाश करना चाहता है। और, हम कष्टित जनों का त्राण करते हैं। या तो बंदी नरेशों को मुक्त कर दे या संघर्ष के लिए तत्पर हो जा। उसने प्रथम शर्त स्वीकार न की। तब श्रीकृष्ण ने उससे विकल्प मांगा कि हम तीनों में से किसके साथ युद्ध करना चाहता है? जरासंध ने भीमसेन को चुना। दोनों के मध्य मल्लयुद्ध आरंभ हुआ। दोनों ने अपने-अपने अनेक कौशल दिखाये। १४ दिवस से युद्ध अनिर्णित अवस्था में अविरल रूप से चलता रहा। चौदहवें दिवस जरासंध थक कर शिथिल हो गया था। श्रीकृष्ण ने भीम को प्रेरित किया कि थकित शत्रु का सुगमता से वध किया जा सकता है। भीम ने अपनी मुजाओं पर जरासंध को उठाकर चारों ओर घुमा दिया और उसको चक्कर लगाकर पृथ्वी पर दे मारा। घुटने के प्रहार से उसकी पीठ की हड्डी तोड़ दी; उसे पृथ्वी पर खूब रगड़ा और अंततः उसकी टांगे पकड़कर चीर डाला। इस प्रकार जरासंध यमलोकगामी हो गया।

श्रीकृष्ण ने बंदी राजाओं को मुक्त किया और जरासंध के पुत्र सहदेव को राज्यारूढ कर इंद्रप्रस्थ लौट गए।

देखें—महाभारत सभाषर्व अ० १६ से २२ तक।

१३५. (क) : त्रिषष्टि ८/७/४५३-४५७ (ख) हरिवंशपुराण : ५२/८३-८४ पृ० ६०२

१३६. (क) त्रिषष्टि : ८/८ १३७. (क) वही : ८/८/२८

(ख) हरिवंशपुराण : ५३/४१-४२ पृ० ६०६

कि श्रीकृष्ण का पौत्र, प्रद्युम्न का पुत्र अनिरुद्ध उसका पति होगा और वह अनिरुद्ध के अनुराग में खो गयी। गौरी विद्या के प्रिय शंकरदेव ने बाणासुर को वरदान दिया था कि वह सभी युद्धों में अजेय रहेगा। गौरी के सतर्क करने पर शंकरदेव ने वरदान में जोड़ दिया था कि “स्त्री विषयक युद्ध के अतिरिक्त”। बाण उषा के लिए विशिष्ट वर की खोज में था। उषा अनिरुद्ध के स्वप्नों में खोयी रहती थी। विद्याधरी चित्रलेखा रात्रि को सोये अनिरुद्ध को उठा लायी और उषा ने उसके साथ गांधर्व विवाह कर लिया। घोषणापूर्वक जब अनिरुद्ध उषा का हरण कर ले जाने लगा तो बाण ने घेर लिया। युद्ध हुआ, पर अनिरुद्ध अजेय रहा तो बाणासुर ने उसे नागपाश में बांध लिया। द्वारका में प्रज्ञप्ति विद्या से का पता चलने पर तत्काल अनिरुद्ध श्रीकृष्ण, बलराम व प्रद्युम्न वहां पहुंच गये। बाण ने कहा—एक चोर को बचाने दो चोर (पिता और पितामह) आये हैं। अंततः युद्ध हुआ जो विद्याओं और शस्त्रों के मध्य युद्ध था। वासुदेव श्रीकृष्ण ने बाणासुर का वध कर दिया और उषा-अनिरुद्ध को लेकर द्वारका आ गये और उनका विवाह हुआ।

**अरिष्टनेमि : प्रव्रज्याग्रहण—**

भगवान् अरिष्टनेमि २२ वें तीर्थंकर थे जो समुद्रविजय के पुत्र थे। इस प्रकार वे श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण द्वारा कंस-संहार के समय वे आठ वर्ष के थे।<sup>138</sup> जरासंध वध कर द्वारकाधीश श्रीकृष्ण त्रिखंडेश्वर हो गये और यादवजन द्वारका निवासी हो गये थे।<sup>139</sup> अरिष्टनेमि भी यहीं विकसित हो अब युवा हो गये थे। एक दिन वे राज्य-शस्त्रागार में गये और सुदर्शन को उंगली पर धारण कर लिया, शारंग धनुष को मोड़ दिया, कौमुदी गदा को कंधे पर धारण कर लिया और पांचजन्य शंख को फूंक कर समस्त द्वारका को थरथरा दिया।<sup>140</sup> मान्यता थी कि यह सारा पराक्रम श्रीकृष्ण के लिए ही संभव है—जो मिथ्या हो गयी थी। श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि के बल से चकित रह गये। एक दूसरे की फैली भुजा को झुकाने में भी अरिष्टनेमि विजयी रहे।<sup>141</sup> श्रीकृष्ण ने कहा—बन्धु ! जैसे बलराम मेरी शक्ति के आगे सारे संसार को तृणवत् मानते हैं, वैसे ही अब मैं तुम्हारी

१३८. जातो अट्ठवरिसो, एत्थंतरेऽथ हरिणा कसे विणिवाइए।

उत्तराध्ययन सुखबोधा, पृ० २७८

१३९. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र—पर्व ८ सर्ग ५ से ८

(ख) चउप्पन-महापुरिस-चरियं

(ग) सुखबोधा पृ० २७८.

१४०. भवभावना पृ० १९७

१४१. उत्तराध्ययन सुखबोधा-२७८

शक्ति के समक्ष संसार को तिनके सा मानता हूँ ।<sup>142</sup> वे अरिष्टनेमि का आदर करने लगे और उन्हें अपनी राज्यसत्ता के लिए चिन्ता भी होने लगी जो इस घोषणा से समाप्त हुई कि अरिष्टनेमि कुमारावस्था में ही प्रव्रज्या-ग्रहण कर लेंगे । शक्ति परीक्षण का यह प्रसंग हरिवंशपुराण में अन्य प्रकार से भी वर्णित है ।<sup>143</sup>

#### अनासक्त अरिष्टनेमि और राजीमति

अरिष्टनेमि आरम्भ से ही चिन्तनशील, गंभीर और अनासक्त स्वभाव के थे और आयु के साथ-साथ उनकी इस प्रवृत्ति में भी विकास होता गया । उनकी जगद्विमुखता से माता-पिता चिंतित थे । उन्होंने अनेक बार उपयुक्त विवाह प्रस्ताव भी रखे, किंतु दीक्षोत्सुक पुत्र अस्वोकार ही करता रहा । अरिष्टनेमि के पराक्रम को मंद करने के प्रयोजन से श्रीकृष्ण भी उनके परिणय के पक्ष में थे । इस तर्क के साथ उन्होंने अरिष्टनेमि से विवाहार्थ आग्रह किया कि आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने भी विवाह किया था तथा दांपत्य जीवन बिताया था । अंततः वे सहमत हो गये और श्रीकृष्ण ने भोजवंशी राजा उग्रसेन की कन्या राजीमती के साथ उनका संबंध स्थिर कर दिया । यथासमय वरयात्रा आरम्भ हुई । वर अरिष्टनेमि का रथ जब कन्या के द्वार के समीप पहुँचा, उन्होंने अनेक पशु-पक्षियों को का करुण, आर्त स्वर सुना । पूछने पर ज्ञात हुआ कि बारात के सामिष भोजन के लिए अनेक पशु पक्षियों को समीप ही में एकत्रित कर रखा है । करुणार्द्र अरिष्टनेमि ने पशु पक्षियों को मुक्त करा दिया और तोरण से ही लौट कर द्वारका पहुँच गये । उत्सव अपूर्ण और वातावरण शोकाकुल हो गया ।<sup>144</sup> अरिष्टनेमि ने मांसाहार के विरुद्ध सफल विद्रोह जन-जन में फैला दिया । द्वारका में एक वर्ष तक वर्षादान कर उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली । राजीमती ने भी संयम ग्रहण किया । वैदिक परंपरा में राधा और कृष्ण को जो स्थान प्राप्त है, जैन परंपरा में वैसा ही स्थान राजीमती और अरिष्टनेमि का है । राजीमती के मन में भौतिक वासना के लिए कोई स्थान न था । वह

१४२. (क) त्रिषष्टि ८/६, २५ से २६ पृ० १३०-१३६ । (ख) उत्तराध्ययन मुखबोधा,

प० २७८ (ग) भवभावना ३०२६ (घ) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका ।

१४३. हरिवंशपुराण : आचार्य जिनसेन पृ० ५५

१४४. उत्तर पुराण में वर्णित है कि अरिष्टनेमि के मन में करुणा को प्रबल बनाकर उन्हें विरक्त कर देने के प्रयोजन से स्वयं श्रीकृष्ण ने ही बाड़े में पशुओं को एकत्रित करवाया था ।

देह की नहीं देही की उपासिका थी। यही कारण है कि वह भी अरिष्टनेमि के ही मार्ग पर बढ़ी और उनसे भी पहले मुक्त हो गयी।<sup>145</sup>

### द्रौपदी स्वयंवर कथा

राजा द्रुपद की सुता द्रौपदी जैन परम्परा में सती-शिरोमणि के रूप में मान्य है। पांचाल नरेश की राज्यकन्या होने के कारण उसे “पांचाली” भी कहा जाता है। उसकी माता का नाम चूलनी था। द्रौपदी स्वयंवर हेतु अनेक राजा-युवराजों को आमंत्रित किया गया था। प्रथम निमंत्रण श्रीकृष्ण और दशार्हों को भेजा गया था।<sup>146</sup> वे द्रुपद की राजधानी कंपिलपुर पहुँचे। अनेक शूरवीर नरेश उपस्थित थे किंतु इससे अविचलित द्रौपदी ने वरमाला पाँचों पांडवों को धारण करा दी।<sup>147</sup> एक कन्या द्वारा पाँच पुरुषों का वरण यह अद्भुत और अभूतपूर्व प्रसंग था। क्या यह अनीतियुक्त नहीं है? अब राजा द्रुपद क्या करे? नीतिमान श्रीकृष्ण के मत की ही प्रतीक्षा सभी करने लगे। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के कृत्य में औचित्य का अनुमोदन कर दिया और द्रौपदी का विवाह पाँचों पांडवों के साथ संपन्न हो गया।<sup>148</sup>

श्रीकृष्ण के इस मत की कि द्रौपदी ने कोई अनुचित कार्य नहीं किया है, पुष्टि भी तत्काल हो गयी, जब एक चारण लब्धिधारी श्रमण ने भी यह स्पष्ट किया कि कर्मफलानुसार द्रौपदी को ऐसा ही करना था, चाहे यह लोक परंपरानुरूप न लगे। उसने पूर्वभव में निदान ही ऐसा किया था।

१४५. भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन पृ० ६४ ले० देवेन्द्र मुनि शास्त्री।

१४६. (क) ज्ञातासूत्र अध्याय १६ (ख) त्रिषष्टि : ८/१०

१४७. (क) ज्ञातासूत्र अ० १६. (ख) पांडवचरित्र—देवप्रभसूरि संगं ४

१४८. वैदिक परंपरा में भी द्रौपदी के ५ पति तो हैं, किंतु उसने स्वयंवर सभा में पाँचों का वरण नहीं किया था। स्वयंवर में राधावेध की कसौटी रखी गयी थी, और अर्जुन उसमें सफल रहा था। द्रौपदी ने अर्जुन को ही वरमाला पहनाई थी। अर्जुन ने माता कुंती से कहा कि मां मैं एक असाधारण वस्तु लेकर आया हूँ। मां ने इस बात को सहजता के साथ लिया और अर्जुन से कहा कि लाए हो तो पाँचों भाई उसे बांट लो।

पांडव चरित्र में देवप्रभसूरि ने भी राधावेध का चित्रण किया है। अर्जुन के सफल रहने पर द्रौपदी ने उसे वरमाला पहनाई। किंतु, द्रौपदी का मन पाँचों पांडवों के प्रति अनुरक्त था, इस कारण माला पाँचों के गले में दिखाई देने लगी।

मुनिराज ने द्रौपदी की पूर्वभव कथा भी कही कि, कभी चंपानगरी में तीन ब्राह्मण सहोदर रहा करते थे। एक भाई सोमदत्त के यहाँ तीनों का भोजन था और उसकी पत्नी नागश्री ने कई व्यंजन तैयार किये, पर तुम्ब्री की शाक कड़वी होने के कारण नहीं रखी। उसने वह शाक धर्मरुचि अणगार को बहरा दी। आचार्य घोर ने विकृति भाँप कर किसी निर्दोष स्थान पर शाक डाल देने का आदेश दिया। थोड़ा सा शाक भूमि पर गिरा और अनेक चींटियाँ मर गयीं तो धर्मरुचि को अनुकम्पा हो आयी और शेष शाक स्वयं खाकर उन्होंने समाधिपूर्वक देह त्याग दी। इस घटना से सभी नागश्री की भर्त्सना करने लगे। पति ने उसे घर से ही निकाल दिया। अनेक कष्ट पाकर जब उसकी मृत्यु हुई तो नरक में गयी, फिर चांडालिनी बनी। यह क्रम चलता रहा। एक भव में वह सागरदत्त सेठ की पुत्री सुकुमारिका के रूप में जन्मी। पिता ने जिनदत्त के पुत्र सागर के साथ सुकुमारिका का विवाह कर दिया और सागर को घर—जवाई रख लिया। सुकुमारिका से सागर को सुख न मिला। उसका देह तो अंगारों की भाँति दाहक था। आतंकित सागर सुकुमारिका को त्याग कर चला गया। कन्या का विवाह तब अन्य युवक से हुआ और वह भी छोड़ भागा। पिता ने यह परिणाम पुत्री के पापदय का माना। सुकुमारिका ने साध्वी गोपालिका के पास संयम ग्रहण कर लिया और छट्ठ तप आरम्भ किया। गुरु की अनुमति न होने पर भी वह उद्यान में सूर्य आतापना लेने लगी। उद्यान में वेश्या देवदत्ता अपने पाँच प्रेमियों के संग क्रीड़ा कर रही थी। साध्वी के चंचल मन में वासना अंगड़ाइयाँ लेने लगी। उसने निदान किया कि इस तपस्या के फल-स्वरूप मैं भी पाँच पतियों वाली बनूँ। साध्वी का जीव ही वर्तमान में द्रौपदी के रूप में है। मुनिराज ने कहा कि लोकरीति के विरुद्ध आचरण से कि यह पाँच पतियों वाली है, इसकी निंदा तो हो सकती है, किंतु पूर्वकृत तपस्या के फलस्वरूप उसे महान सती का गौरव भी प्राप्त होगा।

कौरवों के मन में राज्य-लोभ जागा और पांडवों से राज्य छीन लिया। राज्य को पुनः हस्तगत करने के लिये युधिष्ठिर ने द्यूत का सहारा लिया। उन्होंने द्रौपदी को भी जुए के दांव पर लगा दिया और हार गये। दुर्योधन ने द्रौपदी को तो लौटा दिया पर समस्त राज्याधिकार उसी के पास रह गये। पांडवों को वनवास मिला। वनवास की अवधि पूर्ण हुई और पांडव द्वारका पहुंचे और सुखपूर्वक रहने लगे। दशार्हों की पुत्तियों से इनके विवाह भी हुए।

**द्रौपदी-हरण : श्रीकृष्ण द्वारा उद्धार :**

कलहप्रिय नारद जी ऊपर से शांत और गंभीर, भद्र और विनीत तो लगते थे, किंतु वे कलुषित हृदय भी कम न थे।<sup>150</sup> किसी समय वे पांडवों के राजभवन में आये। माता कुंती और पांडवों ने उनका अतिशय आदर सत्कार किया, किंतु उन्हें असंयत, अविरत, अप्रतिहत, प्रत्याख्यात, पापकर्मा मानकर द्रौपदी ने ऐसा नहीं किया, न ही उनकी पर्युपासना की।<sup>151</sup> इस उपेक्षा से रुष्ट नारद जी ने सोचा—द्रौपदी गर्विष्ठा हो गयी है, उसका अप्रिय करना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।<sup>152</sup> उन्होंने सोचा, पतिवियोग से बड़ा कोई कष्ट किसी सती नारी के लिए नहीं हो सकता, किंतु उन्हें यह विश्वास भी था कि श्रीकृष्ण के भय से दक्षिण भरतार्द्ध का कोई राजा द्रौपदी का अपहरण करने को तत्पर न होगा। अतः वे धातकी खण्ड के भरत क्षेत्र की राजधानी अमरकंका पहुंचे, जहां पद्मनाभ नामक राजा का शासन था। उसके अंतःपुर में ७०० सुंदरी रानियां थीं। अपने इस वैभव पर गर्वित होते हुए उसने पूछा, ऋषिराज, आपने ऐसी सुंदरियां अन्यत्र भी कभी देखी हैं?<sup>153</sup> उपहास के स्वर में नारद जी ने उत्तर दिया कि यदि तुम इसे ही सुंदरता मानते हो तो फिर यह जानते ही नहीं कि सुंदरता कहते किसे हैं? पांडव रानी द्रौपदी के सौंदर्य के सामने तुम्हारी रानियां तो कुछ भी नहीं हैं। द्रौपदी प्राप्ति की कामना से प्रेरित राजा पद्मनाभ ने सांगतिक देव (पातालवासी) को आज्ञा दी; जो सोती हुई द्रौपदी को अमरकंका-राजभवन में ले आया। प्रातः जागृत होने पर एक परपुरुष को समीप पाकर वह सकुचा गयी और परिस्थिति को समझ न सकी। राजा ने उसे आश्वस्त करते हुए अपना वैभव एवं पराक्रमपूर्ण परिचय दिया और आग्रह किया कि द्रौपदी उसे अपना ले। आसन्न संकट से अवगत हो द्रौपदी ने राजा को सचेत किया कि तुमने छलपूर्वक मेरा अपहरण किया है। तुम्हारी कुशलता इसी में है कि

१५०. इमं च णं कच्छुल्लणारए दंसणेणं अइभइए विणीए अंतो अंतोय कलुसहिए ।

—ज्ञाताधर्म अ० १६ पृ० ४६१

१५१. (क) ज्ञाताधर्म अध्याय १६ पृ० ४६४

(ख) त्रिषष्टिशलाका ८/१०/२

(ग) हरिवंशपुराण के अनुसार द्रौपदी आभूषण धारण करने में व्यस्त थी, अतः उसने नारद की ओर देखा नहीं—हरिवंशपुराण ५४/५

१५२. (क) ज्ञाताधर्म कथा अ. १६ (ख) हरिवंशपुराण ५४/६-७; त्रिषष्टि ८/१०/३

१५३. (क) त्रिषष्टिशलाका : ८/१०/५-६ (ख) हरिवंशपुराण ५४/८-९

मुझे पुनः हस्तिनापुर के राजभवन में पहुंचा दो, अन्यथा श्रीकृष्ण तुम्हारा सर्वनाश कर देंगे। वे मेरे भ्राता हैं।<sup>154</sup> दंभी पद्मनाभ ने अट्टहास-पूर्वक कहा कि श्रीकृष्ण का इस धातकी खण्ड में कोई वश नहीं है। यहां के वासुदेव कपिल हैं, श्रीकृष्ण नहीं। इस लंपट से आत्मरक्षा के लिए नीति ही सहायक हो सकती है—ऐसा मान कर द्रौपदी ने राजा से कहा कि, स्त्री अपने पति के प्रेम को इतना शीघ्र कैसे भूल सकती है? मुझे कुछ अवसर दो। उसने एक माह की अवधि मांगी।<sup>155</sup> इस अवधि में यदि मुझे कोई लेने नहीं आया तो मैं आपकी हो जाऊँगी। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। द्रौपदी ने अभिग्रह लिया कि मैं पति के बिना एक माह तक भोजन नहीं करूँगी।

हस्तिनापुर में द्रौपदी की खोज होने लगी। असफल पांडवों ने माता कुंती से निवेदन किया कि द्वारका जाकर वे श्रीकृष्ण से सहायता मांगें। श्रीकृष्ण ने पक्का आश्वासन दिया। कालांतर में नारद जी द्वारका आए तो श्रीकृष्ण ने कहा—द्रौपदी आज कल किसी अज्ञात स्थल पर है। आप सर्वत्र विहारी हैं। शायद आपने उसे कहीं देखा हो? श्रीकृष्ण को उनसे पता चल गया कि द्रौपदी का अपहरण कर उसे अमरकंका ले जाया गया है। उन्होंने इस आशय का संदेश हस्तिनापुर भेजकर पांडवों को सूचना दी कि वे चतुरंगिणी सेनासहित वैतालिक समुद्र तट पर मेरी प्रतीक्षा करें। वहां पहुंचने पर समुद्र पार करने की समस्या आयी। श्रीकृष्ण ने लवणसमुद्र के अधिष्ठायक देव सुस्थिर की आराधना कर उससे आग्रह किया कि वह उनके रथों को अमरकंका पहुंचा दे। समुद्र ने देव के प्रभाव से मार्ग दे दिया और छहों रथ अमरकंका पहुंच गये। श्रीकृष्ण की आज्ञा से उनका सारथी दारुक पद्मनाभ के पास पहुंचा और अत्यंत कठोरता के साथ उसे अपने स्वामी का संदेश देते हुए कहा कि, आज अगर तू जीवित रहना चाहता है तो द्रौपदी देवी को वासुदेव श्रीकृष्ण को सौंप दे, अन्यथा युद्ध के लिये बाहर आ।<sup>156</sup>

अहंकारी पद्मनाभ ने द्रौपदी को लौटाने से इनकार कर दिया और युद्ध की चुनौती स्वीकार कर ली। वह सेनासहित नगर से बाहर आया।

१५४. ज्ञाताधर्मकथा, हरिवंशपुराणादि के अनुसार श्रीकृष्ण द्रौपदी के पति के भाई थे।

१५५. (क) हरिवंशपुराण में भी एक मास की चर्चा है। किंतु ज्ञाताधर्म कथा में यह अवधि ६ मास की है। द्रौपदी षष्ठ-षष्ठ आयंबिल तप करती हुई रहने लगी। देखें—ज्ञाताधर्मकथा-अ० १६.

(ख) त्रिषष्टि ८/१०/२०

(ग) हरिवंशपुराण ५४/३६

१५६. ज्ञाताधर्म० अ० १६

श्रीकृष्ण ने पांडवों से पूछा कि युद्ध मैं कलूँगा या तुम ? पांडवों ने कहा हम ही युद्ध करेंगे । आप देखिये । आज या तो हम हैं, या राजा पद्मनाभ । श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम यह कहते हो कि राजा हम हैं, पद्मनाभ नहीं तो तुम्हारी यह गति न होती । मैं राजा हूँ, पद्मनाभ नहीं—यह प्रतिज्ञा कर मैं युद्ध करता हूँ, तुम देखो ।<sup>157</sup>

यह कह कर रथारूढ़ श्रीकृष्ण पद्मनाभ के समक्ष आये ।<sup>158</sup> उन्होंने पांचजन्य शंख फूँका तो शत्रुसैन्य का तृतीय भाग नष्ट हो गया । शारंग धनुष के टंकार से अन्य तृतीयांश छिन्न-भिन्न हो गया । आतंकित पद्मनाभ नगर में घुस गया और द्वार बंद करवा दिये । श्रीकृष्ण वैक्रियलब्धि से विशाल नृसिंह रूप में विकुर्वित हुए और उन्होंने घोर गर्जन सहित पृथ्वी पर पाद प्रहार किया । दुर्ग की प्राचीरें ध्वस्त हो गयीं । नगर में बाहि-बाहि मच गयी ।<sup>159</sup> भयातुर पद्मनाभ स्नान कर गीले वस्त्रों में नारियों को साथ लेकर द्रौपदी सहित श्रीकृष्ण के पास आया और क्षमा याचना पूर्वक द्रौपदी को लौटा दिया ।<sup>160</sup>

उस समय धातकी खण्ड में मुनिसुव्रत का समवसरण चल रहा था जिसमें कपिल वासुदेव भी उपस्थित था । पांचजन्य की ध्वनि से जब वह चौंक उठा तो<sup>161</sup> मुनिराज ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा कि यह भरत के वासुदेव श्रीकृष्ण की शंखध्वनि है और द्रौपदी-अपहरण का वृत्तांत कह सुनाया । कपिल श्रीकृष्ण से भेट करने आतुर हो उठे, किंतु दो वासुदेवों का मिलन संभव नहीं है । वे रथारूढ़ हो समुद्र तट पर आये और दूर से शंखध्वनि की । उत्तर में श्रीकृष्ण ने पांचजन्य आस्फुरित किया । दोनों महान शंखध्वनियों का मिलन हुआ ।<sup>162</sup> तदनंतर कपिल वासुदेव ने पद्मनाभ को

१५७. त्रिषष्टि : ८/१०/५१

१५८. जैन ग्रंथों में यह भी चर्चा है कि पहले पांडवों ने युद्ध किया पर पद्मनाभ के परक्रम के समक्ष वे टिक न पाये तब पांडवों के अनुरोध पर श्रीकृष्ण ने युद्धारंभ किया ।—जैन श्रीकृष्ण कथा : मधुकर मुनि पृ० २६३.

१५९. त्रिषष्टिशलाकापुरुष : ८/१०/४६-५८

१६०. (क) ज्ञाताधर्मकथा अ० १६ (ख) त्रिषष्टिशलाका : ८/२०/६०-६३

(ग) पांडवचरित्र सर्ग १७ पृ० ५३७-५४६ । (घ) हरिवंशपुराण ५४/५२/५१.

१६१. (क) ज्ञाताधर्मकथा अ० १६ (ख) त्रिषष्टि : ८/१०/६५-६६

१६२. वही ८/१०/६८-७३



प्रताडित कर अपदस्थ कर दिया और उसके पुत्र को शासक बना दिया ।<sup>163</sup>

रथमर्दन नगर व पाण्डुमथुरा की स्थापना :

द्रौपदी उद्धार के पश्चात् अमरकंका से लौटते समय कृष्ण सुस्थिर देव से भेंट करने को पीछे रह गये और पाण्डवों ने नौका से लवणसमुद्र की महानदी गंगा को पार कर लिया और नौका को श्रीकृष्ण के लिए वापस न भेज कर उसे छिपा दिया ।<sup>164</sup> श्रीकृष्ण भुजाओं से जल चीरते हुए धारा पार करने जगे । ६२ योजन चौड़ी धार थी । श्रीकृष्ण थक गये । गंगा ने स्थल बना दिया जिस पर कुछ विश्राम कर उन्होंने शेष धारा को पार किया । पाण्डवों की शक्ति के विषय में उनके मन में प्रशंसा का भाव था कि उन्होंने बिना सहारे के धारा को पार कर लिया । जब उन्हें ज्ञात हुआ कि पाण्डवों ने नौका से धारा पार की, तो पूछा कि मेरे लिए नौका क्यों नहीं भेजी ? पाण्डवों ने कहा कि हम आपकी शक्ति—परीक्षा लेना चाहते थे ।<sup>165</sup> श्रीकृष्ण ने रोषपूर्वक कहा कि द्रौपदी उद्धार के पश्चात् भी परीक्षा शेष रह गयी थी क्या ? देखो मेरी शक्ति—यह कह कर एक लोहदंड के प्रहार से उन्होंने रथ नष्ट कर दिये । यहां पर बाद में रथमर्दन नगर बस गया ।<sup>166</sup> द्वारका प्रस्थान के पूर्व श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को निर्वासन का आदेश दे दिया ।<sup>167</sup>

हस्तिनापुर पहुँच कर पाण्डव बड़े चिंतित रहे कि अब निर्वासित होकर वे कहां रहें ? समस्त दक्षिण भरतार्द्ध के स्वामी तो श्रीकृष्ण हैं । उससे बाहर कौन सी ठौर है ? उन्होंने माता कुंती को इस समाधान के लिए श्रीकृष्ण के पास द्वारका भेजा ।<sup>168</sup> श्रीकृष्ण ने समाधान दिया कि पाण्डव दक्षिण दिशा में वैताढ्य तट पर पांडु मथुरा बसाकर मेरे प्रच्छन्न सेवक बनकर रहें । पाण्डवों ने ऐसा ही किया और हस्तिनापुर त्यागकर पांडु मथुरा बसायी ।<sup>169</sup> श्रीकृष्ण ने अपनी भगिनी सुभद्रा और अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को हस्तिनापुर के राज्यासन पर अभिषिक्त किया ।

गजसुकुमाल : देवकी का आठवां पुत्र

एक प्रातः दो मुनि देवकी के द्वार पर आये और देवकी ने उन्हें केसरिया मोदक से प्रतिलिंभित किया । कुछ समय बाद वैसा ही मुनियुग्म

१६३. (क) त्रिषष्टि : ८/१०/७४-७५ (ख) पाण्डवचरित्र देवप्रभसूरि सर्ग १७

१६४. त्रिषष्टि : ८/१०/७७-८० १६५. वही — ८/१०/८५ (ख) ज्ञातासूत्र अ० १६

१६६. त्रिषष्टि : ८/१०/८६-८७

१६७. वही — ८/१०/८८

१६८. पाण्डव चरित्र सर्ग १७

१६९. अन्तगडसूत्र

फिर पहुँचा और देवकी को आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह जान रही थी कि वे ही मुनि पुनः आये; जबकि इस हेतु मुनि एक घर में दुबारा नहीं जाते। कुछ ही पलों में वैसा युग्म और पहुँचा। देवकी को भ्रमित देख कर अबकी बार मुनियों ने स्पष्ट किया कि वे एक से लगने वाले ६ मुनि हैं जो परस्पर भाई हैं।<sup>170</sup> छ भाइयों के तथ्य से देवकी के मन में इन मुनियों के प्रति अगाध ममता जागृत हो गयी। उसके भी ६ पुत्र कंस के हाथों मारे गये थे (देवकी ऐसा ही जानती थी)। उसे अतिमुक्त मुनि का पूर्वकथन स्मरण हो आया कि देवकी तेरे आठ पुत्र होंगे और सभी जीवित रहेंगे। वह उलझन में पड़ गयी कि संख्या ८ रही, न ही सभी जीवित रहे। मुनिवाणी असत्य कैसे हो सकती है? भगवान् अरिष्टनेमि ने समाधान किया, के तेरे सभी पुत्र जीवित हैं। वे मुनि तेरे ही पुत्र हैं और भगवान् ने सुलसा प्रसंग का वर्णन कर दिया।<sup>171</sup>

उसके सातों पुत्र जीवित हैं—इस तथ्य से हर्ष के बावजूद देवकी के मन में यह तीव्र असंतोष व्याप्त हो गया कि उसका वात्सल्यभाव तो अतृप्त ही रह गया। वह किसी भी पुत्र की शैशव लीला का आनंद नहीं उठा सकी। भगवान् ने देवकी के पूर्वभव के एक प्रसंग का वर्णन करते हुए कहा कि तुमने अपनी सपत्नी के ७ रत्न चुरा लिये थे और जब वह बहुत रोयी तो तुमने उसे एक रत्न लौटा दिया था। अतः इस भव में तुम्हारे ७ रत्न छिन गये और एक फिर से मिल गया। देवकी ने अपने अतृप्त वात्सल्य के दुःख की चर्चा करते हुए हुए श्रीकृष्ण से कहा कि मैं एक भी पुत्र का लालन-पालन नहीं कर सकी। अतिमुक्त मुनि की घोषणा भी ८ पुत्रों की थी, जबकि तुम ७ ही सहोदर हो। श्रीकृष्ण ने हरिनैगमैषीदेव की आराधना की। देव ने साक्षात् होकर कहा कि देवकी को ८वाँ पुत्र होगा, पर वह यौवन में ही प्रव्रज्या ग्रहण कर लेगा।<sup>172</sup>

देवकी की मनोकामना पूर्ण हो गयी। आठवें पुत्र का नाम गजसुकु-माल रखा गया। बड़ा होने पर उसका विवाह द्रुम राजा की पुत्री प्रभावती के साथ कराया गया। श्रीकृष्ण ने उसका विवाह सोम शर्मा की ब्राह्मण कन्या सोमा के साथ भी करवाया। भगवान् अरिष्टनेमि के समवसरण में तुरंत ही गजसुकुमाल ने दीक्षा ग्रहण कर ली और वह श्मशान में जाकर कायो-त्सर्ग में लीन हो गया। उसे ध्यानलीन देख सोमशर्मा क्रुद्ध हो गया कि इसे

यही करना था तो मेरी पुत्री का जीवन क्यों नष्ट किया ? गीली मिट्टी का घेरा तपस्वी के मस्तक पर बनाकर उसमें उसने चिता के अंगारे भर दिये । मुनि गजसुकुमाल ने यह भयंकर उपसर्ग सहन कर लिया और शरीर त्याग कर मुक्त हो गये ।<sup>173</sup> गजसुकुमाल के साथ में वसुदेव के अतिरिक्त ८ दशाहों सहित अनेक यादवों ने दीक्षा ग्रहण कर ली थी । देवकी, रोहिणी व कनकावती को छोड़ वसुदेव की शेष रानियां, अनेक यादव कुमारियों के साथ साध्वी हो गयीं थीं ।

आगामी प्रातः श्रीकृष्ण जब भगवान के समवसरण में गये तो गजसुमाल को न देखकर उसके विषय में पूछा । भगवान ने कहा कि उसने तो कल ही मोक्ष प्राप्त कर लिया, उसे एक सहायक जो मिल गया था । श्रीकृष्ण भगवान की गूढ़ वाणी का अर्थ समझ गये—अवश्य ही किसी ने उसे कठोर उपसर्ग दिया है और उनके नेत्र रक्ताभ हो उठे । प्रभु ने कहा कि उस पर क्रोध करना व्यर्थ है । लौटते समय वह तुम्हें नगर-द्वार पर मिल जाएगा और तुम्हें देखकर स्वतः ही वह मर जाएगा । श्रीकृष्ण को नगर प्रवेश के समय सोमशर्मा मिल गया जो उनके भय से आतंकित हो गिर पड़ा और श्रीकृष्ण के हाथी के पैरों तले कुचलकर मर गया ।<sup>174</sup>

### महाभारत प्रसंग

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, और सहदेव—ये पाँचों भाई राजा पांडु के पुत्र होने से पांडव कहलाते थे । इनकी माता कुन्ती वसुदेव की सहोदरा थी और इस प्रकार पांडवों के साथ श्रीकृष्ण का सम्बन्धजन्य स्नेह था ।<sup>175</sup> पांडु के अनुज धृतराष्ट्र के सौ पुत्र कौरव कहलाते थे । दुर्योधन ज्येष्ठ था । पांडव हस्तिनापुर के और कौरव इन्द्रप्रस्थ के स्वामी थे । युधिष्ठिर न्यायप्रिय, सत्यवादी और सदाचारी थे और धर्मराज कहलाते थे, जब कि दुर्योधन अन्यायी, अनाचारी और दुरात्मा था, उसका नाम ही दुर्योधन था । पांडवों के वैभव, पुण्य और कीर्ति से उसे बड़ी ईर्ष्या थी, और उनका राज्य वह हड़प लेना चाहता था । बल से विजय की आशा न होने पर छल को उसने साधन बनाया । द्यूत क्रीड़ा में पराजित कर दुर्योधन ने पांडवों का सब कुछ छीन लिया, यहाँ तक की द्रौपदी पर भी अधिकार कर लिया और भरी सभा में दुःशासन ने उसका चीरहरण किया और दुर्योधन ने उसे अपनी निर्वस्त्र

जंघा पर बैठने को कहा। बलशाली नृपति और कुल के गुरुजन भी मौन हो देखते रहे। किसी ने इस अनाचार का विरोध नहीं किया। भीम ने प्रतिज्ञा की—मैं दुःशासन की इन बाहों को उखाड़कर और दुर्योधन की जंघा चीरकर ही दम लूंगा।

पराजित पांडवों को १२ वर्ष वनवास और तेरहवें वर्ष में अज्ञातवास स्वीकार करना पड़ा। इस अवधि में दुर्योधन पांडवों को नष्ट करने के कुचक्र करता रहा। अवधि पूर्ण हुई और पांडवजन विराटनगर में प्रकट हुए। श्रीकृष्ण, कुन्ती, द्रौपदी सहित पांडवों को द्वारका ले आये।<sup>176</sup> और, कौरवों के अन्याय अत्याचार से वे क्षुब्ध हो उठे।

### दुर्योधन को श्रीकृष्ण का सन्देश

नीतिज्ञ श्रीकृष्ण ने द्रुपद के पुरोहित के साथ दुर्योधन को सन्देश भेजा।<sup>177</sup> द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ, कृतवर्मा, भगदत्त, कर्ण, विकर्ण, सुशर्मा, शकुनि, भूरिश्रवा, चेदिराज, दुःशासन आदि कौरव राजसभा में उपस्थित थे। तभी श्रीकृष्ण का संदेश पहुँचा। १३ वर्ष वनवास और अज्ञातवास भोग कर ही पांडव अब प्रकट हुए हैं और विराट राजकुमारी उत्तरा से उन्होंने अभिमन्यु का परिणय भी संपन्न किया है। वे कौरवों से स्नेह रखते हैं। अब पांडवों को स्वच्छ मन से हस्तिनापुर बुलाएं। भाइयों के मध्य संपत्ति के बंटवारे का मनमुटाव अच्छा नहीं होता। तुमने नहीं बुलाया, तो भी युधिष्ठिर को अन्य भाईयहाँ लायेंगे। सम्भव है युद्ध हो और इन्द्रप्रस्थ भी तुम्हारा न रहे। तब तुम्हें वन-वन भटकना पड़ सकता है। पांडवों को निर्बल समझने में भूल मत करना। जहाँ धर्म है वहाँ विजय है और जहाँ धर्म है वहीं मैं भी हूँ। विवेक के साथ विचार कर लो जिससे बाद में पछतावा न रहे। दुर्योधन तो इस संदेश से भड़क उठा। कोपाभिभूत हो कहने लगा कि युद्ध में पांडव तो क्या श्रीकृष्ण भी हम से जीत नहीं सकते। मैं उनकी कीर्ति ध्वस्त कर दूंगा। जा, अपने कृष्ण से कहना कि कुरुक्षेत्र की समर भूमि में हमारे समक्ष अपने बल का प्रदर्शन करें। दूत ने श्रीकृष्ण को अवगत कराया कि उनकी मैत्री भावना से अप्रभावित अहंकारी दुर्योधन

१७६. महाभारत के अनुसार केवल पांडव और द्रौपदी ही वनवास में गये थे, माता कुन्ती नहीं, जैन ग्रंथों के अनुसार वह भी गयी थी।

१७७. महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण के निर्देश पर राजा द्रुपद ने अपने पुरोहित को भेजा। देखें—महाभारत, उद्योगपर्व अ० २० वां।

पांडवों को तुच्छ मानता है और उसे पराजित करके ही पांडव अपने अधिकार प्राप्त कर सकेंगे ।

### धृतराष्ट्र का सन्देश

परिस्थितियों की विषमता को देख धृतराष्ट्र ने धर्मराज के पास संजय द्वारा सन्देश भेजा कि तुम <sup>178</sup> विवेकशील हो, ज्ञानीजन स्वार्थ त्याग कर भ्रातृहित में अनेक उत्सर्ग करते हैं । युद्ध भयानक परिणामदायक होता है । अपराजय का विश्वासी पात्र भी कभी परास्त हो जाता है । दुर्योधन के कथन पर कान न देकर तुम शुभाशुभ का निर्णय विवेक बुद्धि से करो, युद्ध न होने दो । युधिष्ठिर ने उत्तर में कहा कि धृतराष्ट्र एक बात कहना भूल गये कि अन्याय का प्रतिकार भी न्याय है । अन्यायी का अन्याय सहन करना अन्याय को प्रश्रय देना है । ऐसी सहिष्णुता स्वयं में अन्याय है । <sup>179</sup> पिता भी दुराचारी हो तो वह त्याज्य होता है । दुर्योधन तो तुम्हारा पुत्र ही है । दुराचारी अपने मित्रों, रक्षकों और सहायकों का भी विनाश कर देते हैं ।

### श्रीकृष्ण द्वारा दूत कार्य

श्रीकृष्ण चाहते थे कि युद्ध के बिना राज्याधिकार की यह समस्या सुलझ जाय । दुर्योधन को सन्मार्ग पर लाने के प्रयोजन से वे स्वयं उसके पास गये । उसने भव्य स्वागत कर श्रीकृष्ण को रत्नासन दिया । उन्होंने कहा— संजय कदाचित् संधि-प्रस्ताव लाया था, पर वह धर्मराज के समक्ष रख न सका, रखता तो भी वह स्वीकृत न होता । यदि युद्ध हुआ तो वह कौरवों के लिए महाविनाशकारी सिद्ध होगा । इस परिणाम से अशान्त हो, मैं पांडवों को जताये बिना ही यहाँ चला आया । <sup>180</sup> श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा कि पांडवों को यदि थोड़ा सा राज्य भी शांति के साथ तुमने न दिया तो वे परमवीर कौरवों का सर्वनाश कर देंगे । मिथ्या दंभ और स्वार्थ का त्याग करने में ही तुम्हारे कुल का हित है । तुम पांडवों को ५ गाँव दे दो । उनके प्रतिष्ठा की रक्षा भी हो जायगी और उन्हें भी सिर छिपाने की जगह भी मिल

१७८. महाभारत के अनुसार संजय दूत बनकर पांडवों के पास जाता है । उसमें धृतराष्ट्र संजय को सन्देश देते हैं । उसमें धृतराष्ट्र का आंतरिक प्रेम पांडवों के प्रति झलक रहा है ।—महाभारत उद्योगपर्व अ० २२ वां

१७९. महाभारत में भी धर्मराज संजय को कहते हैं कि मैं संधि के लिए तत्पर हो सकता हूँ यदि दुर्योधन मेरा इंद्रप्रस्थ का राज्य पुनः मुझे दे दे ।

१८०. महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण पांडवों के विचार-विमर्श के पश्चात् ही शांति-वार्ता के लिए गये ।

जायगी।<sup>181</sup> पांडव मेरे परामर्श पर इस अल्प-प्राप्ति पर भी संतोष करेंगे, अन्यथा विनाशकारी महायुद्ध अवश्यंभावी है। दुर्योधन ने हठपूर्वक श्रीकृष्ण का प्रस्ताव ठुकरा दिया और पांडवों के साथ श्रीकृष्ण को भी शक्ति परीक्षण के लिए चुनौती दी। यही नहीं, वह कर्ण के सहयोग से श्रीकृष्ण को बंदी भी बनाना चाहता था। ज्ञान होने पर श्रीकृष्ण ने कहा कि क्या कभी शृगाल ने भी सिंह को बाँधा है? तुम लोग दुरात्मा हो—उपकारक का भी अपकार करना चाहते हो।<sup>182</sup>

### भीष्म पितामह का प्रयत्न

श्रीकृष्ण का यह रोष भीष्म पितामह को कौरवों के लिए विनाशकारी लगा। उन्होंने स्नेहपूर्वक श्रीकृष्ण से कहा कि बिजली के उत्ताप से अप्रभावित रहकर मेघ सदा शीतल जल ही बरसाते हैं। आप भी दुर्योधन के व्यवहार से कुपित न होना। यदि यह युद्ध हो ही तो मेरी इच्छा है कि आप इस युद्ध में भाग न लें। श्रीकृष्ण ने कहा कि पांडव मेरे आश्रित हैं। मेरे संरक्षण में ही वे युद्ध करेंगे। किंतु, आपका आदेश भी मेरे लिए शिरोधार्य है। अतः मैं वचन देता हूँ कि मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा।

### कर्ण को सम्मार्ग बोध

श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा कि तुम संसार के परम वीर और शक्तिशाली हो, गुणशील हो, पर दुरात्मा दुर्योधन के साथ तुम्हारा मेल असंगत है, तुम्हें तो पराक्रमी पांडवों के साथ रहना चाहिए। एक रहस्य का उद्घाटन करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—सुनो कर्ण, तुम सूत-पुत्र नहीं, कुन्ती के पुत्र हो। राधा ने तुम्हारा मात्र लालन-पालन किया है, इस नाते तुम “राधेय” कहलाते हो—स्वयं कुन्ती ने मुझे यह सब बताया है।<sup>184</sup> यदि तुम पांडवों के संग रहो तो ज्येष्ठ भ्राता होने के नाते तुम्हारा अधिकार भी कुछ अधिक ही रहेगा।

१८१. पांडव चरित्र : देवप्रभसूरि—पृ० ३४६। १८२. वही—पृ० ३४७-४८।

१८३. (क) पांडव चरित्र : देवप्रभसूरि : पृ० ३४८।

(ख) महाभारत में यह प्रसंग अन्य प्रकार से वर्णित है—

श्रीकृष्ण अपने कक्ष में शयन किए हुए थे तभी उनकी सहायता की याचना के साथ दुर्योधन और अर्जुन दोनों पहुंचे। दुर्योधन श्रीकृष्ण के सिरहाने की ओर रखे एक रिक्त आसन पर बैठकर उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगा। तभी अर्जुन आया और वह श्रीकृष्ण के पांवों की ओर बैठ गया। जागने पर श्रीकृष्ण को पहले अर्जुन दृष्टिगत हुआ।

श्रीकृष्ण के उद्बोधन से कर्ण को अपनी भूल अनुभव हुई कि उसने दुर्योधन से मैत्री की, किंतु जब सभी सूतपुत्र कहकर उसका अपमान करते थे तब दुर्योधन ने ही राज्य देकर उसकी गरिमा बढ़ाई थी। कर्ण ने कहा कि मैं विश्वासघात नहीं करूँगा, किंतु अर्जुन को छोड़कर किसी पांडव को नहीं मारूँगा। युद्ध में अर्जुन मरेगा और मैं जीवित रहूँगा, अथवा मैं मरूँगा और अर्जुन जीवित रहेगा। माता कुन्ती के तो पाँचों पुत्र जीवित रहेंगे।

श्रीकृष्ण पांडु राजा से मिलकर द्वारका लौट आये।<sup>185</sup> वृत्तांत सुनकर पांडवों का उत्साह बढ़ा और वे युद्ध की तैयारी करने लगे।

दुर्योधन ने कहा कि मैं आपके पास अर्जुन से पहले पहुँचा हूँ। सज्जनों का नियम है कि जो पहले पहुँचे उनका पक्ष लिया जाय। मेरी बिनती है कि महाभारत युद्ध में आपका सहयोग मुझे मिले।

नीतिज्ञ श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम पहले आये हो अतः तुम्हारी सहायता भी मुझे करनी चाहिये, किंतु अर्जुन मुझे प्रथम दिखाई दिया अतः वह भी मेरी सहायता का पात्र है। मेरी सहायता दो प्रकार से संभव है। एक पक्ष में मेरी नारायणी सेना रहेगी, जो उस पक्ष की ओर से लड़ेगी और दूसरी ओर मैं स्वयं रहूँगा, किंतु शस्त्रहीन अवस्था में रहूँगा। इन दो विकल्पों में से किसी एक का चुनाव पहले अर्जुन को करने दिया जायेगा, क्योंकि वह तुम से छोटा है।

अर्जुन ने नारायणी सेना के स्थान पर निहत्थे श्रीकृष्ण को अपने पक्ष हेतु चुना। स्पष्ट है कि नारायणी सेना की शक्ति दुर्योधन के पक्ष को प्राप्त हो गयी। वह यह सोचकर भी प्रसन्न था कि श्रीकृष्ण पांडवों की ओर रहेंगे अवश्य किंतु वे युद्ध से विमुख रहेंगे।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा कि मैं शस्त्र-धारण न करूँगा, और युद्ध से विमुख रहूँगा यह जानकर भी तुमने मुझे क्यों चुन लिया ?

अर्जुन ने उत्तर दिया कि मैं अकेला ही युद्ध में यशस्वी बनना चाहता हूँ। अतः आप मेरे सारथी बनिए। श्रीकृष्ण ने अर्जुन की यह इच्छा पूर्ण की। —देखें—महाभारत, उद्योगपर्व-३६-३८।

१८४. महाभारत के अनुसार कुन्ती स्वयं ही कर्ण को यह समझाने के लिए जाती है कि वह उसका पुत्र है।

१८५. जैन ग्रंथों के अनुसार महाभारत के पूर्व पांडु राजा का देहावसान नहीं हुआ। महाभारत के समय वे उपस्थित थे। महाभारत के अनुसार तथ्य इसके विपरीत हैं।

कौरव-पांडवों के युद्ध महाभारत में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सारथी की भूमिका निभायी और स्वयं शस्त्र नहीं उठाया।<sup>186</sup> प्रायः जैन ग्रंथों में महाभारत युद्ध का वर्णन नहीं मिलता।<sup>187</sup> कतिपय ग्रन्थकारों ने श्रीकृष्ण-जरासंध युद्ध को ही महाभारत मान लिया है।<sup>188</sup> कहीं कौरव व पांडव युद्ध को जरासंध युद्ध के पूर्व की घटना के रूप में भी वर्णित किया गया है।<sup>189</sup> और, उल्लेख किया गया है कि जरासंध दुर्योधन के पक्ष में सम्मिलित था। कौरव-पांडव युद्ध और श्रीकृष्ण जरासंध युद्ध को एक मानना तर्कसंगत नहीं है। दोनों में रण-स्थल (क्रमशः कुरुक्षेत्र और सेनपल्लि) ही भिन्न-भिन्न थे। पूज्यपाद देवेंद्र मुनिजी शास्त्री की मान्यता है—“हमारी अपनी दृष्टि से भी महाभारत और जरासंध का युद्ध पृथक्-पृथक् है”।<sup>190</sup>

महाभारत-प्रसंग वर्णित न होने के कारण जैन ग्रंथों में गीता के उपदेश का प्रकरण भी नहीं मिलता।

### शिशुपाल-वध

कौशल नरेश भेषज की रानी मद्री थी। इसी राजदंपति का पुत्र था शिशुपाल,<sup>191</sup> जिसके जन्म से ही तीन नेत्र थे और इस अद्भुतता के कारण माता-पिता चिंतित और उद्विग्न रहा करते थे। एक निमित्तज्ञ से उन्हें ज्ञात हुआ कि जिस व्यक्ति के गोद में लेने से बालक का तृतीय नेत्र लुप्त हो जायगा, यह उसी के हाथों मारा जायगा।<sup>192</sup> त्रिनेत्र पुत्र के साथ राजा रानी शरावती में श्रीकृष्ण से भेंट करने आये तो श्रीकृष्ण ने बालक को गोद में उठाया और उसका अतिरिक्त नेत्र बंद हो गया। भावी अनिष्ट के निश्चय से भयभीत, कांपते हुए पति-पत्नी श्रीकृष्ण से पुत्र के प्राणों की भिक्षा मांगने लगे। मद्री को आश्वस्त करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि जब तक यह

१८६. पांडव चरित्र : देवप्रभसूरि, सर्ग १२, पृ० ३८ ।

१८७. (क) चउपन्नमहापुरिस-चरियं (ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र

(ग) भवभावना आदि

१८८. (क) हरिवंशपुराण : आचार्य जिनसेन । (ख) पांडवपुराण : आचार्य शुभचंद्र ।

१८९. (क) पांडवचरित्र : देवप्रभसूरि ।

(ख) महाभारत के अनुसार जरासंध युद्ध महाभारत के पूर्व की घटना है ।

१९०. भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन—देवेंद्र मुनि जी शास्त्री ।

१९१. उत्तरपुराण ७१/३४२ पृ० ३६८ ।

१९२. उत्तरपुराण ७१/३४३-३४४



सौ अपराध न कर लेगा—मैं इसका वध नहीं करूँगा। बड़ा होने पर शिशुपाल बड़ा अहंकारी हो गया। श्रीकृष्ण को भी अपने नियंत्रण में रखना चाहता था<sup>१९३</sup> और उन पर आक्रमण भी करने लगा। उसने सौ अपराध कर डाले।<sup>१९४</sup> वह रुक्मिणी से विवाह करना चाहता था। युद्धाभिलाषी नारद जी ने श्रीकृष्ण को यह सूचना दी और वे ८ प्रकार की सेना-सहित पहुँचे, शिशुपाल का वध किया<sup>१९५</sup> और रुक्मिणी देवी से विवाह कर लिया।<sup>१९६</sup>

१९३. उत्तरपुराण ७१/३४६-३५१ पृ० ३६८। १९४. उत्तरपुराण ७१/३५२।

१९. (क) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र (८/७/४८०-४०४) आदि अन्य जैन ग्रंथों के अनुसार शिशुपाल का वध जरासंध युद्ध के समय हुआ, रुक्मिणी परिणय के समय नहीं।

(ख) महाभारत—राजसूय यज्ञ करने वाले पांडवों ने प्रथमतः श्रीकृष्ण की अचना की, यह देखकर शिशुपाल रुष्ट हो गया। वह श्रीकृष्ण के विरुद्ध अनर्गल और अभद्र आलाप करने लगा। भीम उसे सहन नहीं कर पाया और वह शिशुपाल का वध करने को झपटा, किंतु भीष्म पितामह ने उसे रोक लिया और शिशुपाल जन्म की कथा बतलाने लगे। जन्मते ही वह गधे की तरह चिल्लाने लगा था और इससे माता-पिता घबराये। उसी समय आकाशवाणी हुई कि जिसकी गोद में जाने पर इस बालक की दो भुजाएँ और एक आँख लुप्त हो जायेगी वही उसका मारने वाला होगा। एक दिन श्रीकृष्ण अपनी बुआ (शिशुपाल की माता) से मिलने गये और और ज्योंही उन्होंने बालक को गोद में उठाया, त्योंही उसका तीसरा नेत्र और अतिरिक्त दो भुजाएँ समाप्त हो गयीं। श्रीकृष्ण से माता ने पुत्रहित में प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने कहा कि—तेरे पुत्र के १०० अपराध तक मैं उसे क्षमा करूँगा—

अपराधशतं क्षाम्यं मया ह्यस्य पितृवजः।

पुत्रस्य ते वधार्हस्य मा त्वं शोके मनः कृथाः।

—महाभारत : सभापर्व अध्याय ४३ श्लोक २३।

फिर शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा। जब उसके १०० अपराध पूरे हो गये तो श्रीकृष्ण ने क्रोध कर सुदर्शन चक्र चलाया जिससे शिशुपाल का शीर्ष कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध किया।—महाभारत : सभापर्व : अध्या० ४५।

१९६. उत्तरपुराण ७१/३५३-५८।

## द्वारका-दाह

धर्मसभा में भगवान ने श्रीकृष्ण वासुदेव की अनकही मानसिक उलझन को भाँप कर कहा कि वासुदेव सदा कृतनिदान होते हैं, वे संयम पथ पर गमन नहीं कर सकते। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा कि तुम्हारे भाई जराकुमार के हाथों तुम्हारा अवसान होगा और तुम्हारी द्वारका इससे पूर्व ही नष्ट हो जायगी। मदिरा, द्वैपायन एवं अग्नि द्वारका-नाश के मूल कारण होंगे।<sup>197</sup> भगवान ने कहा कि शौर्यपुर के समीप के तापस पारस का शारीरिक संबंध यमुनाद्वीप की नीच-वंशीय कन्या से हो गया था और द्वैपायन उसी का पुत्र है जो इंद्रिय-जेता है। मदिरा के मद में यादव वंशी द्वैपायन को पीड़ा देंगे और वे द्वारका को भस्म कर देंगे। तुम (श्रीकृष्ण) और

## १९७. श्रीमद्भागवतानुसार—

महाभारत युद्ध में अनेक गुणी एवं पराक्रमी यादवों का संहार हो गया था। जो शेष रहे उनमें से अधिकांशतः दुर्व्यसनी और अनाचारी थे अतः उन मदांध यादवों पर श्रीकृष्ण बलदेव का नियंत्रण व प्रभाव भी कम था। द्वारका के समीप रेवतक्ष पर्वत एवं समुद्र के बीच प्रभास क्षेत्र में मिंडारक नामक स्थान था, जहाँ यादव आमोद-प्रमोद के लिए जाया करते थे। वहाँ एक उत्सव के अवसर पर यादवों ने मदिरापान किया और परस्पर संघर्षरत होकर वहीं समाप्त हो गये।

कृष्ण-बलराम, सारथी दारुक, वसुदेव और कुछ स्त्रियाँ बस ये ही जीवित बच गये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के पास दारुक के साथ संदेश भेजा कि वह द्वारका आकर यादव वंश के वृद्धों और स्त्रियों को हस्तिनापुर ले जावे। बलराम यादवों की इस महाविनाश लीला से दुःखित होकर मर ही चुके थे। बलराम के अवसान से दुःखी श्रीकृष्ण वन में एक पीपल वृक्ष के नीचे बैठे थे कि जराकुमार नामक एक व्याध ने उन्हें बाण मारा। श्रीकृष्ण ने उसे स्वर्ग प्रदान किया। श्रीकृष्ण के चरण चिन्हों का अनुसरण करते हुए दारुक वहाँ पहुँच गये। उसके देखते-देखते श्रीकृष्ण को लेकर गरुड चिह्न वाला रथ उड़ गया। उन्होंने दारुक को कहा कि तुम द्वारका जाकर शेष यादवों से कहो कि वे द्वारका त्याग कर अन्यत्र चले जावें, क्योंकि मेरी त्यागी हुई द्वारका को समुद्र अपने गर्भ में छिपा लेगा। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण तिरोधान हो गये।

अर्जुन शेष यादवों, स्त्रियों और अनिरुद्ध पुत्र वज्र को लेकर हस्तिनापुर चल दिया। द्वारका सूनी हो गयी। समुद्र में भयंकर तूफान आया और द्वारका जलमग्न हो गयी।

बलराम बच जाओगे और कालांतर में जराकुमार के वाण से तुम मरण को प्राप्त करोगे ।<sup>198</sup>

जराकुमार को अग्रज के विरुद्ध अपने भयंकर अपराध की भविष्य-वाणी से आत्मग्लानि हुई । यह सोचकर कि मैं वासुदेव के साथ ही नहीं रहूँगा तो यह कुकर्म टल जायगा—वह वन में चला गया । द्वैपायन भी द्वारका-विनाश के हेतु बनने से बचने के लिए वन में चले गये ।<sup>199</sup> भगवान ने यह संकेत भी दिया कि वासुदेव श्रीकृष्ण का जीव ही अपने एक भावी भव में अमम नाम के १२ वें तीर्थंकर होंगे । इन्हीं के शासन काल में बलराम का जीव भी मुक्तिलाभ करेगा ।

मदिरा से द्वारका-विनाश का भय हृदयंगम कर वासुदेव श्रीकृष्ण ने मदिरा के निर्माण एवं सेवन पर प्रतिबन्ध लगा दिया । सारी मदिरा एकत्रित कर उसे नष्ट करने के प्रयोजन से कदंब वन की कादम्बरी कन्दरा के शिला-कुण्डों में फेंक दी गयी । द्वारका-रक्षार्थ प्रजा धर्मसंकुल जीवन बिताने लगी । शिला-कुण्डों में नष्ट होने के स्थान पर मदिरा पुरानी होकर अधिक स्वादु, अधिक मादक बन गयी । शांब का सेवक वन में तृषालु होकर भटक रहा था । शिलाकुण्ड में संग्रहीत द्रव पीकर तो वह मस्त हो गया । सेवक ने उसका आनन्द शांब को भी दिया और फिर तो मदिरा का लोलुप शांब अनेक यादवों के साथ कंदरा पहुँच गया । ये लोग जब मदोन्मत्त हो वन-विहार कर रहे थे, सहसा ध्यानमग्न द्वैपायन को देख क्रीडावश वे उन्हें सताने लगे, उन्हें मारा-पिटा भी ।<sup>200</sup> रुष्ट ऋषि ने सम्पूर्ण द्वारका को भस्म कर देने का निदान कर लिया । श्रीकृष्ण-बलराम इस कांड से सन्न रह गये । यादवों की धृष्टता के लिए उन्होंने ऋषि से क्षमायाचना की, किंतु ऋषि अतिशय कुपित थे । बोले—तुम दोनों ने सविनय क्षमा मांगी है—तुम्हें हानि नहीं पहुँचाऊँगा, पर शेष द्वारका को भस्म करने का निदान कर चुका हूँ । कालांतर में द्वैपायन का शरीरांत हो गया और उनका जीव अग्निकुमार देव बना तथा पूर्वभव के निदान को विस्मृत न कर पाया । द्वारका आकर

१९८. (क) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र : ८/११/३-६

(ख) भवभावना ३७८-३७९२

(ग) हरिवंशपुराण : ६१/२३-२४

१९९. द्वैपायनोऽपि तत्श्रुत्वा, लोकश्रुत्या प्रभोर्वचः ।

द्वारकायां यदूनां च, रक्षार्थं वनवास्यभूत् ॥—हरिवंशपुराण ।

२००. (क) त्रिषष्टि : —८/११/२३-३०

देव ने देखा कि द्वारका की प्रजा तो धर्मनिष्ठ है। वे कोई अहित न कर पाये। उन्हें ११ वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी। तब तक प्रजा विनाश के भय से मुक्त होकर धर्म-शिथिल होने लगी। मदिरा का भी पुनः प्रचलन हो गया था।<sup>201</sup> द्वैपायन के लिए अब अनुकूल परिस्थितियाँ बनने लगीं। उन्होंने संवर्तवायु के प्रयोग से वन का सूखा काष्ठ-घास आदि द्वारका में एकत्रित कर दिया। आकाश से अंगारे बरसने लगे। त्राहि-त्राहि मच गयी। द्वारका का वैभव अग्नि की भेंट होने लगा। प्राण बचाकर भागती प्रजा को अग्नि कुमार द्वैपायन निर्ममता-पूर्वक अग्नि में झोंकने लगा। वसुदेव-देवकी और रोहिणी को रथ में बिठाकर श्रीकृष्ण व बलराम स्वयं रथ खींचकर उन्हें सुरक्षित स्थल पर ले जाने लगे। नगर-द्वार बंद और रथ ध्वस्त हो गया।<sup>202</sup> बलराम ने पाद प्रहार से द्वार तोड़ा तो अग्निदेव ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि इनकी रक्षा का प्रयत्न व्यर्थ है। तुम दो भाइयों के अतिरिक्त सब कुछ नष्ट होगा। पिता एवं दोनों माताओं ने संथारा लिया और आयुष्य पूर्ण कर स्वर्ग सिधारे।<sup>203</sup> श्रीकृष्ण बलराम के साथ जीर्णोद्धान में चले गये। ६ माह तक अग्नि प्रज्वलित रही और वह भव्य वैभवपूर्ण नगरी राख की ढेरी हो गयी।<sup>204</sup> समुद्र में प्रचंड तूफान उठा और यह दग्ध द्वारका जलमग्न हो गयी। छः माह पूर्व जहाँ भव्य नगर था, अब वहाँ समुद्र हिलोरे लेने लगा।<sup>205</sup>

### श्रीकृष्णावसान

जीर्णोद्धान से अपनी प्रिय द्वारका को नष्ट होते देखने का सामर्थ्य भी जब चुक गया तो श्रीकृष्ण वहाँ से हट जाना चाहते थे, पर कहां जाएं? यह प्रश्न था। अनेक राज्य-विरोधी हो चुके थे।<sup>206</sup> पांडवों को निष्कासित किया था अतः पांडुमथुरा जाने में भी श्रीकृष्ण को संकोच था। बलराम के प्रयत्नों से अंततः वे वहाँ जाने को चल दिये।<sup>207</sup> मार्ग में धृतराष्ट्र पुत्र अच्छंदक का

२०१. त्रिषष्टि : ८/११/७४-७६

२०२. हरिवंश के पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण द्वारिका का कोट तोड़कर समुद्र के प्रवाह से उस आग को बुझाने लगे, बलदेव समुद्र के जल को हल से सींचने लगे तो भी अग्नि शांत नहीं हुई।—हरिवंश : ६१/८१-८४

२०३. त्रिषष्टि : ८/११/८१-८८।

२०४. त्रिषष्टि : ८/११/८६

२०५. त्रिषष्टि : ८/११/९०

२०६. त्रिषष्टि : ८/११/९५

२०७. त्रिषष्टि : ८/११/९६-१००

हस्तिकल्पनगर आया। श्रीकृष्ण उपवन में विश्राम करने लगे <sup>208</sup> और बलराम भोजन व्यवस्था के लिए नगर में गये। खाद्य पदार्थों के मूल्यरूप में उन्होंने व्यापारी को स्वर्णमुद्रिका दी जिसे देख वह शंकित हो उठा और राजा को सूचित किया। राजा सैनिकों सहित आ पहुँचा और आक्रमण कर दिया। बलराम के सिंहनाद करने पर श्रीकृष्ण भी पहुँच गये और अच्छंदक को पराजित कर दिया।

ज्येष्ठ भ्राता बलराम कोशांबी नगरी के वन में पहुँचे। श्रीकृष्ण को प्यास लगी थी। बलराम जल लेने को गये और श्रीकृष्ण एक वृक्ष तले लेट गये। <sup>209</sup> वे एक पैर के घुटने पर दूसरे पैर की पिंडली टिकाए हुए थे, जिसकी पगतली को देख कर दूर से व्याध को हिरण का भ्रम हुआ और उसने बाण मारा, वे तुरन्त उठ बैठे और उच्च स्वर में पूछा—किसने मुझे बाण मारा? आज तक बिना नाम गोत्र बताए किसी ने मुझ पर प्रहार नहीं किया, <sup>210</sup> तुरन्त व्याध को अपनी भूल ध्यान में आ गयी और वह हतप्रभ सा एक वृक्ष की ओट में छिप गया। वहीं से उत्तर देते हुए उसने कहा—वसुदेव और जरा-देवी मेरे जनक-जननी हैं, भगवान् अरिष्टनेमि की भविष्य वाणी सुन भ्राता श्रीकृष्ण की हितकामना के साथ ही मैं वन में चला आया और १२ वर्ष यहां व्यतीत कर दिए। अब तक किसी मानव को मैंने इस वन में नहीं देखा, तुम कौन हो? <sup>211</sup> श्रीकृष्ण समझ गये कि यह जराकुमार ही है। स्नेह मिश्रित स्वर में श्रीकृष्ण ने जरा को बुलाकर कहा—मुझे खेद है कि तुम्हारा १२ वर्ष का वनवास सफल नहीं हुआ, तुम मेरे मरण को टालना चाहते थे, आज वही तुम्हारे हाथों हो गया। मैं तुम्हारा भाई श्रीकृष्ण हूँ। अब शोक करना व्यर्थ है। तुम बलराम के लौट आने के पूर्व ही यहां से चले जाओ, अन्यथा वह तुम्हें जीवित न छोड़ेंगे। तुम्हीं यादव वंश में बचे हो, जाओ, पांडु मथुरा जाकर पांडवों को द्वारका-दाह और मेरी स्थिति से अवगत कराते हुए कहना कि उन्हें निष्कासित करने के कारण मैं क्षमा चाहता हूँ। श्रीकृष्ण के पैर से बाण निकालकर जराकुमार आदेशानुसार चल पड़ा। <sup>212</sup>

श्रीकृष्ण ने पूर्वाभिमुख हो, अंजलि जोड़कर पंच परमेष्ठि को प्रणाम करते हुए कहा कि रुक्मिणीदेवी और प्रद्युम्न आदि कुमार धन्य हैं; जिन्होंने

२०८. त्रिषष्टि : ८/११/११६-१२०

२०९. त्रिषष्टि : ८/११/१२१-१२२

२१०. वही ८/११/१२३-१३२

२११. त्रिषष्टि : ८/११/१३४-३५

२१२. त्रिषष्टि : ८/११/१५१-१५३

संयम मार्ग ग्रहण किया। इसी प्रकार चिंतन करते हुए उनका आयुष्य पूर्ण हो गया। श्रीकृष्ण वासुदेव १६ वर्ष तक कुमारवस्था में, ५६ वर्ष तक मांडलिक अवस्था में, ६२८ वर्ष अर्धचक्री अवस्था में रहे और इस प्रकार उनका कुल आयुष्य १ हजार वर्ष का हुआ।<sup>२१३</sup>

२१३. (क) त्रिषष्टि : ८/११/१६५

(ख) कृष्ण नारायण की कुल अवस्था एक हजार वर्ष की थी। उसमें १६ वर्ष कुमार अवस्था में, ५६ वर्ष मांडलिक अवस्था में, ८ वर्ष दिग्विजय में और ६२० वर्ष राज अवस्था में व्यतीत हुए।

—हरिवंशपुराण :: आचार्य जिनसेन, ६०/५३२-३३ पृ० ७५६

(ग) वैदिक ग्रंथों में श्रीकृष्ण की आयु १२० वर्ष की मानी गयी है।

(घ) श्रीकृष्ण जीवन के कतिपय प्रमुख तिथि—संवत्—

१. मथुरा में जन्म और गोकुल को प्रस्थान—संवत् ३१२८ विक्रम पूर्व भाद्र-पद कृष्णाष्टमी, वृषभलग्न, रोहिणी नक्षत्र, हर्षणयोग, अर्द्धरात्रि

२. गोकुल से वृन्दावन प्रस्थान—आयु ४ वर्ष, सं० ३१२४ वि० पूर्व।

३. कालिय नाग का दमन आयु ८ वर्ष, सं० ३१२० वि० पूर्व।

४. गोवर्धन धारण—आयु १० वर्ष, सं० ३११८ वि० पूर्व।

५. रासलीला का आयोजन आयु ११ वर्ष, सं० ३११७ वि० पूर्व।

६. वृन्दावन से मथुरा को प्रस्थान—आयु १२ वर्ष, सं० ३११६ वि० पूर्व और कंस वध फाल्गुन शुक्ला १४।

७. मथुरा में यज्ञोपवीत और संदीपन के गुरुकुल को प्रस्थान—आयु १२ वर्ष, सं० ३११६ वि० पूर्व।

८. जरासंध का मथुरा पर आक्रमण—आयु १३ वर्ष, सं० ३११५ वि० पूर्व।

९. मथुरा का राजकीय जीवन और जरासंध से १७ बार युद्ध—आयु १३ से ३० वर्ष, सं० ३११५ से ३०६८ वि० पूर्व।

१०. द्वारिका को प्रस्थान और रुक्मिणी से विवाह—आयु ३१ वर्ष, सं० ३०६७ वि० पूर्व।

११. द्रौपदी स्वयंवर और पांडवों से मिलन—आयु ४३ वर्ष, सं० ३०८५ वि० पूर्व।

१२. अर्जुन सुभद्रा विवाह—आयु ६५ वर्ष, सं० ३०६३ वि० पूर्व।

१३. अभिमन्यु जन्म—आयु ६७ वर्ष, सं० ३०६१ वि० पूर्व।

१४. युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ—आयु ६८ वर्ष, सं० ३०६० वि० पूर्व।

१५. महाभारत का युद्ध—आयु ८३ वर्ष, सं० ३०४५ वि० पूर्व।

१६. कलियुग का आरंभ और परीक्षित का जन्म—आयु ८४ वर्ष, सं० ३०४४ वि० पूर्व की चैत्र शुक्ला १

**बलदेव द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण करना**

जल लेकर लौटे तो बलराम ने भाई को अचल पाया। उन्होंने बार-बार पुकारा, पर कोई उत्तर न पाकर उन्होंने सोचा भाई निद्रा-मग्न है। मोहवश वे मरण की कल्पना भी नहीं कर पाये। वे श्रीकृष्ण की पार्थिव देह कंधे पर लादे वन में भटकने लगे। किसी समय सिद्धार्थ बलराम का सारथी था, जो संयम का पालन कर देव हो गया था। देव ने बलराम की मोहदशा दूर करने का प्रयत्न किया। प्रस्तर रथ तैयार कर उसे ढलान से लुढ़का दिया और रथ खंड-खंड हो गया। देव प्रस्तर खंडों को जोड़ने लगा। बलदेव ने कहा—प्रस्तर खंड भी कहीं जुड़ सकते हैं? देव ने प्रत्युत्तर में कहा—मृतक भी कभी सजीव हो सकता है? और अप्रभावित से बलराम आगे बढ़ गये। देव फिर बलराम को आगे मिला एक किसान के रूप में, जो पत्थर पर कमल उगा रहा था। बलराम ने कहा—तुम बावले हो, पत्थर पर भला कभी कमल खिल सकता है? किसान रूप में देव ने उत्तर दिया—मुर्दे भी भला कभी जीवित हो सकते हैं? पर बलराम का मोह न छूटा, वे आगे बढ़ गये। अब किसान रूप में वही देव एक सूखे पेड़ के ठूठ को पानी पिलाता हुआ मिला तो बलराम ने कहा—तुम मूर्ख हो, सूखा ठूठ भी कभी हरा हो सकता है? देव ने अब की बार स्पष्टता के साथ कहा—फिर तुम्हारा मृत भाई कैसे जीवित हो सकता है? बलराम सघन मोह से घिरे थे, वे कथन को श्रीकृष्ण के संदर्भ में नहीं जान पाये और आगे बढ़ गये। आगे बलराम ने देखा कि एक मृत गाय को किसान घास खिलाने का प्रयत्न कर रहा है। किसान को इस बार भी मूर्ख कहते हुए बलराम ने कहा—तुम्हारा प्रयत्न सफल न होगा। मृत गाय घास कैसे खायगी? किसान ने कहा—तुम भी किसी आशा से ही अपने भाई का शव ६ महिने से कंधे पर लादे धूम रहे हो। अब बलराम का मोह टूटा। उन्हें लगा कि मृत देह से दुर्गंध आ रही है। उन्होंने पार्थिव तन कंधे से उतारा और अंतिम संस्कार किया।<sup>214</sup> मुनि के सदुपदेश से बलदेव प्रति-बोधित हुए और उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

१७. श्रीकृष्ण का तिरोधान और द्वारिका का अंत—आयु १२० वर्ष, सं० ३००८ वि० पूर्व।

१८. परीक्षित का राजतिलक और पांडवों का हिमालय प्रस्थान—सं० ३००७ वि० पूर्व।

१९. श्रीकृष्ण का मरण न मानकर वैदिक परंपरा में उनका तिरोधान माना गया है।

२१४. (क) हरिवंशपुराण—(आचार्य जिनसेन) के अनुसार—

मुनि बलदेव ने घोर तप किया। विचरण करते हुए वे नगर के बाहर एक कुएँ के पास पहुँचे; जहाँ जल लेने को एक स्त्री आयी थी। वह मुनि के रूप पर मुग्ध हो गयी और घड़े के स्थान पर अपने बालक के गले में रस्सी का फन्दा कसने लगी। स्त्री को सचेत कर बालक के प्राण मुनि ने बचा लिये, पर उनको अपने रूप पर क्षोभ होने लगा और उन्होंने अभिग्रह लिया कि अब मैं किसी बस्ती में न जाऊँगा। वन में ही निर्दोष भिक्षा मिली तो ग्रहण करूँगा, अन्यथा निराहार रहूँगा।

वन में तपस्यारत मुनि बलराम को देख कर वनवासी भांति-भांति की कल्पना करते थे। कोई उन्हें तापस मानते थे तो कोई तंत्रसाधक। सूचना पाकर राजा अपनी सेना लेकर वन में आया। वह मुनि को मार देना चाहता था। अवधिज्ञान से देव (सिद्धार्थ) को सब कुछ ज्ञात हो गया। उस ने वन में अनेक सिंह विकुर्वित कर दिये। भयंकर सिंहों से आतंकित सेना भागाँखड़ी हुई। राजा मुनिराज के चरणों में गिरकर अपने अशुभ विचार पर बार-बार क्षमा याचना करने लगा। देव ने दयापूर्वक अपनी माया हटा ली।

मुनि की प्रबल अहिंसा भावना का प्रभाव वन के पशु-पक्षियों पर भी था। पारस्परिक वैमनस्य भुलाकर वे स्नेहपूर्वक एक साथ रहने लगे। स्नेहाभिभूत होकर एक मृग तो सदा मुनि के साथ रहने लगा। मृग जिधर निर्दोष आहार की सम्भावना होती मुनि को उधर ही ले चलता था। यह मृग एक दिन मुनि को एक रथारूढ़ व्यक्ति के पास ले गया। रथी ने सभक्ति प्रणाम कर निर्दोष आहार अर्पित किया। मृग के नेत्र साश्रु हो उठे। वह रथी को सौभाग्यवान मान रहा था; जिसे मुनि सेवा का अवसर मिला। मुनि सोच रहे थे कि यह श्रावक उत्तम बुद्धिवाला और भद्र परिणामी है।

जरत्कुमार (जराकुमार) के बाण से श्रीकृष्ण के निधन का समाचार पाकर पांडवगण द्रौपदी और माता कुंती वहाँ आते हैं और श्रीकृष्ण का अंतिम संस्कार करने के लिए बलदेव से निवेदन करते हैं। बलदेव कुपित हो जाते हैं। तब पांडवादि बलदेव के इच्छानुसारी हो गये। चातुर्मास समाप्त हो जाने पर श्रीकृष्ण की मृत काया से दुर्गन्ध आने लगी, तो सिद्धार्थ देव ने आकर बलदेव को प्रतिबोधित किया। हरिवंश ७३/५४-६८

(ख) पांडवपुराण (शुभचंद्राचार्य) के अनुसार—

पहले सिद्धार्थ देव आकर बलदेव को प्रतिबोध देते हैं, किंतु उन पर कोई प्रभाव नहीं होता। बाद में पांडव आकर उन्हें स्नेहपूर्वक समझाते हैं तब उनका मोह कुछ कम होता है। पर्व २२, श्लोक ७८-७९



मुनि बलराम, मृग और रथी इस प्रकार शुभ विचारों में मग्न थे कि तभी सहसा वृक्ष की एक भारी शाखा टूटकर उन पर गिरी और तीनों प्राणियों कि इहलीला समाप्त हो गयी। शुभध्यान में देह त्याग कर ये तीनों ब्रह्म देवलोक के पद्मोत्तर विमान में उत्पन्न हुए।

**महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष**

हिन्दी जैन साहित्य में श्रीकृष्ण कथा को मैंने अपनी अल्पमति के अनुसार प्राकृत आगम, प्राकृत आगमेतर तथा अपभ्रंश और संस्कृत जैन ग्रंथों के आधार पर यहाँ पर संक्षिप्त रूप में सप्रमाण और ससंदर्भ प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, यही इस अध्याय का महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है। अगले अध्यायों में हिन्दी जैन श्रीकृष्ण साहित्य का अनुशीलन मैं प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

---

## हिंदी जैन श्रीकृष्ण रास, पुराण-साहित्य और अन्य

### भूमिका

इतर साहित्य की भाँति ही जैन हिन्दी श्रीकृष्ण साहित्य के विकास की यात्रा में भी अपभ्रंश के पश्चात् हिन्दी का पड़ाव आता है। हिन्दी साहित्य में भी जैन साहित्य प्रचुरता के साथ मिलता है। वर्तमान में अनेक मनीषि साहित्यकार इस दशा में कार्य करने के लिए सचेष्ट हैं और अब तक रचित हिन्दी जैन कृष्ण साहित्य जो समय के आवरण में लुप्त हो गया है उसका भी पुनः अन्वेषण हो रहा है। फलतः अतीत में रचित ऐसे अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ अन्वेषित हुए हैं जिनके कारण आदिकालीन साहित्य की कुछ प्रतिष्ठित मूल धारणाओं को भी पुनर्विचार को प्रेरणा दी है। कुछ विद्वानों का यह मत रहा है कि आदिकाल में ही हिन्दी साहित्य की प्रमुख कृतियाँ मिलती हैं<sup>१</sup>—खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद प्रकाश, जयमंयक जस चन्द्रिका, परमाल रासो, रणमल छन्द, खुसरो की पहेलियाँ, विद्यापति पदावली आदि।

इन कृतियों को महत्ता प्रदान करते हुए आदिकाल की साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का अध्ययन करने के लिए इन कृतियों को आधारभूत माना गया है। जैन साहित्य भण्डारों की खोज की उपलब्धियों ने उन सारी धारणाओं को प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा आदिकालीन कृतियों के रूप में निश्चित की गयी कृतियों में से कुछ को छोड़कर शेष नयी खोजों पर सन्दिग्ध ठहरती हैं। इन नवीन खोजों के निष्कर्षानुसार इनमें से अनेक ग्रन्थ बहुत बाद की रचनाएं सिद्ध होती हैं और साथ ही अनेक नवान्वेषित कृतियाँ आदिकाल की रचनाओं के

रूप में प्रतिष्ठित होने योग्य सिद्ध हो रही हैं। इस प्रकार की अधिकांश कृतियाँ जैन हिन्दी साहित्य की हैं।

हिन्दी में श्रीकृष्ण सम्बन्धी साहित्य जैन और जैनेतर दोनों ही क्षेत्रों में पर्याप्त रचा गया और रचा जा रहा है। यद्यपि मूल प्रतिपाद्य विषय श्रीकृष्णचरित दोनों ही क्षेत्र के लिए एक ही रहा है, तथापि दोनों क्षेत्रों की रचनाओं में कतिपय ऐसी भिन्नताएं और असामान्यताएं भी विद्यमान हैं। उनके आधार पर इन दोनों प्रकार की रचनाओं को स्पष्टतः पृथक्-पृथक् पहचाना जा सकता है। दोनों की आकृतियाँ ही पृथक्-पृथक् दृष्टिगत होती हैं।

जैन और जैनेतर कृष्ण साहित्य में शिल्प सम्बन्धी एक मूलभूत अंतर तो यह है कि जैन क्षेत्र में यह साहित्य अधिकांशतः प्रबन्धात्मक है। इन रचनाओं में श्रीकृष्ण जीवन सम्बन्धी प्रसंगों का एक सुगठित और सोद्देश्य कथानक का आधार लिया गया है। इसके विपरीत जैनेतर हिन्दी श्रीकृष्ण साहित्य अधिकांशतः मुक्तक रूप का है।

अन्य ज्ञातव्य, महत्वपूर्ण अन्तर श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखता है जिसे जैन और जैनेतर क्षेत्रों में अपनाया गया है। हिन्दी श्रीकृष्ण साहित्य की जैनेतर परम्परा में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का जो रूप खड़ा हुआ है, उसके अनुसार श्रीकृष्ण गोपीजनवल्लभ, राधाधरसुधापायी, रास-प्रिय, रसिक, वनमाली, होली खेलने वाले लला ही अधिक लगते हैं। उनका यह रूप केलि-प्रिय और सामान्य धरातल तक ही सीमित रह गया है। जैनेतर परम्परा में वैदिक मान्यता के अनुरूप उनके व्यक्तित्व में अवतारीतत्त्व, दिव्यता और अलौकिकता भी ठीक से नहीं उतर पायी है। जैन परम्परा में भी यह अलौकिकता एवं दिव्यता नहीं आ पायी है और न वह आ भी सकती थी। कारण यह है कि ईश्वर जैसी किसी सत्ता में मूलतः जैनों का वह विश्वास ही नहीं है। जैनमत तो मानवीय सत्ता को ही सर्वोपरि मानता है। श्रीकृष्ण का जो स्वप्न जैन परम्परा में मान्य रहा है वह तो एक पराक्रमशील महान् पुरुष का ही है। इस स्वरूप में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा में हिन्दी जैन श्रीकृष्ण साहित्य सर्वथा सफल और समर्थ रहा है। श्रीकृष्ण इस परंपरा में भी मानव और लौकिक रूप में ही चित्रित हुए हैं। किन्तु, उनके व्यक्तित्व में एक भव्यता और महानता के दर्शन होते हैं। उन्हें साधारण रसिया के स्तर पर नहीं लाया गया अपितु नरोत्तम माना गया है। वे जैन परंपरा में मान्य ६३ इलाका पुरुषों में सम्मान्य स्थान रखते हैं और शूर-वीर, शक्तिशाली, यशस्वी, तेजस्वी और वर्चस्वी-सम्राट हैं। उन्हें शक्ति, शील व सौंदर्य का संगमरूप दिया गया है। वे

“वासुदेव” हैं और अधम, आततायी, अन्यायी एवं अत्याचारी जनों से पृथ्वी को भार-मुक्त करने वाले हैं।

श्री महावीर कोटिया की मान्यता है कि आसन्न-भूतकाल में ही लगभग पचास ऐसे ग्रंथ खोजे गये हैं जिनकी गणना हिंदी जैन श्रीकृष्ण साहित्य की परंपरा में की जा सकती है। इनमें से कतिपय ग्रंथ काव्य की दृष्टि से अति सुंदर और उत्तम हैं। आदिकाल की परिधि में आने वाले ग्रंथों को उन्होंने विशेष उल्लेखनीय माना है। भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी इन ग्रंथों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी जैन कृष्ण चरित संबंधी प्रमुख रचनाएँ निम्नानुसार हैं—

कवि का नाम	कृति का नाम	रचना काल
१. नेमिनाथ रास	सुमतिगणि <sup>२</sup>	१२३८ ई०
२. गजसुकुमाल रास	कवि देल्हण (देवेंद्र सूरि) <sup>३</sup>	१३ वीं शताब्दी
३. प्रद्युम्न चरित	कवि संघारु <sup>४</sup>	१३५४ ई०
४. ...रंगसागर नेमि फागु	सोमसुंदरसूरि <sup>५</sup>	१४२६ ई०
५. सुरंगाभिध नेमिफागु	धनदेवगणि <sup>६</sup>	१४४५ ई०
६. हरिवंशपुराण	ब्रह्म जिनदास <sup>७</sup>	१४६३ ई०
७. नेमिनाथ फागु	जयशेखरसूरि <sup>८</sup>	१५वीं शताब्दी
८. बलिभद्र चौपई	कवि यशोधर <sup>९</sup>	१५२८ ई०
९. नेमिनाथ रास	मुनि पुण्यरतन <sup>१०</sup>	१५२९ ई०
१०. प्रद्युम्नरासो	ब्रह्म रायमल <sup>११</sup>	१५७१ ई०

- 
२. हस्तलिखित प्रति जैसलमेर दुर्ग शास्त्र भण्डार
  ३. आदिकाल की प्रामाणिक हिन्दी रचनाएँ, पृ० ५७ से ६०. सं. डा. गणपति चंद्रगुप्त
  ४. सं. पं. जैनसुखदास न्यायतीर्थ व डा. कस्तुरचन्द कासलीवाल
  ५. वही — पृ. ११९ से १२६
  ६. हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ, पृ. १३६ से १५८
  ७. हस्तलिखित प्रति खण्डेलवाल दिगंबर जैन मन्दिर, उदयपुर
  ८. वही, जैसे पांच में है।
  ९. अप्रकाशित
  १०. अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध दिगंबर जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर
  ११. प्रति उपलब्ध आमेरशास्त्र भण्डार, जयपुर

कवि का नाम	कृति का नाम	रचनाकाल
११. नेमीश्वर रास	ब्रह्म रायमल <sup>१२</sup>	१५५८ ई०
१२. नेमीश्वर की बेलि	कवि ठाकुरजी <sup>१३</sup>	१६वीं शताब्दी
१३. बलभद्र बेलि	कवि सालिग <sup>१४</sup>	ई० सन् १६१२
१४. हरिवंशपुराण	शालिवाहन <sup>१५</sup>	१६३८ ई०
१५. नेमीश्वर चंद्रायण	भ० नरेंद्रकीर्ति <sup>१६</sup>	१६३३ ई०
१६. नेमिनाथ रास	कनककीर्ति <sup>१७</sup>	१६३५ ई०
१७. नेमिनाथ रास	मुनि केशरसागर <sup>१८</sup>	प्रतिलिपि सन् १६३५ ई०
१८. प्रद्युम्न प्रबंध	देवेंद्रकीर्ति <sup>१९</sup>	१६६५ ई०
१९. पांडवपुराण	बुलाकीदास <sup>२०</sup>	१६६७ ई०
२०. नेमिश्वर रास	नेमिचंद <sup>२१</sup>	१७१२ ई०
२१. हरिवंशपुराण	खुशालचंद काला <sup>२२</sup>	१७२३ ई०
२२. उत्तरपुराण	खुशालचंद काला <sup>२३</sup>	१७३२ ई०
२३. नेमिनाथ चरित्र	अजयराज पाटनी <sup>२४</sup>	१७३६ ई०

१२. प्रति उपलब्ध आमेरशास्त्र भण्डार, जयपुर

१३. प्रति उपलब्ध दिगंबर जैन मंदिर बधीचन्द, जयपुर

१४. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, वि० सं० १६६६ की प्रति उपलब्ध है।

१५. प्रति उपलब्ध दिगंबर जैन पल्लीवाल मन्दिर, पुलियागंज, आगरा और आमेर-  
शास्त्र भण्डार, जयपुर

१६. प्रति उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर

१७. अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध विनयचन्द ज्ञान भण्डार जयपुर

१८. " " " "

१९. " " दिगंबर जैन भण्डार, जयपुर

२०. " " शास्त्र भण्डार, श्री महावीरजी जयपुर

२१. " " आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर

२२. " " " "

२३. " " दिगंबर जैन भण्डार, जयपुर

२४. " " " "

२४. नेमिनाथ चरित्र	जयमल <sup>25</sup>	१७५७ ई०
२५. नेमिनाथ रास	रत्नमुनि <sup>26</sup>	१७६७ ई०
२६. नेमनाथ रास	विजयदेवसूरि <sup>27</sup>	१७६६ ई०
२७. नेमिचंद्रिका	मनरंगलाल पल्लीवाल <sup>28</sup>	१८२३ ई०
२८. प्रद्युम्न चरित	मुन्नालाल <sup>26</sup>	१८४४ ई०
२९. कृष्ण की रिद्धि	बुद्धमल <sup>30</sup>	१८४४ ई०
३०. भगवान नेमनाथ और मुनि चौथमलजी <sup>31</sup>		१९४१ ई०
पुरुषोत्तम कृष्ण		
३१. भगवान अरिष्टनेमि श्री देवेंद्रमुनि जी शास्त्री <sup>32</sup>		१९७१ ई०
और कर्मयोगी श्रीकृष्ण		
एक अनुशीलन		

### अमम स्वामी चरित्र—

“अमम स्वामी चरित्र” शीर्षक से मुनिरत्नसूरि द्वारा वि० सं० १२५२ में रचना की गयी है। इस ग्रंथ में श्रीकृष्ण का जीवन चरित विस्तार से वर्णित है जो अमम स्वामी के नाम से भावी तीर्थंकर होने वाले हैं। ग्रंथ में श्रीकृष्ण के पूर्वभवों के वर्णन भी हैं—यह इस ग्रंथ की विशेषता है। सामान्यतः श्रीकृष्ण के पूर्वभवों को या तो अन्य ग्रंथों में वर्णित ही नहीं किया गया या उनका अतिसंक्षिप्त वर्णन ही किया गया है।

इन मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त कतिपय अनुवाद ग्रंथ भी हैं। मूलरूप में अन्य भाषाओं में रचित प्रमुख ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया गया है। प्रमुख अनुवादित ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं :

१५. अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध	विनयचन्द ज्ञान भण्डार, जयपुर
२६.        "               "	दिगंबर जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर
२७.        "               "	"               "
२८.        "               "	"               "
२९. अप्रकाशित, दिगंबर जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर	
३०.        "               "	विनयचन्द ज्ञान भण्डार जयपुर
३१.        "               "	सिरेमलजी नन्दलालजी पीतलिया, सिहोर केण्ट
३२. प्रकाशित, तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर	

अनुवादित ग्रंथ	अनुवादक
नेमिपुराण भाषा	भागचंद
नेमिपुराण भाषा	वखतावरमल
प्रद्युम्नचरित भाषा	ज्वालाप्रसाद वखतावर सिंह
पांडव पुराण	पन्नालाल चौधरी
नेमिपुराण भाषा	उदयलाल
नेमिनाथ चरित	काशीराम
प्रद्युम्नचरित	शीतलप्रसाद
प्रद्युम्नकुमार (पद्यानुवाद)	अमोलक ऋषिजी
प्रद्युम्नकुमार (गद्य संस्करण)	शोभाचन्द्र भारिल्ल
उत्तर पुराण वचनिका	पन्नालाल द्वीवाले
प्रद्युम्नचरित	वरव्तावरमल रतनलाल
प्रद्युम्नचरित वचनिका	मन्नालाल बैनाडा

स्थानकवासी जैन परंपरा में अनेक मुनिवर स्वाध्याय व सृजन की साधना में भी प्रवृत्त हैं और उनके सद्-प्रयासों से जैन धर्म एवं दर्शन के प्रचार-प्रसार में अत्यंत मूल्यवान योगदान हुआ है। विगत कुछ दशकों से तो एक प्रबल अभियान के रूप में इस प्रयत्न को ग्रहण किया जा रहा है और इसकी उत्तम उपलब्धियां भी हो रही हैं। किंतु, यत्किंचित् रूप में यह प्रयत्न प्रत्येक काल में अवश्य अस्तित्व में रहा है। इन असंख्य ग्रन्थों में अनेक रचनाएं जैन परंपरानुसार श्रीकृष्ण के जीवन और व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालती हैं।

आचार्य श्री जयमल जी महाराज की इस प्रकार की रचनायें हैं— भगवान नेमिनाथ, महारानी देवकी, श्रीकृष्ण की ऋद्धि आदि।<sup>३३</sup> इसी प्रकार कवि रायचंद जी महाराज की प्रतिष्ठित रचनाएं हैं—राजीमती नेमिनाथ चोढाल्या (सं० १८३४), राजीमती रथनेमि की सज्जाय (सं० १८४१), कृष्ण भेरी संवाद (सं० १८४३), देवकी रानी की ढाल आदि<sup>३४</sup>। आचार्य रायचंद जी म० आचार्यजयमल जी महाराज के संप्रदाय के थे।

३३. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि द्वारा “जयवाणी” सन्मति ज्ञान पीठ आगरा से वि० सं० २०१६ में प्रकाशित

३४. मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रन्थ का लेख—संतकवि रायचंद जी और उनकी रचनाएं

श्री चौथमलजी महाराज ने श्रीकृष्ण लीला की रचना की, नेमिचंद जी महाराज की रचना नेमिनाथ और राजुल है।<sup>३५</sup> आचार्य खूबचंद जी महाराज ने प्रद्युम्न और शांबकुमार की ढाल बनायी। जैन दिवाकर चौथमल जी महाराज ने भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण<sup>३६</sup> तथा मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमल जी महाराज का महाभारत<sup>३७</sup> व प्रवर्तक शुक्लचंद जी महाराज<sup>३८</sup> तथा प्रवर्तक सूर्यमुनि<sup>३९</sup> जी महाराज का महाभारत भी सुन्दर रचनाएं हैं। तेरापंथी मुनियों की भी अनेक रचनाएं मिलती हैं।<sup>४०</sup>

पं० काशीनाथ जैन का नेमिनाथ चरित्र भी एक सुंदर कृति है।

शोध-संपादन के आज के युग में अनेक आधुनिक प्रतिभाशाली साहित्यकारों ने अपने कौशल का परिचय देते हुए श्रीकृष्ण संबंधी चरित को अपने-अपने रूपों और आकारों में प्रस्तुत किया है। जयपुर, जोधपुर, खण्डप, पीपाड़, उदयपुर आदि स्थानकवासी भण्डारों में अनेक ग्रन्थ सुरक्षित हैं।

पं० सुखलालजी ने “चार तीर्थंकर” में और पंडित कैलाशचन्द जी ने ‘जैन साहित्य के इतिहास की पूर्वपीठिका’ में श्रीकृष्णचरित की जैन परंपरा से अनुमोदित झांकी प्रस्तुत की है। श्री अगरचन्द जी नाहटा ने ‘प्राचीन जैन ग्रन्थों में श्रीकृष्ण का नाम’ के लेखों द्वारा व्यवस्थित रूप में संक्षिप्त किंतु ठोस व प्रामाणिक श्रीकृष्ण-जीवन के प्रसंग प्रस्तुत किए हैं। ‘अरहंत नेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण’ में श्रीचन्दजी रामपुरिया का भी ऐसा ही सफल उपक्रम हमारे सामने आता है। श्री महावीर कोटिया ने “जैन श्रीकृष्ण साहित्य में श्रीकृष्ण” जैसे लेखों के माध्यम से श्रीकृष्ण चरित को अद्भुत कौशल के साथ ज्ञापित किया है। श्री कोटिया के ऐसे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लेख जिनवाणी पत्रिका में सादर स्थान प्राप्त करते रहे हैं।<sup>४१</sup> ‘मुनि हजारीमल अभिनन्दन ग्रंथ’ में इस संबंध में श्री कोटिया की प्रतिभा का परिचय मिला है।

३५. सं० पूज्य श्री देवेंद्र मुनिजी “नेमवाणी”

३६. भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, प्र० व्यावर

३७. पांडव यशोरसायन (महाभारत) ले. मरुधरकेशरी मिश्रीमल,

३८. महाभारत, प्रवर्तक शुक्लचंदजी, प्र० अंबाला पंजाब

३९. महाभारत, सूर्यमुनि जी

४०. मुनि धनराज जी, जैन महाभारत आदि।

४१. जैन श्रीकृष्ण साहित्य विषयक लेख—जिनवाणी पत्रिका,



प्राचीन और अर्वाचीन जैन श्रीकृष्ण साहित्य में श्रीकृष्ण चरित्र के अनेकानेक प्रसंग अव्यवस्थित रूप से बिखरे पड़े हैं। इनका संकलन और इन्हें व्यवस्थित रूप देकर जैन दृष्टि से श्रीकृष्ण का समग्र व्यक्तित्व एक साथ उभारने के भी अध्यवसाय पूर्ण कुशल प्रयत्न हुए हैं। इस दृष्टि से पूज्य युवाचार्य मधुकरमुनि जी व पूज्यपाद देवेंद्रमुनि जी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। मधुकर मुनिजी की 'जैन कथामाला की' रचना के विराट प्रयत्न को सभी दिशाओं से साधुवाद मिला है उन्होंने अपने "जैन श्रीकृष्ण कथा" में विभिन्न आगम व आगमेतर ग्रंथों से अपेक्षित प्रसंगों का चयन कर श्रीकृष्ण चरित को बड़ी कौशलता के साथ रूपायित किया है। इसी प्रकार पूज्यवाद श्री देवेंद्र मुनि जी शास्त्री ने अपने 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्म-योगीश्रीकृष्ण : एक अनुशीलन ग्रंथ' में अथक श्रमशीलता, विद्वत्ता, बहुश्रुतता और बहुज्ञता का परिचय देते हुए अनेक ग्रंथों से अपेक्षित सामग्री जुटाकर श्रीकृष्ण का जो जैन परंपरा संमत स्वरूप खड़ा किया है वह एक श्लाघनीय और स्तुत्य कार्य है। इस ग्रंथ द्वारा विद्वान लेखक ने अनेक जैन मान्यताओं का प्रतिपादन और जैन दर्शन के अनेक मूलभूत विचारों का सुगम संप्रेषण भी किया है और साथ ही श्रीकृष्ण के संपूर्ण चरित्र को इस कौशल के साथ रूपायित किया है कि जैन परंपरा द्वारा स्वीकार्य स्वरूप में श्रीकृष्ण के चरित्र को सभी विशेषताएं स्वतः ही व्यक्त होकर निखर उठी हैं। इस ग्रंथ में मुनि जी की मौलिकता और शोधप्रधान दृष्टि विशेष द्रष्टव्य है।<sup>४२</sup>

### (१) हरिवंश पुराण

हरिवंश पुराण के रचयिता शालिवाहन थे, जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (संस्कृत) के आधार पर यह रचा गया है। रचयिता ने इसका उल्लेख अपनी रचना की प्रत्येक संधि के अंत में इस प्रकार दिया है : — 'इति श्री हरिवंशपुराणे संग्रहे भव्यसमंगलकरणे आचार्य-श्रीजिनसेन-विरचिते तस्योपदेशे श्रीशालिवाहन विरचिते।' यह ग्रंथ संवत् १६६५ सन् १६३८ में रचा गया जिसका कवि ने इस प्रकार उल्लेख किया है—

संवत् सोरहसै तहां भये, तापर पंचानव गहे ।

माघमास कृष्ण पछि जानि, सोमवार सुभवार बखानि ॥३॥ ७८॥

यह रचना जब हो रही थी तब लेखक आगरे में रहता था तथा वहीं पर यह रचना पूर्ण की गयी थी, उस समय शाहजहां आगरे में राज्य करता था। इसका भी उल्लेख—

४२. भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी : श्रीकृष्ण एक अनुशीलन—देवेंद्रमुनि शास्त्र।

नगर आगरा उत्तम थानु, शाहजहां साहि दिए मनु भानु (३-८।)

कई स्थानों पर इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हैं।<sup>४३</sup> इस रचना की १२ से २६ संधियों में श्रीकृष्ण का चरित्र वर्णित हुआ है। प्रथम संधि में २४ तीर्थकरों की व सरस्वती माता की वंदना है। दूसरी, तीसरी संधि में त्रैलोक्य वंदन, चौथी संधि में तीर्थकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत का चरित्र वर्णन है। ५ से ११ तक की संधियों में २१ तीर्थकरों, १२ चक्रवर्ती, ८ बलदेव, ८ वासुदेव और ८ प्रतिवासुदेवों का संक्षिप्त चरित्र है। इसके बाद संपूर्ण कृति में २२ वें तीर्थकर अरिष्टनेमि और नवम वासुदेव कृष्ण चरित्र का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। साथ ही कृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमाल तथा पुत्र प्रद्युम्न कुमार का वर्णन भी अवांतर प्रसंगों में आया है। भाषा राजस्थानी से प्रभावित व्रज है। दोहा, चौपाई छंदों में रचित इस रचना में कृष्ण के वीरत्व को अधिक उभारा गया है।

कंस की मल्ल-शाला में कृष्ण-पराक्रम का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है :

चड़न मल्ल उठ्यो काल समान, वज्रमुष्टि दैयत समार ।

जानि कृष्ण दोनों कर गहे, फेर पाई धरती पर चहे ॥१॥<sup>४४</sup>

रुक्मिणी-हरण के प्रसंग में कृष्ण जब पांचजन्य शंख फूकते हैं तो संपूर्ण धरामंडल थरथरा उठा व शत्रुगण कंपित हो उठे<sup>४५</sup>—

लई रुक्मिणी रथ चढ़ाई: पंचाइन तब पूरीयो ।

णिमुनि वयणु सब सेन कंण्यो महिमण्डल थरहरीयो ।

मेरु कमठ तथा शेष कंण्या महलो जाइ पुकारियो ।

पुहुमि राहु अवधारियो, रुक्मिणी हरि ले गयो ॥२॥

इस प्रकार युद्ध का कवि ने बड़ा उत्कृष्ट वर्णन कर काव्यकृति में चमत्कार भर दिया है। साथ ही जरासंध युद्ध में भी यह वीरत्व साकार हो उठा है। जो चक्र जरासंध का कृष्ण के ऊपर बार करने के लिये उठा था

४३. हरिवंशपुराण (एक प्रतिलिपि), श्री पल्लीवाल दिगंबर जैन मंदिर, धुलियागंज, आगरा, प्रतिलिपिकाल संवत् १८०८ है। दूसरी प्रति आमेर शास्त्र भांडार, जयपुर—प्रतिलिपि संवत् १७५६ है।

४४. शालिवाहन कृत हरिवंशपुराण (हस्तलिखित आगरा प्रति, पत्र ४५/१७८०-८१

४५. वही—पत्र ५२/१६५३।

वही चक्र कृष्ण की प्रदक्षिणा करके दाहिने हाथ पर स्थिर हो कर पुनः श्रीकृष्ण द्वारा छोड़े जाने पर उसी चक्र ने जरासंध का सिरच्छेद कर दिया है। कवि के शब्दों में देखिये—

तब मागधता सन्मुख गयो, चक्र फिराई हाकि करि लयो ।  
तापर चक्र डारियो जामा, तीनों लोक कंपीयो तामा ॥  
हरि को नमस्कार करि जानि, दाहिने हाथ चढ़यो सो आनि ।  
तब पारायण छाड़्यो सोइ, मागध टूक रतन सिर होई ॥<sup>46</sup>

युद्ध का कवि ने ओजस्वी शब्दों द्वारा तथा ओजस्वी भाषा में समर्थता पूर्ण वर्णन किया है जो द्रष्टव्य है—

सेसपाल अह भीखम राउ, पैदल मिले ण सुभं ठांड ।  
धीरण मुंदते उछली खेहु, जाणो गरजे भावों मेह ॥  
सारंग पाणी धनक ले हाथ, शशिपाले पठउ जमसाथ ।  
हाकि पछाडि उठे दोऊ वीर, बरसे बाण शयण घनघोर ॥<sup>47</sup>

प्रस्तुत कृति में श्रीकृष्ण के दूध-दही खाने और फैलाने का सुंदर, विवेचन है। यथा—

आपुन खाई ग्वाल घर देई, घरकी क्षार विराणो एहा लेई ।  
घर-घर बासण फोडे जाई, दूध-दही सब लेहि छिडाई ॥<sup>48</sup>

## (२) खुशालचंद काला कृत हरिवंश पुराण और उत्तर पुराण :

इन दोनों पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियां जैन ग्रंथ भण्डार आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर, बाबा दूलीचंद शास्त्र भण्डार जयपुर तथा सौगानियों का मंदिर, करौली राजस्थान में उपलब्ध हैं। जिनसेनाचार्य कृत संस्कृत हरिवंश पुराण और गुणभद्राचार्य कृत संस्कृत उत्तरपुराण की शैली में दोनों ग्रंथ रचे गए हैं। प्रथम कृति की रचना संवत् १७३० (सन् १६७३) और दूसरी की रचना संवत् १७६६ (सन् १७४२) में पूर्ण हुई, ऐसा उल्लेख स्वयं लेखक ने ग्रंथ की समाप्ति में दिया है।<sup>49</sup>

४६. हरिवंशपुराण : आगरा प्रति २५.१.४ ।

४७. वही—पत्र ५२/१६६८ व १६६३ ।

४८. हरिवंशपुराण, आगरा प्रति, १७०७-१७०८

४९. उत्तरपुराण ले. खुशालचंद काला (उक्त हस्तलिखित प्रति पृ० ३०८, छंद ६१-१०७ ।)

इन ग्रंथों के रचयिता जाति से दिगंबर जैन थे और इनका जन्म टोडा (जयपुर) ग्राम में हुआ। इसके बाद ये सांगानेर में जाकर बस गये और यहीं पर दोनों ग्रंथ रचे गये।

हरिवंश पुराण और उत्तरपुराण में परंपरागत जैन कथा-वस्तु-विवेचन है। हरिवंशपुराण में तीर्थंकर अरिष्टनेमि, उनके समकालीन कृष्ण, बलराम और जरासंध आदि शलाका पुरुषों का वर्णन है। उत्तरपुराण में ऋषभदेव के अतिरिक्त २३ अन्य तीर्थंकरों और उनके समकालीन शलाका पुरुषों के संक्षिप्त चरित वर्णित हैं। दोनों कृतियों की भाषा बोलचाल की सरल हिंदी है तथा दोनों में प्रसाद गुण पाया जाता है।

छंदों की दृष्टि से चौपाई, दोहा, सोरठा आदि मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है। सर्ग के लिए संधि शब्द का प्रयोग किया है। परंपरागत तीन श्रेष्ठ जैन पुरुष व्यक्तियों का इसमें समावेश है। यहां पर दोनों में से कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

१—देवां वन में जाय, मेघ तनी वरसा करी।<sup>50</sup>

गोवर्धन गिरिराय, कृष्ण उठाय चापसौ।

दूसरा उदाहरण मल्लयद्ध प्रसंग का है, यथा—

२—जाके सम्मुख दोड़्यो जाय, देत उपाय लये उमगाय।

ताहि दंत थकी गज मारी, हस्ति भागि चली पुर मझारि ॥

ताहि जीति शोभित भए, कंस आप मल्ल मति लखितए ॥

रुधिर प्रवाह थकी बिपरीत, देख क्रोध धरि करि तजि नीति ॥

आप मल्ल के आयां साथ, तब हरि वेग अरि निध जोय ॥

चरण पकरि तब लयो उठाय, पंखि सन उत ताहि फिराय ॥

केरि धरणि पटक्यो तबे, कृष्ण कोय उपनाय।

मानू यमराजा तणी, सौले भेट चढ़ाय ॥<sup>51</sup>

इसमें कृष्ण के वीर स्वरूप का उत्साह के साथ वर्णन है।

जरासंध के साथ हुए युद्ध में कृष्ण का यही पराक्रम अपने पूर्ण रूप से प्रकट हुआ है।

५०. हरिवंशपुराण पन्ना ६४, छंद ४७।

५१. उत्तरपुराण पन्ना २००, छंद ३ से ६।

दोनों कृतियां कृष्ण की वीरता और ऐसे पराक्रमों के अनेक वर्णनों से भरी पड़ी हैं।

### (३) नेमिनाथ रास :

श्रीकृष्ण चरित से संबद्ध उपलब्ध रास साहित्य में “नेमिनाथ रास” प्राचीनतम काव्य है। इसका रचना काल वि० सं० १२७० माना जाता है।<sup>५२</sup> इसके कर्ता सुमति गणि हैं जो खरतरगच्छीय श्री जिनपतिसूरि के शिष्य थे। रचनाकार का नामोल्लेख ग्रंथ की पुष्पिका में हुआ है :

“इति श्री नेमिकुमार रास पण्डित सुमतिगणि विरचितः ॥”

कृतिकार सुमति गणि राजस्थान के निवासी थे—ऐसा स्वीकार किया जाता है। जैसलमेर दुर्ग के बड़े भण्डार में “नेमिनाथ रास” की एक हस्त-लिखित प्रति उपलब्ध है। भाषा की दृष्टि से इस काव्य-रचना का अति महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रारंभिक हिंदी की एक प्रौढ़ और सुंदर रचना है। यह उस काल की रचना है जब कि हिंदी में अत्यल्प रचनाएं हो रही थीं। तब इस प्रकार की परिपक्व रचनाएं तो और भी कम थीं। यही इसका महत्व है।

### श्रीकृष्ण-वृत्तांत :

नेमिनाथ रास नायक प्रधान शीर्षक है और इससे स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि इस रास काव्य का मूल प्रतिपाद्य विषय भगवान नेमिनाथ का जीवन चरित्र है। तथापि प्रासंगिक रूप में श्रीकृष्ण का चरित्र भी वर्णित हुआ है। नेमिनाथ और राजुल का परिणय इस ग्रंथ में प्रमुख वर्ण्य विषय रहा है और इतिहास साक्षी है कि इस सारे प्रसंग में श्रीकृष्ण की भूमिका न केवल विशद अपितु महत्वपूर्ण भी रही है। ऐसी स्थिति में श्रीकृष्ण का वृत्तांत इस रचना में व्यापकता के साथ आये तो स्वाभाविक ही है।

“नेमिनाथ रास” में श्रीकृष्ण द्वारा के परम शक्तिशाली और पराक्रमी नरेश के रूप में वर्णित हुए हैं। उनकी विभिन्न रानियों—विशेषतः सत्यभामा का परिचय भी विस्तार से दिया गया है। विभिन्न छोटे-छोटे प्रसंगों में श्रीकृष्ण का उल्लेख मात्र ही प्रस्तुत काव्य में मिलता है। उनके चरित्र और चरित का व्यवस्थित एवं क्रमिक विकास नहीं है।

५२. भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन, ले. देवेंद्र मुनि शास्त्री, प्र० तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर।

### काव्यरूप एवं साहित्यिक सौष्ठव :

प्रस्तुत रचना एक चरित्र काव्य है अर्थात् यह एक प्रबंध काव्य है। कथानक की परीक्षा करने पर यह एक खंड काव्य सिद्ध होता है। एक सफल खंडकाव्य चरितनायक नेमिनाथ के जीवन की एक अतिमहत्वपूर्ण घटना—परिणय प्रसंग कथानक के केंद्र में रही है। नेमिनाथ चरित्र की सीमा में रहकर काव्य इसी के इर्दगिर्द घूमता रहा है। नायक के चरित्र का उद्घाटन बड़े ही कौशल के साथ हुआ है। रस, अलंकार योजना, शैली, वस्तुविधान, प्रबंधात्मकता आदि सभी विशेषताओं से युक्त प्रस्तुत खंड काव्य एक उत्तम कृति है।

### कथानक एवं उसकी संरचना :

जैन पौराणिक ग्रंथों में उपलब्ध नेमिनाथ आख्यान प्रस्तुत खंडकाव्य का आधार रहा है। वृष्णिवंशीय समुद्रविजय सौरियपुर नगर के राजा थे। राजा समुद्रविजय और रानी शिवा देवी राजकुमार नेमि के जनक-जननी थे। इन दिनों द्वारका के समुद्र राज्य के स्वामी श्रीकृष्ण राजकुमार के चचेरे भाई थे। द्वारका में ही समुद्रविजय का भी निवास था और नेमिकुमार का बाल्यकाल द्वारका में श्रीकृष्ण के साथ ही व्यतीत हुआ। आरंभ से ही सभी सुख-सुविधाओं एवं वैभव से परिपूर्ण परिस्थितियों के होते हुए भी नेमि निर्लिप्त मन के स्वामी रहे। सुखोपभोग के प्रति उनमें विकर्षण का भाव ही प्रधान रहा। वय होने पर श्रीकृष्ण द्वारा नेमिकुमार का विवाह राजा उग्रसेन की राजकुमारी राजुल के साथ निश्चित कर दिया गया। तोरण द्वार पर पहुंचते-पहुंचते भोज के लिए बांध रखे पशुओं का करुण-क्रंदन सुनकर वर नेमिकुमार को संसार से विरक्ति हो आयी और वे अनव्याहे ही लौट आए। रेवतक पर्वत (गिरनार) पर तपस्या लीन नेमिनाथ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई और वे अर्हन्त कहलाए। राजीमती ने भी इनके सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की। कालांतर में दोनों को मोक्ष प्राप्त हुआ। संक्षेप में “नेमिनाथ रास” का यही घटनाक्रम है।

शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो कार्य-व्यापार की विभिन्न अवस्थाओं के उचित निर्वाह से कथानक-विकास भी सफलता के साथ हुआ है। नेमिनाथ द्वारा कैवल्य-प्राप्ति इस कथानक में उद्देश्य अथवा फल है। सांसारिक सुख-सुविधाओं के प्रति उदासीनता का भाव और निर्लिप्तता चरितनायक के जीवन के इस रूप में आरंभ अवस्था दिखाई देती है। विरक्ति ही तो

कैवल्य या मोक्षमार्ग का प्रथम चरण है। श्रीकृष्ण अपनी रानियों की सहायता से नेमिकुमार को संसाराभिमुख बनाने और विवाह के लिए तत्पर करने का प्रयत्न करते हैं। यह विघ्न की अवस्था है। किंतु, रानियां असफल रह जाती हैं। यह नायकद्वारा फलप्राप्ति की आशा दिखानेवाली स्थिति प्राप्याशा की अवस्था है। नेमिकुमार वरवेष में राजुल के द्वार की ओर बढ़ते हैं। यहां फलप्राप्ति के मार्ग में वास्तविक और प्रबल विघ्न उपस्थित हो जाता है। किंतु, जब वे निरीह पशुओं का करुण-क्रंदन सुनकर विरक्ति भावना से प्रेरित होकर तोरणद्वार से लौट आते हैं तो यहां सारी विरोधी परिस्थितियां पराभूत हो जाती हैं। फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है। यह नियताप्ति की अवस्था है। अंत में कठोर तपसाधना द्वारा वे निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं जो कथानक का लक्ष्य है। यह फलागम की अवस्था है। अर्थ-प्रकृतियों और संधियों का निर्वाह भी इस कथानक में सफलता के साथ हुआ है। कथानक सर्वथा कसा हुआ है और कहीं भी शिथिलता नहीं आ पाई है। मात्र ५८ छंदों में ही सारी कथा वर्णित कर दी गयी है। इस दृष्टि से भी यह खंडकाव्य ही माना जावेगा।

#### चरित्रचित्रण :

खंडकाव्य की प्रकृति के अनुरूप नायक की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करना ही रचनाकार का प्रमुख लक्ष्य होता है। अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण गौण होता है और वह नायक के चरित्र को उभारने में सहायक मात्र होता है। “नेमिनाथ रास” भी इस सामान्य सिद्धांत का अपवाद नहीं है। इसमें नायक नेमिनाथ को चरित्रचित्रण की दृष्टि से प्रमुखता प्राप्त हुई है। नेमिनाथ श्रेष्ठ राजकुलोत्पन्न अतिसुंदर और सर्वगुण संपन्न राजकुमार हैं और अंततः तीर्थंकरत्व के गौरव से मंडित होते हैं। नायकोचित गरिमा से युक्त नेमिकुमार बलशाली हैं। बाल्यावस्था से ही श्रीकृष्ण के शस्त्रागार में जाकर उन्होंने अपनी शक्ति का जो परिचय दिया है वह इसका प्रमाण है। वे श्रीकृष्ण के धनुष को टंकारित कर देते हैं, जिन्हें श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं चढ़ा सकता था। पांचजन्य शंख को वे आस्फुरित कर देते हैं, जिसके आस्फुरण से स्वयं श्रीकृष्ण चौंक पड़ते हैं। सर्व सुख-सुविधा सुलभ होने पर भी वे संसार के प्रति आकृष्ट नहीं होते। इन सुखों को असार मानकर वे इनसे उदासीन रहते हैं। राज्य और वैभव के प्रति उन्हें तीव्र विरक्ति थी। यही विरक्ति प्रस्तुत काव्य में अनेक स्थलों पर व्यक्त हुई है तथा उत्तरोत्तर विकसित होती है। यही उदासीनता

अंततः उनके संसार से विरक्त होने में सहायक होती है। कठोर तप-साधना के परिणाम स्वरूप उन्हें कैवल्य व कालांतर में मोक्ष भी प्राप्त होता है।

**अन्य पात्र :**

नायक नेमिनाथ के अतिरिक्त भी अन्य कुछ पात्र ऐसे हैं जिनकी चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण इस प्रकार से हुआ है कि उनके नायक के चरित्रगत वैशिष्ट्य को उजागर करने में तो सहायता मिली ही है, साथ ही संबंधित पात्रों के चरित्र को भी महत्वपूर्ण अवकाश प्राप्त हुआ है। ऐसे पात्रों में अग्रगण्य हैं राजीमती (राजुल)। इसके अतिरिक्त जिन पात्रों का प्रासंगिक उल्लेख मिलता है वे हैं—राजा समुद्रविजय, रानी शिवादेवी, द्वारकाधीश श्रीकृष्ण, बलभद्र, श्रीकृष्ण की अग्रमहिषियां (पट्रानियां), राजुल के पिता राजा उग्रसेन आदि। प्रमुखता के क्रम में इन सहायक पात्रों में राजीमती के पश्चात् श्रीकृष्ण का ही स्थान है। किंतु, जैसा कि पूर्व में वर्णित किया जा चुका है, उनका चरित्रगत विकास इस कृति में चित्रित नहीं हो पाया है, स्फुट विशेषताएं ही यत्र-तत्र आभासित हो पायी हैं।

**रसयोजना :**

प्रस्तुत काव्य “नेमिनाथ रास” एक भावपूर्ण और सरस सफल खंड-काव्य है, इसमें शान्त रस का प्राधान्य है। यह कहना पड़ेगा कि इसमें वीतराग रस है। चारित्रिक विशेषताओं को देखते हुए स्वयं नायक नेमिनाथ तो निर्वेद के ही प्रतिरूप लगते हैं। बाल्यकाल से ही सांसारिक सुखों के प्रति उनकी उदासीनता, राज्य-वैभव के प्रति उनकी निर्लिप्तता की भावना, निरीह पशुओं का करुण-क्रंदन सुनकर तोरण द्वार से भी अविवाहित लौट आना आदि नायक के निर्वेद भाव को स्पष्टतः व्यक्त कर देते हैं। नेमिनाथ के इस स्वरूप से प्रभावित होकर राजीमती द्वारा दीक्षा ग्रहण किया जाना भी इसी वीतराग रस की याने शांतरस की प्रबलता में सहायक हुआ है। अंततः नेमिनाथ कैवल्य प्राप्त करते हैं—इस प्रकार खंडकाव्य का समापन भी शांतरस में ही होता है। इसे मैं वीतराग रस मानता हूँ।

शांतरस की इस प्रधानता के साथ-साथ करुण और शृंगार रसों को भी स्थान मिला है। राजीमती का विवाह जब यादव-कुलरत्न अरिष्टनेमि के साथ निश्चित हो जाता है तो मनोज्ञ पति के प्राप्ति की इस कल्पना से राजीमती अत्यंत हर्षित उल्लसित और गवित होती है। भावी जीवन की गरिमापूर्ण स्वप्नराशि में वह निमग्न सी हो जाती है। भविष्य की उसकी



उदात्त कल्पना और उमंग विकसित होते-होते उस समय चरम अवस्था पर पहुँच जाती है जब कि वरवेश में नेमिकुमार तोरण द्वार तक पहुँचते हैं। किंतु, इसी समय उसकी सारी आशाओं पर तुषारपात हो जाता है। नेमिकुमार तोरण से ही लौट जाते हैं। बाहर-भीतर से सजी संवारी राजकुमारी राजी-मती का सारा शृंगार क्रंदन में परिणत हो जाता है। यह करुणापूर्ण प्रसंग हृदयद्रावक है। शृंगार के संयोग पक्ष का पटाक्षेप हो जाता है और विप्रलंभ का द्वार खुलता है। इस स्थल से राजुल द्वारा दीक्षा ग्रहण के प्रसंग तक यही वियोग शृंगार रस चलता है तथा अंत में वीतराग रस में उसकी परिणति हो जाती है।

नेमिकुमार के बालवर्णन में वात्सल्य रस की भी सुंदर झांकी मिलती है। इस प्रकार काव्याकृति में वात्सल्य, संयोग-वियोग, करुण और विशेष प्रकार से शांत रस अर्थात् वीतरागी रस का सुंदर निर्वाह हुआ है।

**भाषा छंद एवं अलंकार योजना :**

प्रस्तुत काव्य प्रारंभिक हिंदी में रचित, अपने युग की एक अतिसुंदर कृति है। हिंदी का यह आरंभिक रूप था तथापि भाषा का जो सोष्ठव एवं प्रवाह दृष्टिगत होता है उससे कवि की भाषा का सामर्थ्य प्रतीत होता है। भाषा के जिस रूप का व्यवहार प्रस्तुत रचना में मिलता है, वह तत्कालीन लोकप्रचलित जनसामान्य की भाषा थी। कदाचित् यह भी एक प्रमुख कारण था कि अपने युग में रासक काव्य के रूप में उक्त काव्य को अपार जनप्रियता प्राप्त हुई।

छंद की दृष्टि से प्रस्तुत कृति में आद्योपांत एक ही पद्धति का निर्वाह दृष्टिगत होता है। समस्त रचना में ध्रुवड़ छंद का प्रयोग हुआ है और छंदांत में एक-एक द्विपदी मिलती है।

प्रस्तुत खंड-काव्य में अलंकारों का बड़ा ही सहज और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। अलंकार-प्रयोग से काव्य का अपना मौलिक सौंदर्य अभिवर्धित ही हुआ है। अलंकार स्वाभाविकता पूर्वक आ गये हैं, अनावश्यक व अवांछित अवस्था में वे नहीं दिखायी देते हैं। कृति में अनेक स्थलों पर उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग द्रष्टव्य है।

**(४) प्रद्युम्नरास :**

प्रस्तुत कृति के लेखक ब्रह्म रायमल हैं। १७वीं शती के विद्वान संतों में इनका उल्लेखनीय स्थान है। ये मुनि अनंतकीर्ति के शिष्य थे। राजस्थान

के विभिन्न नगरों में जैसे सांगानेर, रणथम्भोर, सांभर, टोडारायसिंह और हारसोल में ये विचरण करते थे। इनकी रचनाओं में क्रमशः

नेमीश्वररास	१६१५	हनुमंतरास	१६१६
सुदर्शनरास	१६२६	श्रीपालरास	१६३०
प्रद्युम्नरास	१६२८	भविष्यदत्त रास	१६३३
परमहंस चौपाई	१६३६		

तथा जम्बुस्वामी चौपाई, निर्दोष सप्तमी कथा, आदित्यवार कथा, चंद्रगुप्त स्वप्न चौपाई, चिंतामणि जयमाल, ज्येष्ठ जिनवर कथा और ४६ ठाणा, ये सभी इनकी रचित कृतियां हैं। इन कृतियों की भाषा राजस्थानी है तथा ये गीतात्मक शैली में लिखी हुई हैं। ऐसा लगता है कि कवि अथवा उनके शिष्य इन कृतियों को सुनाया करते थे। भविष्यदत्त रास सर्वोत्तम कृति मानी गयी है।

यहां पर हमने इसका संक्षिप्त परिचय देना ही उचित समझा क्योंकि प्रद्युम्न का चरित्र विस्तृत रूप में पूर्व ही विवेचित कर चुका हूं। इसकी कथा भी प्रायः वही है। डा० कस्तूरचंद कासलीवाल की पुस्तक अन्य जानकारी के लिये द्रष्टव्य है।<sup>53</sup>

#### (५) प्रद्युम्नचरित :

कवि सधाकृत प्रद्युम्न चरित की रचना संवत् १४११ (सन् १३५४) की मानी जाती है। यह भी एक प्रकाशित रचना है।<sup>54</sup> प्रद्युम्नचरितः प्रस्तावना पृ० २६ देखिए।

कृति में श्रीकृष्ण-वृत्तान्त :

प्रस्तुत प्रबंध रचना के चरित नायक कृष्ण के रुक्मिणी से उत्पन्न पुत्र प्रद्युम्नकुमार हैं। उन्हीं का चरित प्रमुखता के साथ वर्णित है। किंतु, प्रद्युम्नकुमार श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के पुत्र हैं इस नाते प्रासंगिक रूप में श्रीकृष्ण चरित का वर्णन भी स्वाभाविक ही लगता है। काव्यारंभ में ही

५३. राजस्थान का जैन साहित्य : डा० कस्तूरचंद कासलीवाल, संस्क०, १९७७ पृ०-२०८, २०९, प्रकाशक, प्राकृत भारती, जयपुर

५४. प्रद्युम्नचरित, संपा०, पं० चैनसुखदास व डा० कस्तूरचंद कासलीवाल,

द्वारका नगरी का विशद वैभव और सौंदर्य अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अंकित किया गया है। साथ ही द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के बल, विक्रम और शौर्य का यशोगान भी हुआ है। नायक प्रद्युम्नकुमार के जनक-जननी होने के नाते इस युगल श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाहादि के सूत्रों को भी कथानक में समुचित महत्व दिया गया है। यथा—श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण की कथा, शिशुपाल (रुक्मिणी के लिए नियत किया गया वर) के वध का प्रसंग आदि ऐसे ही प्रसंग हैं, जो संपूर्ण कथानक में समग्रता लाने की दृष्टि से अनिवार्य भी हैं; जिनके द्वारा श्रीकृष्ण वृत्तांत का समावेश इस चरित काव्य में स्वतः ही हो गया है। ऐसे प्रसंगों के वर्णन में कवि ने उत्साह भी दिखाया है। इन कथासूत्रों के माध्यम से श्रीकृष्ण के चरित्र की अनेक विशेषताएं (यथा शौर्य पराक्रम शक्ति साहसादि) उद्घाटित हो गयी हैं तथा इतर प्रसंगों में भी श्रीकृष्ण चरित्र की इन विशेषताओं को प्रतिष्ठित किया गया है। प्रबंध के अंतिम दो सर्गों में तो श्रीकृष्ण की धर्मनिष्ठा का अत्यंत प्रभावशाली विवेचन किया गया है। वस्तुतः श्रीकृष्ण-वृत्तांत की दृष्टि से “प्रद्युम्नचरित” एक अत्यंत महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है।

#### कथानक की संरचना :

कवि ने ७०१ पद्यों में प्रद्युम्न की कथा कहो है जो ६ सर्गों में विभाजित है। घटनाओं का क्रम शृंखलाबद्ध है। यह काव्य प्रचलित रूप में जैन परंपरा द्वारा मान्य प्रद्युम्नचरित्र ही है। इस काव्य में यही वर्णित है और इसके कथानक के आधार जैन पौराणिक ग्रंथ ही रहे हैं। कथानक की दृष्टि से रचना में कवि के प्रबंध-कौशल का भी स्पष्ट परिचय मिलता है।

श्रीकृष्ण द्वारका के नरेश और सत्यभामा उनकी पटरानी है। स्वच्छंद विहारी नारद जी का द्वारका आगमन होता है। सत्यभामा द्वारा उपेक्षा पाकर नारद जी क्षुब्ध हो गए और उसका गर्व चूर करने की युक्ति खोजने लगे। कुंडनपुर नरेश राजा भीष्म की त्रिलोकसुंदरी कन्या रुक्मिणी को उन्होंने माध्यम माना और प्रयत्नपूर्वक श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के मध्य प्रणय संबंध स्थापित कर दिया। दोनों पारस्परिक मोह से ग्रस्त हो, एक दूसरे को प्राप्त करने की कामना करने लगते हैं। जब नारद जी सूचित करते हैं कि रुक्मिणी का परिणय शिशुपाल के साथ होना निश्चित हो गया है तो श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर लेते हैं और विरोध करने पर शिशुपाल का वध कर देते हैं। द्वारका में श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह संपन्न होता है। और कालांतर में रुक्मिणी राजकुमार प्रद्युम्न को जन्म देती है। छ ही दिन

पश्चात् असुर धूमकेतु शिशु प्रद्युम्नकुमार का अपहरण कर लेता है। विद्याधर राजा कालसंवर के यहीं यह शिशु पोषित होने लगता है। काल-संवर की रानी कनकमाला वात्सल्यभाव के साथ प्रद्युम्न को रखती है। १२ वर्ष की आयु का बालक प्रद्युम्न इसी परिवार में अपना जीवन व्यतीत करता है। वह अनेक विद्याओं और कलाओं में निष्णात हो जाता है।

किशोर प्रद्युम्न अत्यन्त सुंदर था। उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक और प्रभावशाली था और शस्त्र-संचालन में कुशल भी था। यह किशोर बड़ा पराक्रमी था। इस अवधि के पश्चात् वह द्वारका पहुंचता है और अपने माता-पिता से मिलता है। श्रीकृष्ण प्रद्युम्न का राज्याभिषेक कर देते हैं और उसका विवाह भी करा देते हैं। सुदीर्घ सुखी जीवन व्यतीत करने के पश्चात् भगवान नेमिनाथ के उपदेशों से प्रभावित होकर प्रद्युम्नकुमार कठोर तपश्चर्या द्वारा घातिक कर्मों का क्षय करके कैवल्य लाभ करते हैं और आयु के अंत में सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं। यही घटनाक्रम “प्रद्युम्न-चरित” में अपनाया गया है।

प्रबंध काव्य की दृष्टि से उक्त कथानक सर्वथा सुगठित और सुसंबद्ध है। मूल कथा के अतिरिक्त कतिपय अवांतर कथाएं भी समाविष्ट हैं, यथा— रुक्मिणी-हरण, नारद की विदेह क्षेत्र की यात्रा, सिंहस्थ-युद्ध, उदधिकुमार का अपहरण, मानकुमार का विवाह, सुभानुकुमार एवं शांबकुमार की द्यूत क्रीड़ा आदि। इन संक्षिप्त कथासूत्रों से प्रवाह में बाधा नहीं आयी है अपितु इससे विभिन्न कथा-प्रसंगों को सकारण बनाने और उन्हें परस्पर संबद्ध करने का सफल प्रयास हुआ है। इस प्रयास से काव्य और अधिक प्रभाव-शाली एवं मनोरंजक भी हो गया है और साथ ही ज्ञानवर्धक भी।

नायक द्वारा कैवल्य लाभ ही इस काव्य में भी कथानक का फल रहा है। किंतु, कथानक का शेषांश प्रद्युम्नकुमार के ऐसे चरित को वर्णित नहीं करता है जिसमें फल की सारी प्रक्रिया का सन्निवेश हो। अर्थात् विभिन्न अवस्थाओं के निर्वाह की ओर कवि का ध्यान नहीं रहा है। उसका प्रतिपाद्य तो मात्र परंपरागत प्रद्युम्न कथा ही रह गयी है। नायक के लिए संघर्षपूर्ण परिस्थितियां भी बार-बार आयीं अवश्य हैं। ये परिस्थितियां फल प्राप्ति के मार्ग में व्यवधान स्वरूप नहीं हैं। न ही किसी एक प्रतिनायक से यह संघर्ष होता है। सीधा-सपाट कथानक मात्र यही उद्देश्य रखता है कि प्रद्युम्न कुमार के शौर्यपूर्ण जीवन की सुंदर झलक हमें मिल जाए किंतु कथा-

काव्य का फल यह नहीं है। फलप्राप्ति तो नायक द्वारा सहसा ही एक आकस्मिक घटना के रूप में हो गयी है। उसके लिए प्रयत्न-क्रम कथानक में दिखाई नहीं देता। न ही प्रयत्नों को निष्फल करने के उद्देश्य से बाधाएं हैं और न बाधाओं को समाप्त करने को नायक की चेष्टाएं ही। घात-प्रतिघात की यह स्थिति इस काव्य में फलप्राप्ति के प्रयत्नक्रम के अभाव में ही नहीं आयी है। इस दृष्टि से प्रस्तुत काव्य अवश्य ही सदोष है।

#### चरित्र-चित्रण :

प्रद्युम्नकुमार प्रस्तुत चरित काव्य का नायक है। राजवंशोत्पन्न प्रद्युम्नकुमार इस प्रकार अभिजात वर्ग के हैं। अपने पिता श्रीकृष्ण की भांति वे वीर और पराक्रमी भी हैं। जैन परंपरा में वे पुण्यपुरुष कामदेव के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। प्रस्तुत काव्य में नायक प्रद्युम्नकुमार के चरित्र का जो रूप अवस्थित हुआ है, उसके अनुसार धैर्य, साहस, शौर्य, शक्तिमत्ता, सौंदर्य शोभा और उदात्तता के गुण उनकी चारित्रिक विशेषताएं हैं। शौर्य एवं प्रताप उनका वंशानुगत ही नहीं जन्मजात गुण भी है। कवि ने इस बात को उल्लेखित भी किया है। विशेषतः प्रद्युम्न चरित के विवेचन की ब्रज भाषा बहुत सुंदर रूप से प्रयुक्त है—यथा—

सीहिणी सीहू जणे जो बालु, हस्तीजूह तणो णे कालु ।

जूह छाडि गए वण ढाऊ, ता कह कोण कहे मरिवाउ ॥१६९॥

अर्थात् सिंहनी सिंह शावक को जन्म देती है। वही हाथियों के झुण्ड के लिए काल के समान है। यदि अपने समूह को छोड़कर सिंह अकेला ही वन में निकलजाए तो उसे कौन ललकार सकता है। इस प्रकार की उक्तियों द्वारा प्रद्युम्नकुमार के साहस-निर्भीकता, एवं शक्ति को प्रकट किया गया है। वे युद्ध कौशल में अप्रतिम थे। श्रीकृष्ण के साथ प्रद्युम्न के युद्ध के पश्चात् नारद जी श्रीकृष्ण को उनसे परिचित कराते हुए कहते हैं—

यह सु मयणु गुरुवो बरवीर, रण संग्राम सुहास धीर ।

थाह पौरिष को वर्णइ, पणउ यह सो पूत रुक्मिणी तणउ ॥<sup>55</sup>

वीर प्रद्युम्न से युद्ध छेड़ना ठीक वैसा ही था जैसे आते हुए वज्र को

५५. यह बड़ा भारी वीर है तथा रणसंग्राम में धीर एवं साहसी है। इसके पौरुष का अधिक वर्णन कौन कर सकता है? ऐसा यह वीर रुक्मिणी का पुत्र है।

झेलना या सर्प के मुख में हाथ डालना।<sup>५६</sup> समग्र काव्य ही उनके अपार शौर्य के रंग में रंगा हुआ लगता है।

प्रद्युम्नकुमार के अतिरिक्त श्रीकृष्ण, बलराम, रुक्मिणी, नारद, कालसंवर, कनकमाला, भानुकुमार आदि अन्य पात्रों के चरित्र का भी यथासंभव चित्रण हुआ है। रुक्मिणी की अतीव सुंदरता और पुत्र-प्रेम, श्रीकृष्ण की शक्तिमत्ता एवं पराक्रम, बलराम का भ्रातृस्नेह, सत्यभामा की द्वेष भावना, नारद का ज्ञान एवं उनका क्रोध—प्रतिशोध आदि सुंदरता के साथ चित्रित हुआ है।

### रस-योजना :

प्रद्युम्न चरित काव्य में युद्धों के वर्णन अतिरेक के साथ मिलते हैं। श्रीकृष्ण शिशुपाल युद्ध, प्रद्युम्न श्रीकृष्ण युद्ध, प्रद्युम्न कालसंवर युद्ध, प्रद्युम्न रुक्मि युद्ध आदि अनेक युद्धों का ऐसा विस्तृत वर्णन हुआ है कि समग्र काव्य में वीर रस की धारा ही प्रवाहित दृष्टिगत होती है, सर्वत्र ओज ही ओज है। युद्धारंभ से पूर्व का वीरों का वार्तालाप भी पूर्णतः वीरत्व से ही रससिक्त है।

युद्धोपरांत रणक्षेत्र के दृश्य-वर्णन में बीभत्स रस, रुक्मिणी रूप वर्णन एवं श्रीकृष्ण-रुक्मिणी मिलन में शृंगार रस की सृष्टि भी हुई है। अंत में प्रद्युम्न विरक्त हो साधनामार्ग ग्रहण कर लेते हैं और इस स्थल पर शांत रस आ जाता है। इस प्रकार वीर रस प्रधान इस प्रबंध में अन्यान्य कतिपय रसों को भी उपयुक्त और समीचीन स्थान प्राप्त हुआ है।

वीररस का उदाहरण जानने के लिए पराक्रमी राजा कृष्ण अपनी तलवार हाथ में लेकर युद्ध भूमि में ऐसे विराजते हैं जैसे कि यमराज स्वयं आकर उपस्थित हो गये हों। उनके खड्ग धारण करने से समस्त लोक आकुल व्याकुल हो जाते हैं। देवराज इंद्र और शेषनाग भी व्याकुल हो उठते हैं। यथा—

तव तिहि घनहर घालिउ रालि, चन्द्र हंसकर लियो संभालि ।

बीजु समिसु चमकइ करवालु, जाणीसु जीभ पसारे काल ॥

५६. सबई वीर बोलई प्रज लेइ, आवत वज्र होलि के लेई ।

जे बिसहर मुह घाले हत्थ, सो मो सहु जुझणह समत्थो ॥ २०६ ॥

जबहि खरग हाथ हरि लयउ, चन्द्र रयणि चाँवइ कर गहिउ ।  
रथ ते उतरि चले भर जाम, तीनि भुवन अकुलाने ताम ॥  
इंदु चंदु अणु मे खलभलउ, जाणी गिरिपवंतउ टलटलअ ।  
अन मा कहइ सुरंगिनि नारि, अवयहु इहइ कइसी मारि ॥<sup>57</sup>

भाषा, छंद एवं अलंकार :

प्रद्युम्नचरित ब्रज भाषा का काव्य है और यह ब्रज भाषा राजस्थानी से प्रभावित है। उस काल में ब्रज में वीर रस की इतनी प्रभावपूर्ण रचना द्वारा इस कृति के कर्ता ने एक अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। हां, इतना अवश्य है कि ग्रंथ की ब्रज भाषा अपभ्रंश एवं राजस्थानी से प्रभावित है।

इस काव्य में मुख्यतः चौपाई छंद का विशिष्ट प्रयोग हुआ है। चौपाई के अतिरिक्त भी कतिपय अन्य छंद प्रयुक्त हुए हैं और इनमें दोहा, सोरठा, ध्रुवक, वस्तुबंध आदि प्रमुख छंद हैं।

प्रस्तुत रचना में स्थल-स्थल पर अलंकारों का सुंदर और आकर्षक प्रयोग हुआ है। रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, स्वभावोक्ति, उपमा आदि के प्रति कवि का स्नेह इस काव्य में अधिक प्रकट हुआ है। उत्प्रेक्षा के कतिपय प्रयोग तो उल्लेखनीय ही हैं, जैसे—

सेन उठि बहु साडु समुद्र, जाणो उपनउ उथल्यउ समुद्र ।  
नरसहिबाण सरे असराल, जाणो घण गाजइ मेघकाल ॥<sup>58</sup>

प्रद्युम्नचरित इस प्रकार हिंदी भाषा की एक उत्तम कृति है।

(६) नेमीश्वर रास :

प्रस्तुत कृति के रचयिता कवि नेमिचंद्र हैं। यह रचना ई० सन् १७१२ (वि० सं० १७६६) में हुई। कवि ने अपना विस्तृत परिचय, गुरु-परंपरा, कृति का रचना काल एवं स्थान का परिचय में कृति में दिया है। यथा<sup>59</sup>

५७. प्रद्युम्नचरित छंद संख्या ५३६, ४०, ४१।

५८. प्रद्युम्नचरित, सं० पं० चैनमुखदास ब कस्तुरचन्द कासलीवाल,

५९. नेमीश्वररास, हस्तलिखित प्रतिलिपि वि० सं० १९६३, प्रतिलिपिकार पाण्डेय दयाराम, उपलब्ध आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर प्रति प्रपन्न २७/१२८४

अंबावती सुभथान, सवाई जयसिंह महाराजई ।

पातिसाह लाखे मान, राजकरे परिवार स्युं ॥१॥

अंबावती नगरी (आमेर-जयपुर) में राजा सवाई जयसिंह का राज्य है। बादशाह इनका सन्मान करता है। यहीं पर प्रस्तुत कृति की रचना हुई।

रचनाकाल का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

सत्तरासे गुणहत्तरे सुदि आसोज दसे रवि जाणि तो ।

रास रच्यो श्रीनेमि को, बुधिसार में कियो वखाण तो ॥<sup>६०</sup>

अर्थात् संवत् १७६६ आसोज शुक्ला १० रविवार को यह रचना पूर्ण हुई। कवि ने अपने गुरु का नाम जगत्कीर्ति बतलाया है जो मूलसंध, बलात्कार गण, सरस्वती गच्छ के आचार्य थे। प्रस्तुत रचना हरिवंशपुराण के आधार पर रचित है—

हरिवंश की में वारता, कही विविध प्रकार ।

नेमिचन्द्र की वीनती, कवियण लेहु सुधार ॥<sup>६१</sup>

जिनसेन के हरिवंशपुराण के अनुसार इसमें श्रीकृष्ण का चरित है, कृति में सर्गसूचक शब्द, “अधिकार” का प्रयोग है, कुल ३६ अधिकार हैं। कृति का प्रारंभ मंगलाचरण से कर के प्रारंभिक दो अधिकारों में श्रेष्ठ पुरुषों की वंदना है, तृतीय अधिकार में कथावस्तु का प्रारंभ हुआ है।

श्रीकृष्ण जन्म, बाल-लीला, कंसवध, यादवों का द्वारिका निवास, रुक्मिणी-हरण, शिशुपाल-वध, नेमिनाथ का जन्म, कृष्ण-जरासंध युद्ध, द्रौपदी-हरण, पुनः कृष्ण द्वारा द्रौपदी को लाना, कृष्ण का पांडवों पर कुपित होना तथा उनका हस्तिनापुर से निर्वासन, नेमिनाथ का गृहत्याग, तप व केवलज्ञान की उपलब्धि, द्वारिका में नेमिनाथ के आगमन के प्रसंग, कृष्ण के परिजन रानियों, पुत्रों आदि का दीक्षा ग्रहण, द्वारिका विनाश, कृष्ण का परमधाम गमन, बलराम की तप और मुक्ति, इत्यादि प्रसंगों का क्रमशः वर्णन आया है। प्रारंभ में कृष्ण चरित्र को तथा अंतिम अधिकारों में नेमिनाथ चरित्र की विवेचना है।

कृति के प्रमुख पात्र श्रीकृष्ण हैं जिनके वीरतापूर्वक कार्यों का उल्लेख है जो अति सुंदरता से अभिव्यक्त हुआ है। यथा—

६०. वही—पदसंख्या १३०६।

६१. आमेर शास्त्र भण्डार की हस्तलिखित प्रति, पदसंख्या—१२७२।



कान्हू गयो जब चौक में, चाणूर आयो तिहि बार ।  
 पकड़ि पछाड़्यो आवतो, चाणूर पहुँच्यो यमद्वार ॥  
 कंस कोप करि उठ्यो, पहुँच्यो जादुराय पे ।  
 एक पलक में मारियो, जमघरि पहुँच्यो जायतो ॥  
 जै जै कार शब्द हुआ, बाजा बाज्या सार ।  
 कंस मारि घीस्यो तबे, पलक न लाइ बार ॥<sup>62</sup>

श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्द्धन धारण की घटना का भी कवि ने उल्लेख करते हुए लिखा है—

हंसो मन में चिन्तते, परबत गोरधन लियो उठाय ।  
 चिटी आंगुली ऊपरे, तलिउ या सब गोपी गाय ॥<sup>63</sup>

कृति के अंतिम अंश में कृष्ण की धर्म विषयक रुचि और नेमिनाथ के प्रति श्रद्धाभाव का वर्णन आया है—

नमस्कार फिरि-फिरि कियो, प्रश्न कियो केशवराय ।  
 भेद कह्यो सप्त तत्त्वको, धर्म-अधर्म कह्यो जिनराय ॥<sup>64</sup>

कृति में कृष्ण के बालगोपाल स्वरूप का विवेचन करते हुए कवि ने श्रीकृष्ण को दधिमाखन खाने और उसे फैलाने का चित्रण भी किया है—

मांखण लायरु फैलाय, मात जसोदा बांधे आणि ते ।  
 डरपायो डरपे नहीं, माता तणीय न माने काणि ते ॥

कृष्ण के गोपाल वेश का वर्णन देखिए—

काना कुण्डल जगमगे, तन सोहे पीताम्बर चौर तो ।  
 मुकुट बिराजे अति भलौ, बंशी बजावे श्याम शरीरतो ॥<sup>65</sup>

इस कृति की भाषा में राजस्थानी प्रभावित हिंदी के तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। दोहा, सोरठा, छंदों का विशेष रूप से कवि ने प्रयोग किया है

(७) गजमुकुमाल रास : देवेंद्र सूरि

६२. हस्तलिखित पदसंख्या १७०-७३ ।

६३. हस्तलिखित प्रति पदसंख्या १८४ ।

६४. वही—पदसंख्या ११० ।

६५. हस्तलिखित प्रति, पदसंख्या १६८-६९ ।

रचनाकाल : वि० सं० १३१३ से १३२४ के मध्यानुमानित है।

उपलब्धि : जैसलमेर ज्ञान भण्डार तथा अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर में हस्तलिखित प्रति। जैसलमेर भण्डार की प्रति वि० सं० १४०० की लिखी हुई है। कृतिकार के गुरु का नाम जगच्चन्द्रसूरि था।<sup>६६</sup>

### श्रीकृष्ण-वृत्तांत :

नेमिनाथ रास की भांति “गजसुकुमाल रास” खंडकाव्य कोटि की प्रबंध रचना है। परंपरागत आख्यान ३४ छंदों में वर्णित है। गजसुकुमाल के चरित को इस कृति में प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप में अपनाया गया है। और, प्रासंगिक रूप में ही श्रीकृष्ण का वृत्तांत आया है। श्रीकृष्ण के कनिष्ठतम भ्राता गजसुकुमाल थे। गजसुकुमाल के जन्म-पूर्व की परिस्थितियों, पारिवारिक परिचय आदि के प्रसंगों में श्रीकृष्ण का वृत्तांत स्वाभाविक ही है। आरंभ में श्रीकृष्ण का द्वारका के श्रेष्ठ शक्तिशाली और पराक्रमी नरेश के रूप में चित्रण हुआ है। उनका महापुरुष व्यक्तित्व बड़े कौशल के साथ अंकित हुआ है। श्रीकृष्ण के पौरुष, शौर्य और पराक्रम का चित्रण अनेक प्रसंगों में हुआ है। यथा—कंस-संहार, चाणूर-वध, जरासंध-हनन आदि। श्रीकृष्ण चरित्र के एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष को भी इस रचना में स्थान दिया गया है जिससे उनकी मातृभक्ति और धर्मभावना व्यक्त हुई है।

### काव्य-रूप :

जैसा कि वर्णित किया जा चुका है “गजसुकुमाल रास” एक खण्ड-काव्य है अतः कथानक का केंद्रित विषय गजसुकुमाल चरित ही रहा है। नायक गजसुकुमाल के चरित्रांकन की सीमा में अन्यान्य प्रासंगिक घटनाओं का वर्णन हुआ है। प्रबंधात्मकता, रसनिष्पत्ति, वस्तुविधान, काव्यसौष्ठव-वादि सभी दृष्टियों से खण्डकाव्य की कसौटी पर प्रस्तुत कृति खरी उतरती है।

कृति में श्रीकृष्ण के वीर और पराक्रम संपन्न राजपुरुष का व्यक्तित्व कवि ने हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है। यथा—

नयरिहि रज्जु करेई तहि कण्ह नरिंदु ।

नरवै मनि सणहो जिइ सुरगण इंदु ॥<sup>६७</sup>

६६. हिंदी रास काव्य, डा० हरीश, पृ० ८०१.

६७. गजसुकुमाल (अप्रकाशित), हस्त प्रति, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

कृष्ण के चाणूर मल्ल द्वारा कृष्ण से किया गया मल्लयुद्ध, कंस तथा जरासंध हनन का भी कवि ने उल्लेख किया है। कृष्ण वासुदेव राजा है। शंख, चक्र तथा गदा आदि का धारण करना जैन परंपरा के अनुसार वासुदेव का लक्षण है। कवि ने उसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

...संख चक्र गज पहरण धारा, कंस नराहिव कय संहारा ।

जिण चाणउरि मल्लु बियरिउ, जरासिंधु बलवंतऊ घातिउ ॥<sup>६८</sup>

कथानक एवं उसकी संरचना :

प्रस्तुत खंडकाव्य के कथानक का आधार भी गजसुकुमाल संबंधी जैन पुराणों के आख्यान ही रहे हैं। नृपति श्रेष्ठ श्रीकृष्ण द्वारका के शासक हैं। इसी समय भगवान् अरिष्टनेमि का द्वारका आगमन होता है। भगवान् के शिष्यों में छ सहोदर बंधु भी थे और रूप रंग में भी उनमें पर्याप्त साम्य था। इनमें से दो मुनि आहारार्थ देवकी के यहां आए। कुछ ही अंतराल में अन्य दो और फिर शेष दो बंधु भी आ पहुंचे। देवकी असमंजस में पड़ गयी। नियम विपरीत मुनिगण एक ही घर में बार-बार कैसे आ रहे हैं? देवकी के हृदय में इन युवा साधुओं को देख कर असीम वात्सल्य भाव उमड़ आया। कारण उसे ज्ञात नहीं हो सका। भगवान् ने स्पष्ट किया कि ये ६ पुत्र स्वयं देवकी के हैं जो सुलसा के घर बड़े हुए हैं और सुलसा के मृतपुत्र ही कंस को दिए गए थे। देवकी का मातृत्व इस दृष्टि से अपूर्ण रह गया कि उसका कोई पुत्र अपने बाल्यकाल में उसके पास नहीं रहा और वह अपने वात्सल्यभाव को तुष्ट नहीं कर पायी। श्रीकृष्ण ने उसकी मनोकामना जान-कर तपस्या की। देवता से उन्हें ज्ञात हुआ कि देवकी को एक पुत्र और प्राप्त होगा, किंतु माता इस पुत्र से केवल बाल्य-काल का सुख ही प्राप्त कर सकेगी। यथासमय देवकी को पुत्र प्राप्त हुआ, जो गजशावक सा सुकुमार और सुंदर था, अतः उसका नाम गजसुकुमाल रखा। अपने नाम के इस अनंत प्रेम भरे वातावरण में बालक बड़ा होने लगा। एक दिन द्वारका में पुनः भगवान् नेमिनाथ का पदार्पण हुआ। भगवान् की वाणी का गजसुकुमाल पर गहन आंतरिक प्रभाव हुआ और उसके मन में विरक्ति की भावना प्रबल हो उठी। स्वजन-परिजनों विशेषतः श्रीकृष्ण के प्रयत्नों से सोमिल ब्राह्मण की सुंदरी कन्या सोमा के साथ गजसुकुमाल का विवाह हो गया। किंतु, गजसुकुमाल ने भी तुरंत ही दीक्षा ग्रहण कर ली।

६८. वही, अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति, ग्रंथभण्डार, जैसलमेर दुर्ग।

मुनि गजसुकुमाल ने भगवान के समक्ष केवलज्ञान-मार्ग जानने की उत्कट जिज्ञासा प्रकट की और भगवान ने तितिक्षा-धारणा का मार्ग बताया। किशोर मुनि गजसुकुमाल श्मशानभूमि में ध्यामग्न बैठे थे कि सोमिल ब्राह्मण की दृष्टि उन पर पड़ गयी। वह क्रोधित हो उठा कि इसे वैराग्य ही ग्रहण करना था तो सोमा का जीवन इसने क्यों नष्ट किया। क्रोधाभिमुख सोमिल ने मुनि के मुंडित शीर्ष पर मिट्टी की पाल बनाकर उसमें चिता के दहकते अंगारे भर दिए। मुनि गजसुकुमाल ने इस घोर परिषह को असीम सहिष्णुता के साथ सह लिया। वे विचारने लगे कि, मैं नहीं किंतु, पार्थिव शरीर ही तो जल रहा है। मैं तो आत्मा हूं और आत्मा दहन के परे है। अटूट साधना में रत मुनि गजसुकुमाल को मोक्ष की प्राप्ति हो गयी। दुष्ट सोमिल ने भी ज्यों ही श्रीकृष्ण को देखा, भयाधिक्य से उसका प्राणांत ही हो गया।

“गजसुकुमाल रास” खण्डकाव्य का कथानक अत्यंत सुगठित है। सारे प्रबंध में योग ३४ छंदों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह खण्डकाव्य तीव्र प्रवाहमय और प्रभावशाली है। शैथिल्य नाम-मात्र को भी दृष्टिगत नहीं होता और अनर्गल विस्तार के दोष से भी सर्वथा मुक्त है।

कथानक की समस्त कार्य अवस्थाओं की दृष्टि से भी यह एक सुसंबद्ध घटनापुंज एवं व्यवस्थित कथा-विकास वाली रचना है। नायक गजसुकुमाल द्वारा मोक्ष-लाभ इस खण्डकाव्य का उद्देश्य या फल है। नायक के जन्म से पूर्व की यह घोषणा कि वह युवावस्था में ही दीक्षा ग्रहण कर विरक्त हो जायेगा—कथा-विकास की प्रारंभ अवस्था है। कवि ने इंद्रवत् पूज्य द्वाराका-धीश श्रीकृष्ण के बलविक्रम की यथोचित गाथा का गान किया है। तत्पश्चात् भगवान नेमिनाथ का द्वारका आगमन और देवकी की पुत्र-प्राप्ति की कामना वर्णित है। तदनंतर कवि ने बालक गजसुकुमाल की सांसारिक विषयों के प्रति दृढ़ उदासीनता चित्रित की है। यह चितनशील बालक भगवान के तत्त्वपूर्ण उपदेशों के प्रभावस्वरूप विरक्त हो जाता है। यह कथानक की प्रयत्नावस्था है। गजसुकुमाल को संसार-विमुख पाकर सभी स्वजन-परिजन चिंतित हो उठते हैं। उसे जगदुन्मुख करने का प्रयत्न किया जाता है। स्वयं श्रीकृष्ण सोमिल-पुत्री सोमा से उसका विवाह करवा देते हैं। सारी परिस्थितियां फलप्राप्ति के मार्ग में नायक के लिए बाधास्वरूप हैं। कथानक-विकास की तृतीय अवस्था प्राप्त्याशा भी सर्वथा ओझल नहीं हो जाती। कथा-विकास के संयोजन की इस विशेषता के कारण कथानक इस

स्थल पर भी ढीला नहीं हो पाया। अब भी नायक दीक्षा ग्रहण करने को कटिबद्ध है। वह तुरंत ही भगवान की शरण में आता है और दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग जानने की उत्सुकता व्यक्त करता है। भगवान ऐसे मार्ग की ओर इंगित भी करते हैं। सारी बाधाओं की यहां इतिश्री हो जाती है। फलप्राप्ति की आशा बनने लगती है। यहीं प्राप्त्याशा की अवस्था है। मार्ग पाकर मुनि गजसुकुमाल उस पर गतिशील हो जाते हैं और श्मशान भूमि में ध्यान-साधना करने लगते हैं और फल तो अभी दूर हैं, किंतु अब कथानक के उतार-चढ़ाव की स्थिति नहीं है। सोमिल द्वारा दिए गये भयंकर परिषह को भी क्षमा-भावना के साथ मुनि गजसुकुमाल ने सहन कर लिया। यहां नियताप्ति की अवस्था आ जाती है। इस अवस्था में नायक द्वारा फलप्राप्ति प्रायः निश्चित सी हो जाती है। अंततः फलागम की स्थिति है। नायक द्वारा फलप्राप्ति हो जाती है, वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यह सुघड़ कथानक बड़े ही कौशल के साथ विकसित हुआ है और कथाक्रम कहीं विच्छिन्न नहीं हो पाया है।

**चरित्रचित्रण :**

स्पष्ट है कि गजसुकुमाल स्वयं ही इस रास काव्य का नायक है। उच्च वंशोत्पन्न गजसुकुमाल न केवल इस कथानक में स्थित है अपितु आद्योपांत वही वर्णित और चित्रित भी है। कथानक की मूल समस्या उसी के जीव से संबंधित है। वही उसके समाधानार्थ प्रयत्नशील है और फल का भोक्ता भी वही है। सभी दृष्टियों से गजसुकुमाल नायक ही नहीं, उत्तम कोटि का नायक निर्णीत होता है। उनकी गुरुजनों के प्रति आदरभावना, क्षमाशीलता, सहिष्णुता, लक्ष्य के प्रति दृढ़ता, साधनाप्रियता आदि अनेक सद्गुणों के कारण वह एक उदात्तपुरुष है। मात्र १२ वर्ष की अवस्था में गजसुकुमाल साधना पथ के पथिक हो गए। उनका समस्त जीवन ही वैराग्य को समर्पित है।

यही विरक्ति गजसुकुमाल के चरित्र की प्रमुख और प्रतिपाद्य विशेषता है। उनके चरित्र के अन्यान्य गुण-धैर्य, संयम, क्षमाशीलता, सहनशीलता आदि इसी विरक्ति की प्रबल भावना से उत्प्रेरित हैं। गजसुकुमाल दृढ़ मुमुक्षु हैं, उन्होंने दीक्षा के पश्चात् ही मोक्ष-मार्ग की खोज आरंभ कर दी थी। भगवान नेमि से संकेत पाकर तुरंत उस मार्ग का अनुसरण भी उन्होंने आरंभ कर दिया। वे उग्र तपस्वी थे, यहां तक कि साधनारंभ के दिन ही उन्होंने मोक्ष भी प्राप्त कर लिया। उनकी संवेदनशीलता भी बढ़ी-चढ़ी

थी। भगवान के प्रथम उपदेश ने ही उन्हें दीक्षार्थ तत्पर कर दिया। कष्ट सहन करने की क्षमता भी उनमें अपार थी। मुंडित शीष पर अंगारों का ढेर रखा गया पर उन्होंने उफ तक नहीं किया। उनकी ध्यान-लीनता में क्षण-भर के लिए भी व्यवधान नहीं आया। इस भयंकर उपसर्ग के कर्ता सोमिल के प्रति भी कोई विकार उनके मन को स्पर्श न कर सका। अपने अनिष्टकारी के प्रति भी उपेक्षा, क्षमा और अक्रोध की प्रवृत्ति का इससे बढ़कर अन्य कोई वृत्तांत कदाचित् ही कहीं मिल सके।

मुनि गजसुकुमाल की चारित्रिक विशेषताओं का तो यथासंभव व्यापक चित्र प्रस्तुत किया ही गया है। अन्य कतिपय गौण पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है। देवकी का ममतापूर्ण वात्सल्य भाव और उसका मातृत्व भी उभर कर सामने आया है, तो श्रीकृष्ण का पराक्रम और शौर्य भी। सोमिल ब्राह्मण के द्वेष और प्रतिशोध, स्वार्थ और क्रोध का भी सुंदर चित्रण हुआ है।

#### रसयोजना :

“गजसुकुमाल रास” खंड काव्य वैराग्य प्रधान रचना है अतः इसमें शांत रस की प्रधानता तो स्वाभाविक ही है। आरंभ में तीर्थंकर भगवान का द्वारका में पदार्पण होता है। शिष्यगण (मुनिजन) नगर में भिक्षार्थ विचरण करते हैं। राजपरिवार और नगरवासी भगवान की पावनवाणी का श्रवण करते हैं। मां देवकी की पुत्रप्राप्ति की कामना के संबंध में श्रीकृष्ण तपस्या करते हैं। भविष्यवाणी होती है कि मां देवकी को जिस पुत्र की प्राप्ति होगी वह युवावस्था में ही दीक्षा ग्रहण कर लेगा। इन सारी परिस्थितियों के कारण शांत रस की सृष्टि हो जाती है। इसे जैन साहित्य की दृष्टि से वीतराग रस कहते हैं।

गजसुकुमाल का विरक्ति प्रधान जीवन चरित ही प्रमुख वर्ण्यविषय होने के कारण ग्रंथ में आद्योपात्त शांत रस की झड़ी लगी हुई है। दीक्षोपरांत पहले ही दिन वे साधनारत हो जाते हैं यह प्रसंग भी शांत रस के पोषण में बड़ा सहायक रहा है।

जिन स्थलों पर देवकी के मातृत्व-भावना के प्रसंग आए हैं, वहां वात्सल्य रस की सृष्टि हुई है। भिक्षा के प्रयोजन से उसके यहां आए युवा मुनियों को देखकर उसके मन में वात्सल्य और स्नेह का ज्वार ही

उमड़ पड़ता है। उसकी यह कामना बलवती हो जाती है कि पुत्र की बाल-लीलाओं का सुख उसे भी मिले, जो उसे कभी सुलभ नहीं हो पाया। वह उन मुनिजनों की माता के भाग्य को सराहती है। अपने अभाव की स्मृति से उसके आतप्त हृदय में एक हूक उठती है जिसकी प्रतिध्वनि कृति में सुंदरता के साथ सजाई गयी है।

कालांतर में गजसुकुमाल को पा कर देवकी निहाल हो जाती है। वह अपने पुत्र को प्राणों से भी अधिक प्यार करती है। असीम स्नेह के साथ वह उसका पालन-पोषण करती है। इन स्थलों पर भी वात्सल्य रस पूर्ण प्रभावशाली रूप में आया है।

**भाषा :**

“गजसुकुमाल रास” प्रारंभिक हिंदी की रचना है। डा० हरिवंश लाल कोछड़ प्रभृति विद्वज्जन इसे अपभ्रंश की रचना भी मानते हैं, किंतु अपभ्रंश की अपेक्षा यह हिंदी के प्रारंभिक रूप से अधिक निकटता रखती है। कृति से इसके उस रचनाकाल का परिचय झलकता है जब अपभ्रंश और अन्य लोकभाषाओं के मध्य का काल था। इस संधिकाल में हिंदी का प्रारंभिक स्वरूप हो प्रचलित था। इसकी भाषा १३वीं शताब्दी ईसवी की भाषा होने से उस समय के भाषा-रूप की जानकारी उपलब्ध हो जाती है जिसे हम हिंदी भाषा का आदिकालिक रूप कह सकते हैं।

**(८) पंच पाण्डव चरित रास :**

पंच पाण्डव चरित रास<sup>६९</sup> एक प्रकाशित रचना है। इसके कर्ता शालि-भद्र सूरि हैं। स्वयं कृति के अन्तः साक्ष्य के आधार पर इसका रचनाकाल वि० सं० १४१० है।

**श्रीकृष्ण-वृत्तांत :**

शोषक से ही विदित हो जाता है कि प्रस्तुत कृति में पाण्डवों का चरित वर्णित है और पाण्डवों के अनेक प्रमुख प्रसंगों में उनका संबंध श्रीकृष्ण से रहा है। अतः रचना में श्रीकृष्ण के वृत्तांत को प्रचुर और प्रमुख स्थान मिलना स्वाभाविक ही है। “पंच पाण्डव चरित रास” में श्रीकृष्ण के लिए ‘देव’ ‘प्रभु’ जैसे संबोधन प्रयुक्त हुए हैं। स्पष्ट है कि उन्हें इस ग्रंथ में प्रभुत्व-पूर्ण और महत्तायुक्त स्थान प्राप्त हुआ है।

६०. पंच पाण्डव चरित रास हिंदी के अज्ञात रासकाव्य—मंगल प्रकाशन, जयपुर।

श्रीकृष्ण वृत्तांत की दृष्टि से रास काव्य पर्याप्त महत्व रखता है। इसमें श्रीकृष्ण संबंधी निम्नलिखित प्रसंग प्रमुखता के साथ वर्णित हुए हैं—

- द्रौपदी स्वयंवर में उपस्थित होना,
- वनवास अवधि के पश्चात् पांडवों की ओर से कौरवों के पास जाकर शांति-वार्ता करना,
- महाभारत युद्ध में भाग लेना, और
- विजय के पश्चात् पांडवों को हस्तिनापुर राज्य का स्वामी बनाना आदि ।

कथानक एवं कथानक संरचना :

प्रस्तुत प्रबंध काव्य में कथानक तीव्र गति से आगे बढ़ता चला गया है, न तो कहीं परावर्तन को स्थिति दिखायी देती है और न ही किसी प्रकार का शैथिल्य । प्रबंध काव्यों की एक निश्चित परंपरानुसार आरंभ में मंगला-चरण का निर्वाह पाया जाता है जिसके अंतर्गत नेमिजिनेंद्र एवं सरस्वती की वंदना की गयी है । इसके पश्चात् ही मूल कथा का प्रारंभ होता है । कथानक की रूपरेखा को बिंदुओं के रूप में यहां पर प्रस्तुत किया जाता है ।

- राजा शांतनु और गंगा का प्रेम वर्णन,
- शांतनु की अहेरी प्रकृति के कारण गंगा का रुष्ट होकर चले जाना,
- धीवर बाला सत्यवती पर शांतनु का मुग्ध हो जाना ।
- सत्यवती के पुत्रों का वर्णन ।
- कौरव-पांडव वर्णन ।
- द्रौपदी स्वयंवर ।
- मत्स्यवेध में अर्जुन विजय और अर्जुन द्वारा द्रौपदी की प्राप्ति ।
- कौरवों के साथ जुए में पांडवों की पराजय और १२ वर्ष का वनवास ।
- वनवास में भीम द्वारा राक्षसों का वध व हिडिंबा से विवाह ।
- पांडवों द्वारा दुर्योधन की विद्याधरों से रक्षा ।
- पांडवों के पक्ष में राज्य की पुनर्प्राप्ति के लिए श्रीकृष्ण के सचेष्टता के प्रयत्न और पांडवों की ओर से उसके द्वारा कौरवों के साथ शांति वार्ता ।



- दुर्योधन के हठ के कारण भयानक विध्वंसक परिणाम स्वरूप महाभारत युद्ध ।
- श्रीकृष्ण द्वारा हस्तिनापुर के राज्यासन पर पांडवों का अभिषेक ।
- द्रौपदी हरण और उद्धार ।
- पांडवों द्वारा भगवान नेमिनाथ के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण ।

प्रस्तुत प्रबंध की कथावस्तु प्रायः महाभारत के कथानक से भी प्रभावित है और कवि ने उसे जैनादर्शों एवं मान्यताओं के सांचे में ढालने का भी सफल प्रयास किया है, इसमें कोई संशय नहीं किया जा सकता ।

समस्त कथानक में कौरव-पांडव विरोध और युद्ध ही प्रमुखता लिए हुए हैं । कवि ने कौरवों और, पांडवों के संघर्ष को क्रमशः सत् और असत् के संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया और अंततः सत् की विजय से पांडवों को प्रतिष्ठित किया है । कथा के क्रमिक विकास और विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करें तो हमें पता चलता है कि पांडवों की विजय ही इस कृति के कथानक का लक्ष्य अथवा फल है जिसके भोक्ता पांडवगण हैं । कौरव और पांडव राजकुमार आरंभ में अखाड़े में अपने-अपने बल और शौर्य का प्रदर्शन करते हैं और इस प्रसंग में इन दोनों पक्षों का मनोमालिन्य और वैमनस्य प्रकट होने लगता है । यह प्रारंभ अवस्था है । पांडवगण इसके पश्चात् निरंतर अपनी शक्ति में अभिवृद्धि करते रहते हैं । मत्स्यवेध में सफल रहकर अर्जुन स्वयंवर में द्रौपदी को प्राप्त कर लेता है, यहां तक प्रयत्न की अवस्था मानी जा सकती है । इसके पश्चात् पांडवों के अपकर्ष का काल है । जुए में पराजय और वनवासादि के प्रसंग इसके मूल में हैं । उनका अपना राज्य भी उनके अधिकार से निकल जाता है । ये परिस्थितियां फल प्राप्ति के मार्ग में बाधा के स्वरूप आती हैं । उनकी असमर्थता और साधन-हीनता के कारण पाठकों को यह आशा नहीं रह पाती कि इनकी विजय हो सकेगी । किंतु, पांडव सदा सक्रिय और सचेष्ट रहते हैं । यह प्राप्त्याशा की अवस्था है । महाभारत युद्ध आरंभ होता है । पांडवगण कौरव पक्ष के प्रसिद्ध योद्धाओं को समाप्त करते चले जाते हैं । उनका पराक्रम उत्कर्ष प्राप्त करता चलता है । यह स्थिति नियताप्ति की है । यहां पर फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है । कौरव दल समूल नष्ट हो जाता है । अन्त में श्रीकृष्ण पांडवों को हस्तिनापुर के राज्यासन पर आसीन करते हैं । यहीं पर फल की प्रत्यक्ष प्राप्ति हो जाती है और यह फलागम की अवस्था है ।

अवस्थाओं के साथ-साथ अर्थ प्रकृतियों एवं संधियों का भी सुंदर संयोजन इस कथानक में दिखाई देता है।

**चरित्र-चित्रण :**

सामूहिक रूप से पांडव बंधु इस कथा-काव्य के नायक हैं। इनके शौर्य, शक्ति, विक्रम और साहस का कवि द्वारा विशद वर्णन किया गया है। पांडवों में भीम सर्वाधिक बलवान है और अर्जुन सर्वाधिक कुशल। अखाड़े के प्रदर्शनों में भी कौरव पांडवों में अर्जुन ही सर्वोपरि लगता है। उसके कार्यों से उसकी धोरता, वीरता, चपलता, कुशल धनुर्धारिता आदि गुण प्रकट हो जाते हैं। कवि ने उसे “लोहपुरुष” की जो संज्ञा दी है उससे भी उसका चारित्रिक वैशिष्ट्य प्रकट होता है। पांडव सामर्थ्यवान् और साहसी हैं उनके विषय में कवि का कथन है—

जां महिमण्डलि ऊगिउ सूरु, जां वण पहुतउ पंडव वीरु ।<sup>70</sup>

अर्थात् पृथ्वीतल पर जहां जहां सूर्योदय होता है वहां पांडव पहुंच जाने की क्षमता रखते हैं। भीम के अपार बल की कहीं समता नहीं है।

तरुवर मोडतु चलिउ भीम, देव तणू बलू बलीउ ईम ।<sup>71</sup>

अर्थात् भीम इतना बलवान है कि वह चलते ही विशाल वृक्षों को तराड़ता, मरोड़ता चलता है।

पांडवों के अतिरिक्त भी कर्ण, भीष्म, द्रौपदी, कुंती, दुर्योधन, श्रीकृष्ण, विदुर, धृतराष्ट्र आदि अन्य अनेक पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। “धीरू वीरू, मति अगलउं करण, पढ़ई तिणि ठाह” कह कर कवि ने कर्ण की धोरता वीरता और बुद्धिमत्ता का चित्रण एक ही पंक्ति में बड़े कौशल के साथ कर दिया है।

**रस-योजना :**

कृति के अन्त में पांडवों द्वारा दीक्षा ग्रहण का वृत्तांत आया है, तथापि इस काव्य में शांत रस का प्राधान्य समझना भ्रांति होगी। समग्र काव्य कौरव पांडव संघर्ष से भरा है और इस कारण वीर रस ही प्रमुख स्थान ग्रहण कर पाया है। इसके अतिरिक्त शृंगार, करुण, रौद्र, बीभत्स आदि रस भी विभिन्न प्रसंगों में आए हैं।

७०. हिंदी के अज्ञात रास काव्य, मंगल प्रकाशन, जयपुर।

७१. वही—

**भाषा :**

पंच पांडव चरित रास में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है वह अविकसित हिंदी है। इस तथ्य का प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि प्रयुक्त भाषा में प्राचीन राजस्थानी एवं गुजराती शब्दों का बाहुल्य है। संस्कृत के तत्सम शब्द भी अधिक हैं। हिंदी के शास्त्रीय रूप के विकास क्रम में इस रचना का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

**छंद-अलंकार :**

प्रस्तुत कृति में कवि द्वारा रसानुकूल अनेक छंदों का प्रयोग किया गया है। चौपाई, त्रिपादी, रोला, दोहा-चौपाई, सोरठा, आदि छंदों का प्रयोग प्रमुखता से किया है।

रचना में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हुआ है। कहीं भी इस दिशा में कवि का कोई पूर्वाग्रह दृष्टिगत नहीं होता। अनुप्रासों की छटा विशेषतः दृष्टव्य रही है और अनुप्रास प्रयोग से युद्ध वर्णन अधिक सजीव हो उठे हैं। अलंकारों के अतिरिक्त अनेक स्थलों पर कवि द्वारा सूक्तियों का प्रयोग भी हुआ है जिसने सारी अभिव्यक्ति को ही प्राणवान कर दिया है।

**निष्कर्ष एवं तथ्य :**

इस अध्याय में मैंने जो अनुशीलन किया उसका अध्येतव्य विषय “हिंदी जैन श्रीकृष्ण रास और पुराण तथा अन्य साहित्य” था। इस अनुशीलन में “हरिवंशपुराण”, उत्तरपुराण, नेमिनाथ रास, प्रद्युम्नरास, नेमीश्वररास, गजसुकुमाल रास, पंच पांडव चरित रास जैसी रचनाएं थीं जिनका मैंने साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया।

(१) इसमें दो रचनाओं को छोड़कर अन्य रचनाएं श्रीकृष्ण के जैन परंपरा वाले चरित्र को ही प्रस्तुत करती हैं।

(२) प्रद्युम्नरास और गजसुकुमाल रास ये दो अवश्य ऐसी स्वतंत्र कृतियां हैं जो इस अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं। वैसे प्रद्युम्न-चरित तो इसके पूर्व भी मेरे अध्ययन का विषय पूर्व अध्यायों में बन चुका है। पर, इसमें जो राजस्थानी से प्रभावित आदि-कालीन हिंदी भाषा में ये दो रचनाएं मेरे अध्ययन में आयीं वे विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनमें भी गजसुकुमाल रास तो और भी विशेष महत्वपूर्ण है।

- (३) दोनों कृतियाँ इस अध्याय की अन्य कृतियों की तरह ही जैन वीतराग रस की प्रस्थापना करती हैं। पर, ये दो रचनाएं प्रद्युम्न रास और उसमें भी गजसुकुमाल रास जैन दर्शन और वैराग्य का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करती हैं। यह एक नया तथ्य है।
- (४) नेमिनाथ, पंचपाण्डव, प्रद्युम्न और गजसुकुमाल के चरित्र-चित्रण श्रीकृष्ण के साथ अपनी एक अलग कोटि ही प्रस्तुत करते हैं।
- (५) मेरी शोध दृष्टि में गजसुकुमाल का चरित्र आरंभ से अंत तक एक उज्ज्वल और सर्वोत्तम मुनि चरित्र है। तथ्य और निष्कर्ष उपादेय और महत्वपूर्ण हैं।

श्रीकृष्ण चरित्र एवं भ० नेमिनाथ से सम्बन्धित निम्नोक्त रास, फागु, धवल, विवाहलो, गीत आदि साहित्य भी दृष्टव्य एवं अध्येतव्य हैं।

क्र०	कृति नाम	रचयिता	रचनाकाल
१.	नेमिनाथ चतुष्पदी	विनयचन्द्रसूरि	१४वीं शदी
२.	नेमिरास	कवि पल्हण	१३वीं ,,
३.	नेमिनाथ फागु	कवि पद्म	१४वीं ,,
४.	,, ,,	राजशेखरसूरि(मलधार ग०)	१५वीं ,,
५.	नेमीश्वरचरित फागबन्ध	माणिक्यसुन्दरसूरि	१५वीं ,,
६.	नेमिनाथ धवल	जयशेखरसूरि	१५वीं ,,
७.	नेमिनाथ फाग	,,	१५वीं ,,
८.	नेमिनाथ नवरस फाग	रत्नमंडनगणि	,, ,,
९.	नेमिनाथ फाग	कवि कान्ह	,, ,,
१०.	नेमिनाथरास	सोमसुन्दरसूरि शिष्य	१६वीं ,,
११.	नेमिनाथ वसन्त फुलड़ा	मतिशेखर	,, ,,
१२.	नेमिनाथ चन्द्राउला	गुणनिधानसूरि शिष्य	,, ,,
१३.	नेमिनाथ धवल	ब्रह्ममुनि-विनयदेवसूरि	,, ,,
१४.	पंचपाण्डव सज्जाय	कवियण	,, ,,
१५.	यादवरास	पुण्यरत्न	,, ,,
१६.	नेमि परमानन्द बेलि	जयवल्लभ	,, ,,
१७.	प्रद्युम्नकुमार चौपाई	कमलशेखर	१७वीं ,,

१८. कृष्ण रुक्मिणी बेलि	पृथ्वीराज राठोड	१७वीं ,,
१९. सांब प्रद्युम्न प्रबन्ध	समयसुन्दरोपाध्याय	,, ,,
२०. गजसुकुमाल रास	जिनहर्ष	१७१४
२१. गजसुकुमाल रास	भुवनकीर्ति	१७०३
२२. गजसुकुमाल रास	पूर्णप्रभ	१७८६
२३. गजसुकुमाल रास	लावण्यकीर्ति	१७वीं शदी
२४. गजसुकुमाल रास	जिनराजसूरि	१६९९
२५. नेमिनाथ कलश	नयकुंजर	१५वीं शदी
२६. नेमिनाथ छन्द	शिवसुन्दर	१६वीं शदी
२७. नेमिनाथ धमाल	ज्ञानतिलक	१७वीं शदी
२८. नेमिनाथ फागु	कनकसोभ	१७वीं शदी
२९. नेमिनाथ फागु	कल्याणकमल	,, ,,
३०. नेमिनाथ फागु	जयनिधान	,, ,,
३१. नेमिनाथ फागु	जिनसमुद्रसूरि	१६९८
३२. नेमिनाथ फागु	महिमामेरु	१७वीं शदी
३३. नेमिनाथ फागु	राजहर्ष	१८वीं शदी
३४. नेमिनाथ फागु	समधर	१४वीं शदी
३५. नेमिनाथ रास	कनककीर्ति	१६९२
३६. नेमिनाथ रास	जिनहर्ष	१७७९
३७. नेमिनाथ रास	दानविनय	१७वीं
३८. नेमिनाथ रास	धर्मकीर्ति	१६७५
३९. नेमिनाथ राजीमति रास	समयप्रमोद	१६६३
४०. नेमिनाथ विवाहलो	जयसागरोपाध्याय	१५वीं
४१. *नेमिनाथ विवाहलो	महिमसुन्दर	१६६५

अगला अध्याय हिंदी के जैन श्रीकृष्ण मुक्तक काव्य संबंधी होगा ।

\*टि० इन समस्त कृतियों के परिचय के लिये द्रष्टव्य है : जैन गूर्जर कविओ,

## हिन्दी जैन श्रीकृष्ण मुक्तक साहित्य

**स्वरूप :**

हिंदी जैन कृष्ण मुक्तक काव्य साहित्य अन्य भारतीय काव्य साहित्य की विधाओं को तरह ही अनेक रूपों में रचा गया है जिसमें अनेक प्रकार के उपक्रम मिलेंगे। जैन मुक्तक काव्य में रास और पुराण तथा अन्य साहित्य को हम इसके पूर्व के अध्याय में विवेचित कर आए हैं। वहां पर कहीं चरित काव्य और आख्यानक काव्य को भी स्थान दे दिया है। यहां पर विशेष रूप से फागु, चौपाई, बेली, चंद्रिका, बारहमासा जैसे मुक्तक काव्य रचनाओं का समावेश किया गया है। इन जैन मुक्तक काव्य रचनाओं में कृष्ण कहीं पर हैं तो कहीं पर नेमिनाथ जी हैं और कहीं पर ये दोनों न होकर बलभद्र और राजीमती जैसे अन्य पात्र हो हैं। इसकी एक और विशेषता यह है कि १२ मासा की परंपरा जैन कवियों ने राजीमती को लेकर लोक-गीतों के रूप में रची है इसलिए इनकी समस्त कृतियां मिलना संभव नहीं है। हमने कण्ठाभरण के रूप में कतिपय उदाहरण अंत में प्रस्तुत कर दिए हैं जो उनके भीतर की काव्यानुभूति की सरसता और विरहजन्य भावना पर प्रकाश डालती हैं। हमारे इस शोध का यह एक नवीन व मौलिक प्रयत्न है।

**विषय-परंपरा :**

जैन साहित्य में श्रीकृष्ण विषयक स्फुट पदों की मुक्तक रचनाएं भी मिलती हैं। इन पदों में श्रीकृष्ण चरित्र के किसी प्रसंग विशेष की कोई झलक मिल जाती है। जैन मुक्तक काव्यकारों ने प्रायः आध्यात्मिक पद ही रचे हैं। इन पदों में वर्ण्यविचार या भाव विशेषकर विवेचन करने के क्रम में उदाहरण, दृष्टांत आदि के रूप में प्रख्यात पौराणिक आख्यानों का आश्रय लिया गया है। इसी क्रम में स्फुट पदों में श्रीकृष्ण चरित को भी स्थान मिला है। प्रकार के कथांश जैन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं के पोषक और व्याख्याता रूप में प्रयुक्त हुए हैं, यथा—

भिटत नहीं मेरे से या तो होणहार सोइ होइ ।

कहां कृष्ण कहां जरद कुंवर जी, कहां लोहा के तीर ।<sup>1</sup>

मृग के धोखे वन में मार्यो बलभद्र भरण गये नीर ॥

पं० महासेन की १६ वीं शताब्दी की इस रचना में इस तथ्य को प्रतिपादित करने का लक्ष्य रहा है कि पूर्वनिश्चित क्रमानुसार जो कुछ घटित होने वाला है, वह घटित होता ही है। कोई अपने सामर्थ्य के प्रयोग से उसे वह न घटे ऐसा नहीं बना सकते। होनहार होकर ही रहता है। इस तथ्य की पुष्टि में, श्रीकृष्ण के जीवन का यह प्रसंग प्रयुक्त करते हुए कहा गया है कि “देखो, कहां तो श्रीकृष्ण का वन (अर्थात् कौशांबी वन) में पहुंचना और कहां जरत्कुमार का भी उसी वन में आखेट के लिए जाना और श्रीकृष्ण को उसी समय प्यास लगना तथा बलदेव का जल लाने को जाना। शयन किए हुए श्रीकृष्ण को देखकर जराकुमार को मृग का धोखा होना” आदि सारी परिस्थितियां इसी नियति द्वारा निमित्त हो गयी। क्यों कि श्रीकृष्ण का मरण एक “अटल होनी” थी और अंततः जरत्कुमार के बाण से श्रीकृष्ण का देहांत हो ही जाता है।

कवि ने अपना मुख्य लक्ष्य होनहार के अवश्यभावी के रूप में घटित होने का तथ्य प्रस्तुत करने का ही रखा है। श्रीकृष्ण जीवन के अनेक प्रसंग मुक्तक पदों में आए हैं और सहायक रूप में चित्रण पाकर भी वे कृष्ण जीवन का आंशिक परिचय देने में समर्थ रहे हैं।

जैन साहित्य के इतिहास में मुक्तक पदों में काव्यरचना की भी एक दीर्घ परंपरा रही है। इस परंपरा के प्रमुख रचनाकारों का विवरण इस प्रकार दिया जा रहा है—

बनारसी दास	संवत् १६४३ (जन्म)
द्यानतराय	„ १७३३ (जन्म)
भैया भगवतीदास	„ १७३१-५५ (रचनाकाल)
बुध जन	„ १८३०-६५ (रचनाकाल)
भूधरदास	१८वीं शताब्दी
पंडित महासेन	१६वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध

१. पंडित महासेन-श्रीकृष्ण चरित—स्फुट काव्य १६वीं शताब्दी।

(१) रंगसागर-नेमि फागु<sup>२</sup>

प्रस्तुत कृति के रचयिता सोमसुंदरसूरि हैं। काव्य के अंत में नामोल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

भूया उज्ज्वल सोमसुंदर यशश्री संघ भद्रकर ।<sup>३</sup>

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य सोमसुंदरसूरि ने प्रस्तुत कृति की रचना ई० सन् १४२६ (सं० १४८३) के लगभग की थी।<sup>४</sup> प्रस्तुत कृति के दो नाम कवि ने बतलाए हैं। फाग के प्रारंभ में रंगसागर<sup>५</sup> लिखा है और पुष्पिका में “नेमिनाथ नवरस”<sup>६</sup> लिखा है।

१०६ छंदों में परंपरागत नेमिनाथ चरित का वर्णन करते हुए कवि ने ३ खंडों में कृति को विभाजित किया है।

प्रथम खंड में—जन्म वर्णन।

द्वितीय खंड में—विवाह वर्णन।

तृतीय खंड में—विरक्त होकर गिरनार पर तपाराधना कर कैवल्य की उपलब्धि का विवेचन है।

फागु, रासक, आंदोल आदि छंदों के प्रयोग के साथ अलंकारिक वर्णन कर कवि ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक आदि के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। प्रस्तुत कृति की भाषा राजस्थानी से प्रभावित आदिकालीन हिंदी है।

कृष्ण के शौर्य वर्णन में बाल जीवन की साहसिक घटनाओं का वर्णन इस प्रकार देखा जा सकता है<sup>७</sup>—

अवतरिआ इणि अवसरि मथुरा पुरिस रयण नव नेह रे।

सुख लालित लोला प्रीति अति बलदेव वासुदेव बेहु रे।

वसुदेव रोहिणी दिवकी नंदन चंदन अंजन वानरे,

वृंदावनि यमुना जलि निरमलि रमति सांइगांइ गान रे।

२. रंगसागर-नेमिफागु: सोमसुंदरसूरि।

हिंदी की आदि और मध्यकालीन कृतियां, पृ० १३६-१४८, सं. डा. गोविंद रजनीश।

३. तीसरा खण्ड ३७

४. वही, फाग परिचय पृ० १३४

५. स्मेरीकारं रंगसागरमहाफागे करिष्ये नवम्—प्रथम खंड-२

६. इति श्री नेमिनाथस्य नवरसाभिधानं भविकजनरंजनं फागं।

७. हिंदी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियां: सं० डा० गोविंद रजनीश: रंगसागर-नेमिफागु खंड प्रथम ३२ से ३६।



रमति करंता रंगि, चडइ गोवर्द्धन शृंगि,  
 गुजरि गोबालणिणं गाइं गोपी सिउं मिलीए,  
 कालिनाग जल अंतरालि कोमल कमलिनि नाल,  
 नाखिउ नारायणिण रमलि पराजणीए,  
 कंसमल्ला खाएइ वीर पट्टता साहस धीर,  
 वेहुवाइ वाकरीए बलवंता बाहिं करीए,  
 बलभद्र बलिआ सार मारिउ मौष्टिक मार,  
 कृष्णि बल पूरीउए चाणूर चूरिउ ए,  
 मौष्टिक चाणूर चूरिए देखीय ऊठिउ कंस,  
 नव बलवंत नारायणि तास कीधउ विध्वंस ।

इस प्रकार भाव, भाषा, छंद, अलंकार आदि सभी दृष्टियों से भी प्रस्तुत कृति सुंदर है ।

## (२) नेमिनाथ फागु<sup>८</sup>—जयशेखरसूरि

कृतिकार जयशेखर का समय १५वीं शताब्दी विक्रम का पूर्वार्द्ध है । इन्होंने श्वेतांबर जैन संप्रदाय के मेरुतुंगसूरि के पास संवत् १४१८ (ई० सन् १३६१) में जैन दीक्षा धारण की थी । इनके द्वारा रचित निम्न कृतियां प्राप्त हैं—

त्रिभुवन दीपक प्रबंध,  
 उपदेश-चिंतामणि,  
 धम्मिल-चरित्र,  
 प्रबोध-चिंतामणि,  
 नेमिनाथ फागु ।

नेमिनाथ फागु की हस्तलिखित प्रति १६वीं शताब्दी विक्रम की उपलब्ध है । कवि की जैन दीक्षा का आधार मानकर रचनाकाल १४वीं शताब्दी ई० का अंतिम समय माना जा सकता है ।

### कथानक

द्वारका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे जो अपनी वीरता व शूरता के लिए जगप्रसिद्ध थे । कृष्ण ने चाणूर, कंस और जरासंध को नष्ट किया था । कृष्ण के राज्य में राजा समुद्रविजय की रानी शिवादेवी के पुत्र

८. हिंदी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियां : संपादक डा० गोविंद रजनीश,

अरिष्टनेमि जब बड़े हुए तो उनका विवाह राजा उग्रसेन की कन्या राजीमती के साथ निश्चित हुआ। ज्योंही सजधज के बारात पहुंचने लगी त्योंही विवाहोत्सव में मारे जानेवाले पशुओं का करुण क्रंदन सुनकर नेमिकुमार का दिल दहल उठा। वे बिना ब्याह किए ही संसार मार्ग को छोड़ साधना में लग गए। परिजनों की लाख कोशिशों के बाद भी वे विचलित नहीं हुए। तपाराधना के पश्चात् उन्हें केवल की प्राप्ति हुई। वे तीर्थंकर के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके साथ ही राजुल (राजीमति) भी उन्हीं के मार्गानुसार साधना पथ को स्वीकारती है।

उपरोक्त कथावस्तु ५७ फागु छंदों में निबद्ध है।<sup>९</sup>

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित आदिकालीन हिंदी है। यह गेय काव्य है। नेमिनाथ की वंदना से काव्य का प्रारंभ होता है। काव्य में द्वारिका नगर तथा कृष्ण का शौर्य वर्णन श्रेष्ठ बन पड़ा है।

द्वारिका तथा कृष्ण वर्णन के पश्चात् कवि नेमि-राजुल के परंपरागत कथानक को प्रस्तुत करता है और अपनी प्रतिभा का परिचय देता है। अंत में वह इस कृति को सुंदररूप से समाप्त करता है।

फागु छंद में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २३ मात्राएं तथा १२, ११ पर यति होती है।

### (३) बलिभद्र चौपाई

इस कृति के रचयिता कवि यशोधर थे। काष्ठासंध के जैन गुरु विजय-सेन की वाणो से प्रभावित होकर जैन दीक्षा स्वीकार कर साहित्य क्षेत्र में आगे बढ़े। इनका समय संवत् १५२० से १५६० का बताया गया है।<sup>१०</sup>

१८६ पद्यों में रचित प्रस्तुत कृति की रचना संवत् १५८५ (ई० सन् १५२८) में हुई है जिसका उल्लेख कवि ने निम्न रूप से किया है—

संवत् पनर पच्यासीर, स्कन्ध नगर माभारि।

भवणि भजित जिनवर वणी, एगुणा गाया सारि ॥

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि प्रस्तुत कृति में कृष्ण के बड़े भ्राता बलराम का चरित वर्णन है।

९. हिंदी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियां : संपादक डा० गोविंद रजनीश, १०. राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : पृ० ८५, डा० कस्तूरचंद कासलीवाल।

प्रभु अरिष्टनेमि के मुखारविंद से द्वारका की भवितव्यता जानकर कृष्ण बलराम दोनों विचारमग्न हो गये। यथासमय द्वारका का विनाश हुआ। दोनों जंगल में पहुंचे। बलराम पानी लेने गये और इधर जरत्कुमार का बाण कृष्ण को लगा। बलराम कृष्ण के विलाप में रुदन करने लगे। अंत में वे प्रव्रज्या स्वीकार करते हैं व निर्वाण को उपलब्ध करते हैं। कृति की भाषा राजस्थानी से प्रभावित हिंदी है। प्रस्तुत कृति में १८६ पद ढाल, दूहा एवं चौपाई में हैं।

द्वारिका का वर्णन करते हुए कवि ने उसे १२ योजन विस्तारवाली व इंद्रपुरी के समान बतलाया है। इस नगरी में ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं थीं जिनमें अनेक धनपति व वीरवर निवास करते थे। यथा—

नगर द्वारिका देश मझार, जाणे इंद्रपुरी अवतार ।  
बार जोयण ते फिरतुं बसि, ते देखि जनमन उलसि ॥११॥  
नव खण तेर खणा प्रासाद, इह श्रेणि सम लागु वाद ।  
कोटीधन तिहां रहीइ घणा, रत्न हेम हीरे नहीं मणा ॥१२॥  
याचक जननि देइ दान, न होयउ हरण नहीं अभिमान ।  
सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नहीं दुर्जणा ॥१३॥<sup>११</sup>

द्वारिका का विनाश व कृष्ण के परभव-गमन की घटना को नेमिनाथ की भविष्यवाणी में लिखते हुए कवि ने लिखा है—

द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी संघार ।  
मद्यभांड जे नाभि कहीं, तेह थकी वली जलहि सही ॥६२॥  
पारलोक सवि जलसि जिसि, व बन्धव निकससु तिसि ।  
तह्य सहोदर जराकुमार, तेहनि हाथि मारि मोरार ॥६२॥<sup>१२</sup>

बलराम तथा श्रीकृष्ण के सहोदर प्रेम भावना का आदर्श इसमें वर्णित हुआ है।

#### (४) नेमिश्वर की बेलि

प्रस्तुत कृति के कृतिकार ठाकुरसी १६वीं शताब्दी विक्रम में उत्पन्न हुए थे। पिता घेलह स्वयं कवि थे।<sup>१३</sup> ये दिगंबर जैन कवि थे। इनकी निम्न रचनाएं हैं—

११. राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डा कस्तुरचंद कासलीवाल

१२. वही,

१३. नेमिश्वर बेलि, घेलह सुतन ठाकुरसी।

कवि घेलह सुतन ठाकुरसी, कियो नेमि सुरति मति सरसी।

कृष्ण चरित्,  
पंचेन्द्रिय बेलि,  
सीमन्धर स्तवन,

नेमीश्वर की बेलि,  
चिन्तामणि जयमाल,  
पार्श्व सकुन सत्तावीसी

१५५० के आसपास प्रस्तुत कृति की रचना का अनुमान कवि की अन्य कृति पंचेन्द्रिय बेली के आधार से किया जा सकता है<sup>१४</sup> किंतु कवि ने कृति में इस बात का उल्लेख नहीं किया है।

जैन परंपरागत नेमि-राजुल के कथानक का वर्णन करते हुए कवि ने वसंत आगमन के साथ ही द्वारकावासियों का वन क्रीडार्थ वन में गमन, अनासक्त नेमिकुमार को कृष्ण की रानियों द्वारा आसक्त बनाने की चेष्टा, नेमिकुमार द्वारा कृष्ण की आयुधशाला में पहुंचकर धनुष चढ़ाना व पांचजन्य शंख बजाना, उग्रसेन की कन्या राजीमती से नेमिकुमार का विवाह, पशुओं की करुण पुकार श्रवण कर नेमिकुमार का लौट जाना, राजीमती का व नेमि का विरक्त होना, आत्मसाधना कर सिद्ध गति प्राप्त करना आदि वर्णनों के द्वारा कवि ने काव्य कला का सुंदर परिचय प्रदान किया है। भाषा सरल राजस्थानी है। कुछ उदाहरण देखिये—

सुरनर जादव मिलि चल्या व्याहण नेमिकुमार ।  
पसु दीठा बाड़ो भर्यो बांध्या सुसर दुवारि ॥  
हरण रीछ सूवर प्रमुख, पुकारहि मुह ऊचाहि ।  
नेमिकुमार रथ राखि करि, बूग्यो सारथ वाहि ॥  
रे सारथ ए आजि, पसु बंधिया किणि काजि ।  
तिणि जंप्या किसनि अणाया, पसु जाति जके मन भाया ॥  
पोषिवा भगति बराती, पसु वद्धिवा सहि परमाती ।  
तब नेमिकुमार रथ छोड़ि, पसु मुकलाया वडु तोडि ॥<sup>१५</sup>

दोहा तथा सखी छंद में निर्मित यह कृति काव्य गुणों से युक्त है। सखी छंद वह कहलाता है जहां ४ चरण तथा प्रत्येक चरण में १४ मात्राओं का क्रम हो। प्रथम द्वितीय चरण तथा तृतीय चतुर्थ चरणों की तुक मिलती है, जैसे—

१४. राजस्थानी बेलि साहित्य—डा० नरेंद्र भानावत पृ० २४४

१५. वही—

तजि मोहु मान मद रोसा अतिसहिया विषम परिवासा ।

तह अठ्ठ करम बलुवायो तिमि केवल ग्यानु पायो ॥<sup>१६</sup>

कृति की हस्तलिखित प्रतियां दिगंबर जैन मंदिर बड़ा तेरहपंथियों का जयपुर, दिगंबर जैन मंदिर बधीचंदजी जयपुर, भट्टारक भण्डार अजमेर के शास्त्र भण्डारों में हैं। काव्य की दृष्टि से सरल एवं सरस वर्णन है व अनुप्रास, रूपक आदि अलंकारों से युक्त है यह एक कथात्मक गीतिकाव्य है।

### (५) बलभद्र बेलि

इसके रचयिता का नाम सालिग है। कृति में रचना काल का कोई उल्लेख नहीं है किंतु इसकी प्रतिलिपि संवत् १६६६ की मिलती है।<sup>१७</sup> इसलिए यह कहा जा सकता है कि इसकी रचना इसके पूर्व ही हुई होगी। डा० नरेंद्र भानावत के मतानुसार कवि सालिग १६वीं शताब्दी के कवि हैं।<sup>१८</sup>

प्रस्तुत कृति के २८ छंदों में द्वारका-विनाश, कृष्ण का परमधाम गमन और उनके अग्रज बलभद्र के अंतिम समय की घटनाओं का विवेचन है।

कथावस्तु—

द्वैपायन ऋषि के शाप से द्वारका नगरी का अग्नि में विनाश होता है, कृष्ण व बलराम वहां से निकल कर कौशांबी वन में पहुंचते हैं, कृष्ण को प्यास लगी है यह देख कर बलभद्र पानी लाने गये। ज्योंहि श्रीकृष्ण एक वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगे त्योंहि जरत्कुमार ने हरिण के धोखे से बाण चलाया जो उन्हें लगा और श्रीकृष्ण का देहावसान हो गया। बलभद्र पानी लेकर लौटे तब कृष्ण को अचेत अवस्था में पाकर उनके मृत शरीर को कंधे पर उठाकर ६ मास पर्यंत घूमते रहे। अंत में देवताओं ने उन्हें प्रबोध देने के लिए एक नाटक रचा। उसमें यह बतलाया गया कि घाणी से रेत को पीस कर तेल का निकलवाया गया तथा पत्थर पर पुष्प को खिलवाया गया। इसके फलस्वरूप बलभद्र का मोह दूर हुआ। कृष्ण के मृत शरीर का दाह संस्कार कर, अरिष्टनेमि की सेवा में पहुंचकर, प्रव्रज्या ग्रहण कर वे ५ वें देवलोक में पुनः उत्पन्न हुए।

१६. राजस्थानी बेलि साहित्य—डा० नरेंद्र भानावत पृ० २४४

१७. बलभद्र बेलि—रच० सालिग।

समकित विण काज न सिभइ। सालिग कहइ सुधउ कीजइ ॥२८॥

१८. राजस्थानी बेलि साहित्य—डा० नरेंद्र भानावत

सरल रास्थानी भाषा में निर्मित प्रस्तुत काव्य के कुछ उदाहरण देखिए :—

तब देव उपाव करावइ । मिल उपरि कमल ति बावई ।  
 ते बावइ कमल तिणि आगई । बलिभद्र कहइ किम लागई ॥  
 पाथर ऊपर पोयणी, किम ऊगसी गमार ।  
 जो ये मुआं जीवसी, तउ ऊगसी कुमार ॥  
 इम वचन सुणी मंन जाणी । बेंलु पील्हइ घाणी ।  
 तूं मुख जोइ नवि मासी । बेंलु किम पील्हासी ।  
 तो एसू ओ मडउ ओ जीवइ । तो तेल बलइ लव दीवइ ।  
 समभावत तडकी बोलइ । बलिभद्र पड्यो इम डोलई ॥

कवि ने अपनी इस कृति में दोहा और सखी छंदों का प्रयोग किया है। इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में संग्रहीत एक गुटके में उपलब्ध है।<sup>१९</sup>

### (६) नेमि ब्याह

कविवर विनोदीलाल की यह एक छोटी-सी सरस रचना है<sup>२०</sup> जिसमें नेमिनाथ की बरात का चित्रण करते हुए कवि ने पशुओं की करुण पुकार को सुनकर नेमि के हृदय में वैराग्य भाव को जागृत कराया है। इसकी कथा-वस्तु पूर्व की हिंदी कृति नेमिचंद्रिका की तरह है।

प्रस्तुत कृति में नेमिनाथ के दिल में दुःखी राष्ट्र के दुःख को दूर करने की प्रबल आकांक्षा जागृत होती है। यद्यपि उनके मन में कुछ क्षणों तक सांसारिक प्रलोभनों से युद्ध होता है, परंतु जब वे तटस्थ होकर राष्ट्र की परिस्थिति का चिंतन करते हैं, उस समय उनका मोह समाप्त हो जाता है। भौतिक वैभव को त्याग कर मानव-कल्याण के हेतु वे तपाराधना के लिए जाते हैं। उनका यह कार्य जीवन से पलायन नहीं है, अपितु यथार्थ में यह ऐसा पुरुषार्थ है जिसके लिए आत्मबल की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार दृढ़ मनोबल साधारण व्यक्ति नहीं कर पाता। जिसके अंतःकरण में मानव-कल्याण की भावना सुलग रही हो, जिसकी आत्मा में अपूर्व बल होगा वही व्यक्ति इस प्रकार के अद्वितीय कार्यों को संपन्न कर सकेगा।

१९. बलिभद्र बेलि (हस्त० प्रति) अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, प० संख्या १४ से १७

२०. नेमिव्याह : कवि विनोदीलाल—हिंदी जैन साहित्य परिशीलन : ले० डा०

नेमिचंद्र शास्त्री, पृ० २०१ से २२२।

नेमिनाथ ऐसे ही असाधारण व्यक्ति थे। कवि विनोदीलाल ने रचना के आरंभ में वर की वेषभूषा का जो वर्णन किया है वह द्रष्टव्य है—

मोर धरो सिर दूल्ह के कर कंकण बांध दई कस डोरी ।  
कुंडल कानन में झलके अति भाल में लाल विराजत रोरी ।  
मोतिन की लड शोभित है छवि देखि लजे बनित। सब गोरी ।  
लाल विनोदी के साहिब मुख देखन को दुनियां उठ दौरी ॥<sup>21</sup>

विरक्त होने काले नेमिनाथ का चित्रण:—

नेम उदास भये जब से कर जोड़ के सिद्ध का नाम लियो है ।  
अम्बर भूषण डार दिये शिरमोर उतारके डार दियो है ॥  
रूप धरों मुनिका जब हीं तब हीं चढ़ि के गिरनारि गयो है ।  
लाल विनोदी के साहिब ने तहां पांच महाव्रत योग लयो है ॥<sup>22</sup>

कवि ने इस रचना में युवकों के आदर्श के साथ युवतियों के आदर्श का भी सुंदर अंकन किया है। जब तक देश का नारी समाज जाग्रत नहीं होगा और विवाह ही जीवन का उद्देश्य है इस सिद्धांत का त्याग नहीं करेगा तब तक राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता। राजुल ने ऐसा ही आदर्श प्रस्तुत किया है। भोग-जीवन का जघन्य लक्ष्य है। व्यक्ति जब भोगवाद से ऊपर उठता है तभी वह सेवा कार्य में प्रवृत्त हो सकता है। जब माता-पिता राजुल को पुनः वरान्वेषण की बात कहकर संतुष्ट करते हैं, तब राजुल ही सुंदर उत्तर देती हुई कहती है—

काहे न बात सम्हाल कहो तुम जानत होयहो बात भली है ।  
गालियां काढ़ कहो हमको सुनो तात भली तुम जीभ चली है ॥  
मैं सबको तुम तुल्य गिनौ तुम जानत ना यह बात रली है ।  
या भव में पति नेम प्रभू वह लाल विनोदी को नाथ बली है ॥<sup>23</sup>

### (७) नेमि चन्द्रिका

प्रस्तुत कृति का रचयिता मनरंगलाल पल्लीवाल है। ग्रंथ के अंत में परिचय देते हुए लेखक ने लिखा है कि वह कान्यकुब्ज (कन्नौज) का

२१. नेमिव्याह : कवि विनोदीलाल—हिंदी जैन साहित्य परिशीलन: ले० डा० नेमिचंद्र

शास्त्री, पृ० १ से २२।

२२. वही—

२३. वही—

निवासी जैन धर्मावलंबी था, पिता कनोजीलाल थे। अपने मित्र गोपालदास के कहने से उन्होंने इस कृति का निर्माण किया था।<sup>24</sup>

प्रस्तुत ग्रंथ का आधार जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण है। इसकी रचना कवि के कथनानुसार विक्रम संवत् १८८० (सन् १८२३) है।<sup>25</sup> ३८६ छंदों में विरचित इस ग्रंथ के प्रारंभ में जिनेश्वर व गणेश की वंदना है। द्वारिका नगरी के शक्ति संपन्न राजा वासुदेव श्रीकृष्ण का वर्णन, नेमिनाथ के माता-पिता का वर्णन, नेमिनाथ तथा कृष्ण की बाल लीलाएं, नेमि का सौंदर्य और वीरत्व एवं वैराग्य वर्णन, कैवल्य प्राप्ति तथा मोक्ष के वर्णन हैं। कृति की कथावस्तु परंपरागत है। खंडकाव्य की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना है। इसकी भाषा सरल हिंदी जो सामान्य पाठक समझ सकते हैं। दोहा, सोरठा, चौपाई, अडिल्ल तथा भुजंगप्रयात छंदों का प्रयोग करते हुए कवि ने शांत, करुण, विप्रलंब शृंगार आदि रसों का अच्छा उपयोग अपनी इस कृति में किया है। यहां पर रसों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

#### वीररस का उदाहरण

नाग साधि करके मुरलिधर । सहस पत्र ल्याये इंदीवर ।  
कंस नास किन्हों छिनमांहि । उग्रसेन कहं राज्य करांहि ।  
जीत लीन शिशुपाल नरेस । जरासंध जीतो चक्रेस ॥  
इत्यादिक बहु कारण करे । सकल अनीति मार्ग तिन हरे ।<sup>26</sup>

भारत भूमि के संपूर्ण राजाओं में श्रेष्ठ व पूजनीय वीर कृष्ण कंस का वध कर पिता उग्रसेन को राज्यासीन करते हैं। शिशुपाल व जरासंध जैसे शक्तिसंपन्न वीरों पर विजय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उन्होंने अनेकानेक पराक्रमपूर्ण कार्य किए हैं। ऐसे कार्यों से श्रीकृष्ण ने अनीति के स्थान पर नीति की स्थापना की है।

इस प्रकार के श्रेष्ठ कृष्ण किस तरह से नृपतिगण व देवगणों के द्वारा सेवित थे और ये ही लोग उनकी आज्ञा-पालन कैसे करते थे इसे लेकर इस प्रसंग का कवि ने मार्मिक विवेचन किया है। यथा—

२४. नेमिचंद्रिका की एक हस्तलिखित प्रति, जैन मंदिर बड़ा तेरापंधियों का, जयपुर में उपलब्ध है।

२५. एक सहस अरु आठ सत वरष असीती और ।

याहि संवत मौ करी पूरण छह गुण गौर ॥ —नेमिचंद्रिका ।

२६. नेमिचंद्रिका—छंद १६-२० ।



सकल भूप सेवत तिन पांय ।

देव करत आज्ञा मन भाय ॥<sup>27</sup>

एक और वर्णन द्रष्टव्य है जिसमें सांसारिक अस्थिरता एवं झूठे स्वार्थ से प्रेरित विरक्ति के भाव निर्वेद की पुष्टि करते हैं, इसे देखिए—

अस्थिर वस्तु जितनी जग मांहि

उपजत विणसत संशय नांहि ॥

स्वारथ पाय सकल हित करे ।

बिन स्वारथ काउ हाथ न धरे ॥<sup>28</sup>

### (८) बारह मासा नेमि-राजुल

जैन कवियों ने बारह मासों की रचना करके अपनी राष्ट्रीयता की भावनाओं का सुंदर चित्रण किया है, इसमें वीरता का भी प्रदर्शन है। बारह मासों में संवाद शैली में सेवा तथा वैराग्य की भावना को प्रकर्ष दिया गया है और अंत में उसी का महत्त्व है। संवादों के माध्यम से इसमें विभिन्न मानवीय भावनाओं का सुंदर अंकन दिखाई देता है। इस कृति का रचयिता कवि विनोदीलाल है।<sup>29</sup>

इसमें राजुल अपने संकल्पित पति नेमिनाथ से अनुरोध करती है कि “स्वामी आप इस युवावस्था में विरक्तभाव से क्यों तपस्या करने जाते हैं ? यदि आपको तपस्या करना ही अभीष्ट था और आप देश में अहिंसा संस्कृति का प्रचार करना चाहते थे तो आपने आषाढ़ महीने में यह व्रत क्यों नहीं लिया ? जब आप श्रावण में विवाह की तैयारी कर आ गए तब क्यों आप इस तरह मुझे ठुकराकर जा रहे हैं ? मेरा मतव्य है कि राष्ट्रोत्थान में भाग लेना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। स्वर्णिम अतीत हरेक सहृदय को प्रभावित करता ही है। राष्ट्र की संपत्ति युवक और युवतियां हैं और इन्हीं के ऊपर राष्ट्र का समुच्चा उत्तरदायित्व है। इसलिए आपका महत्वपूर्ण त्याग वैयक्तिक साधना न होकर राष्ट्रहित साधन बन जायगा। फिर भी मैं आपके कोमल शरीर व ललित कामनाओं का अनुभव करती हूं, इसलिए मेरा आपसे नम्र निवेदन है कि यह व्रत आपके लिए

२७. नेमिचंद्रिका—छंद १६-२०

२८. वही—

२०. बारह मासा नेमि राजुल : ले० विनोदीलाल, हिंदी जैन साहित्य परिशीलन :

ले० नेमिचंद्र शास्त्री, पृ० २०२-५,

उचित नहीं है। श्रावण मास में व्रत लेने से घनघोर बादलों का गर्जन, विद्युत् की चकाचौंध, कोयल की कूहुक, अंधकारपूर्ण यामिनी और पूर्वी पूर्वी हवा के मधुर शीतल झोंके आपको वासना से परिपूर्ण किए बिना नहीं रहेंगे। अतएव इस महीने में दीक्षा लेना खतरे से खाली नहीं है। अतः इस समय तप साधना करना भी ठीक नहीं है।”

राजुल की उक्त बातों का उत्तर नेमिनाथ ने बड़े ही ओजस्वी शब्दों में दिया है। वे कहते हैं कि “जब तक व्यक्ति आत्मशोधन नहीं कर लेता तब तक राष्ट्र का हित नहीं कर सकता। आत्मशोधन के लिए समय विशेष की आवश्यकता नहीं रहती। भय और त्रास उन्हीं व्यक्तियों को विचलित कर सकते हैं जिनके मन में किसी भी प्रकार का प्रलोभन शेष रहता है। मेरे मन में कोई प्रलोभन नहीं है। प्रकृति के मनोहर रूप में जहां रमणीय भावनाओं को जागरूक करने की क्षमता है वहां उसमें वीरता, धीरता और कर्तव्य-परायणता की भावना उत्पन्न करने की योग्यता भी विद्यमान है। अतः श्रावण मास की झड़ी, वासना के स्थान पर विरक्ति ही उत्पन्न कर सकेगी।” नेमिनाथ के इस उत्तर को सुनकर राजुल भाद्रपद मास की कठिनाइयों का विवेचन करती है, वह मोहवश उनसे प्रार्थना करती हुई करती है कि “प्राणनाथ, आप जैसे सुकुमार व्यक्ति भाद्रपद मास की अनवरत होने वाली वर्षा ऋतु की मुक्त प्रवृत्ति में, जहां न भव्य प्रासाद होगा न वस्त्रवेश्म, आप किस प्रकार रह सकेंगे? झंझावात, नन्हीं-नन्हीं पानी की बूंदें पानी से युक्त होकर शरीर में अपूर्व वेदना उत्पन्न करेंगी। यदि आपको योग धारण ही करना है तो घर पर चलकर योग धारण कीजिए। सेवक को वन जाना आवश्यक नहीं, वह घर में रहकर भी सेवा कार्य कर सकता है। प्राणनाथ, मैं यह मानती हूं कि इस समय देश में हिंसा का बोलबाला है, इसे दूर करने के लिए पहले अपने को पूर्ण अहिंसक बनाना पड़ेगा, तभी देश का कल्याण हो सकेगा। परंतु, आपका मोह मुझे इस बात की प्रेरणा दे रहा है कि मैं इस कठिनाई से आपकी रक्षा करूं।”

राजुल की इन बातों को सुनकर नेमिनाथ हंस पड़ते हैं और कहते हैं कि “कष्ट सहिष्णु बनना प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक है। ये थोड़े से कष्ट किस गिनती में हैं? जब नरक निगोद के भयंकर कष्ट सहें हैं तथा जब इस समय हमारा राष्ट्र संतप्त है, प्रत्येक प्राणी हिंसा से छटपटा रहा है, उस समय तुम्हारी ये मोहभरी बातें कुछ भी महत्व नहीं रखतीं। मैंने अच्छी तरह निश्चय करने के उपरांत ही इस मार्ग का अवलंबन लिया है।”

इसी प्रकार राजुल ने १२ महीनों की भीषणता का चित्रांकन किया है। नेमिनाथ इन विभीषिकाओं से नहीं डरते। वह तो अपने व्रत में दृढ़ रहते हैं। इस प्रसंग के सभी पद्य सरल और मधुर हैं। कार्तिक मास का चित्रण करती हुई राजुल कहती है—

पिय कार्तिक में मन कैसे रहे, जब भामिनि भौन सजावेंगी ।  
रचि चित्र विचित्र सुरंग सजे, घरहीं घर मंगल गावेंगी ।  
पिय नूतन नारि सिंगार किए, आनो पिय ढेर बुलावेंगी ।  
पिय बारहि बार बरै दियरा,...जियरा तरसावेंगी ॥<sup>३०</sup>

नेमिनाथ का प्रत्युत्तर—

तो जियरा तरसे मुन राजुल, जो तन को अपने कर जाने ।  
पुद्गल भिन्न है भिन्न सबे, तन छोड़ि मनोरथ आन सयाने ॥  
बूड़े गो सोई कलिधार में, जउ चेतन को को एक प्रमाने ।  
हंस पिवे पय भिन्न करे जल, सो परमात्म आत्म जाने ॥<sup>३१</sup>

वसंत ऋतु के आमन की विभीषिका दिखलाती हुई राजुल कहती है :

पिय लागेगो चैत वसंत सुहावनो, फूलेगी बेल सबे वन माहीं ।  
फूलेगी कामिनी जाको पिया घर, फूलेगी फूल सबे बनराई ॥  
खेलहिगे ब्रज के बन में सब, बाल-गुपालरु कूंवर कन्हारै ।  
नेमि पिया उठ आवो घरे तुम, काहेको करहो लोग हंसाई ॥<sup>३२</sup>

### (६) बारह मासा वर्णन

उपलब्ध बारह मासों में सबसे प्राचीन “जिन-धर्मसूरि बारह नांवउ” है जो अपभ्रंश भाषा की रचना है। उसके पश्चात् कवि पाल्हण रचित नेमिनाथ बारह मासा भिलता है। पाल्हण का आबूरास सं० १२८६ की रचना होने से इस बारह मासा का रचनाकाल भी इसी के आसपास होना चाहिए।<sup>३३</sup> यथा—

सावणि सघण धुडुक्कइ मेहो, पावसि पत्तउ नेमि विछोहो ।  
दद्धर मोरलवहि असंगाह, दहदिह बीजु खिवइ चउवाह ॥

३०. बारहमासा नेमि राजुल: ले० विनोदीलाल, हिंदी जैन साहित्य परिशीलन भाग

१. ले० नेमिचंद शास्त्री, पृ० २०२-५ ।

३१. वही—

३२. वही—

३३. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परंपरा, ले० अगरचंद नाहटा,

कोइल महुँर वयणु चाए खइ, विवीहुँर घाह करेई ।

सावणु नेमि जिणिद विणू, भगइ कुमरि किय-गमणउ जाए ॥२॥

प्रस्तुत बारहमासा १६ पद्यों का है, प्रथम व १५ वें पद्य में कवि का का नाम आता है, वे दोनों पद्य इस प्रकार हैं—

आदि—

कासमीर मुख मंडण देवी, वाएसरि 'पाल्हणु' पणमेवी ।

पदमावतिय चक्केसरि नमिऊं, अंबिकदेवी हउं वीनवउं ॥

चरिउ पयासउ नेमि जिण केरउं, कवितु गुण धम्म निवासो ।

जिम राइमइ विओगु भओ, बारह मास पयासउ रासो ॥१॥

अत—

जो जादवकुल मंडल सारो, जिणि तिणि चडि परिहरिउ संसारो ।

कुमरि तजिय तपु लउ गिरनारे, सिधि परिणउ गउ मोख दुवारे ॥

जणु परिमलु 'पाल्हणु' भणए, तसु पय अणुदिण भत्ति करेउ ।

मणवंछिउ फलु पाविजए, धुय सम सरिसु वयणु फुइ एहु ॥१५॥

इणि परि भणिया 'बारहमासा' पठत सुणंतहं पूजउ आसा ।

रायमइ नेमिकुमर बहु चरिउं, संखेविण कवि इणि परि कहिउं ।

अंबिकदेवी सासण देवि माई, संघ सानिधु करिजउ समुदाई ॥१६॥

### (१०) नेमि-बारहमासा<sup>३४</sup>

नेमजी ओ रंगरंगीला छेल-छबीला छोड़ चल्याजी गिरनार ।

नेमजी ओ जेठज मासज जेठज मासज आयो मांरा नेमजी

आयो मांरा पिउजी घरती करे रे पुकार...

नेमजी ओ आषढ़ मासज आषढ़ मासज आयो मांरा नेमजी

आयो मांरा पिउ जी धूल उठे छे अपार...

नेमजी ओ श्रावण मासज, श्रावण मासज आयो मांरा नेमजी

आयो मांरा पिउ जी घटा घडी घनघोर...

नेमजी ओ भादव मासज, भादव मासज आयो मांरा नेमजी

आयो मांरा पिउ जी वर्षत लाग्यो नीर...

नेमजी ओ आसोज मासज, आसोज मासज आयो मांरा नेमजी

आयो मांरा पिउ जी जोगी बण गया ज़ाट...

नेमजी ओ कातिक मासज, कातिक मासज आयो मांरा नेमजी

आयो मांरा पिउ जी घर-घर दीपक माल...  
 नेमजी ओ मिगसर मासज, मिगसर मासज आयो मांरा नेमजी  
 आयो मांरा पिउ जी साधू संत विहार...  
 नेमजी ओ पोहज मासज, पोहज मासज आयो मांरा नेमजी  
 आयो मांरा पिउजी उण्ड पड़े जी अपार...  
 नेमजी ओ माघज मासज, माघज मासज आयो मांरा नेमजी  
 आयो मांरा पिउ जी थर-थर कांपे शरीर...  
 नेमजी ओ फागण मासज, फागण मासज आयो मांरा नेमजी  
 आयो मांरा पिउ जी घर-घर उड़े रे गुलाल...  
 नेमजी ओ चेतज मासज, चेतज मासज आयो मांरा नेमजी  
 आयो मांरा पिउ जी पूजन दो गिणगोर...  
 नेमजी ओ वैशाख मासज, वैशाख मासज आयो मांरा नेमजी  
 आयो मांरा पिउ जी आखा तीज तेवार...

### (११) नेमजी और राजुल का संवाद<sup>३५</sup>

(तर्ज—तेजा गाओगा जो...)

राजुल—सुनज्यो-सुनज्यो नेमजी थे पाछा क्याने जावो हो ।

राजुल तो जोवे है थारी बाटडी ॥

नेमजी : जीवारी तो घात म्हासु, सही नहीं जावे हो,

म्हारी तो काया रे पलटो खावियो ॥

राजुल : एक नहीं हां दो नहीं पर घणां भवां,रो साथ हो ।

इण भव म्हाही तारी म्हारा नेमजी ॥

म्हारा तो हृदय में बस गया आपजी ॥

कुण थाने भरमायों न कुण तो बहकायो हो,

काई तो कारण सुं काठा रूठिया ॥

मुश्किल से तो ब्याव रचायो सुनज्यो प्यारा नेमजी,

तोरण आया किकर छोड़ियो ॥

मूक जीवां पर दया थाने आई म्हारा नेमजी,

हां राजुल का हृदय नु किण विध तोड़ियो ॥

नेमजी : माया सुं मुक्ति नहीं है सुनज्यो राजुल नार ए,

काया बिन माया धूल जान ज्यो ॥

राजुल : प्राणनाथ हो आप नेम जी दूज्यो नहीं नाथ जी ।

नेम का चरण में चित राख स्यूं ॥

नेमजी : शुद्ध रेवेला शील धारो सुनज्यो राजुल नार ए ।

शील री महिमा रो नहीं पार ए ।

सखियां : सखियां तो अरदास करे सुन ज्यो राजुल बाई सा,

ध्यान छोड़ो ए नेम कुवार को ॥

सखियां : काला पीला नेम सरीखा घणा है संसार में,

ब्याव तो करोनी सुख चैन सु ॥

राजुल : काला पीला जो भी नेमजी हृदय रा वो हार है ।

हां-नेम री महिमा रो नहीं पार ए ॥

नेमजी : सखियां तो भरमासी थाने सुनज्यो राजुल नार हो ।

सखियां री बैखावट मति मान ज्यो ॥

दोहा : बिना ब्याव के लौट गये, छोड़ मोह जंजाल,

विरक्त भाव से रहते हैं नेम नाथ भगवान् ॥

एक करोड़ अस्सी लाख सोनैया, करते प्रति-दिन दान ।

ऐसे महापुरुषों को पूनम करे प्रणाम ॥

सुनकर इस संदेश को, राजुल भई बेहोश ।

सन्नाटा तब छा गया, दोनों पक्षों में घोर ॥

सखियां : करे करे सखियां, उपचार राजुल नार ए,

हिमत तो धारो ए, जग मायने ॥

नेमजी : संदेश अब भेज रहे हैं सुनजो राजुल नार ए,

प्रेरणा देने में तोरण आवियो ।

इस भव का संबंध तुम से सुनजे राजुल नार ए,

अमर रहवेला जग मायने ॥

संसारी वैभव में सुख नहीं है संसार में

संबंध तो जोड़ों ए परलोक को ॥

दोहा : मैं तो अब तैयार हूं, तुम होवो तैयार !

सफल करें मानव को, सर्वोत्तम सिद्धि पाय ।

दोहा : सुनकर शुभ सन्देश को, राजुल करे विचार ।

संजम लेस्यू शान सुं, सुनज्यो नेम कुवार ॥

शुभ मोहरत शुभ लग्न में, संजम सुखरो विचार ,

सात सो कन्या रे साथ में, राजुल वणी अणगार ॥

राजुल : दे दे म्हाने सत रो, आदेश माता प्यारी थे,

संजम तो धारं हो सुख चैन को ॥

रहसी वो तो शादी बिना, नेमजी अवतार रो,  
राजुल तो पालेला शुद्ध शील ने,  
धन्य-धन्य यारों सफल हो गयो जीवन संसार में,  
धर्म दीपायो जग मांयने ।<sup>३६</sup>

(१२) नेमजी की लावणी—कविबर लवणराम ।

नेमजी की जान बनी भारी, देखन कुं आवे नर नारी ।  
अति है घोड़ा और हाथी, मनख री गिनती नहीं आती ।  
ऊंट पर धजाजो फहराती, धमक से धरती थरती ॥

दोहा : समुद्र विजयजी को लाडीलो, नेमजी उनका नाम ।

राजुल देख आये परणवा, उग्रसेन घर ठाम ।  
प्रसन्न भइ नगरी सब सारी, नेमजी की जान बनी भारी ॥

कसंबल बागा अतिभारी, काने कुंडल छबि है न्यारी,  
कलंगी तोरा सुखकारी, माला गले मोतियन की डाली,

दोहा : काने कुंडल जगमगे, शीष खूब भलकार ।  
कोटीभानु की करव उपमा, शोभा अधिक अपार ।  
बाज रह्या बाजा टक्सारी, नेमजी की...

नेमजी वचन फरमाए, पशु जीव काए को लाये ।

दोहा : यांको भोजन होवसी जान वासते लेह,  
सुनी वचन यह नेमजी थर-थर कांपे देह,  
भाव सु चढ़ गउ गिरनारी, नेमजी की जान...

भरुखे राजुल दे आई, हाथ जल पकड़यो छिन माई  
कहा तूं जावे मेरी जाई, औखर है तुम मोकलाई

दोहा : मेरे तो वर एक ही, हो गया नेम कुंवारा ।  
और भुवन में वर नहीं, कोटि करो विचार ।  
दीक्षा जब राजुल ने धारी, नेमजी की जान...

सहेल्या सब ही समभावे, हीए राजुल के नही आवे,  
जगत सब झूठे दरसावे, मेरे मन नेम कुंवर भावे,

दोहा : तोड़्यां कांकर दोरडा, तोड़्या नवसर हार,  
काजल टीकि पान सोपारी, त्यागा सब सिणगार,

सहेल्या सब ही विलखाणी, नेमजी की...

त्याग्या सब सोलह सिणगारा, आमूषण रत्नजड़ित सारा,  
लगे मोहे सब ही सुख भारा, छोड़कर चाली निरधारा ।

दोहा : मातपिता परिवार को, तजता न लागी वार ।

वियोग कर चली आपसूं, जाय चही गिरनार,  
भूमती छोड़ी मां प्यारी, नेमजी की...

दया जब पशुअनकी आई, त्याग जब दीनों छिन माई ।  
नेमजी गिरनारे जाई, पशु के बंधन छुड़वाई ।

दोहा : नेम राजुल गिरनार पे, लीनो संजम धार ।

लवणराम करी लावणी, उपन्यो केवलज्ञान ।

जिन्हों की क्रिया बड़ी प्यारी, नेमजी की जान...

### (१३) कृष्ण लावणी

पुरुषोत्तम प्रगट्या अवतारी, जगत में महिमा विस्तारी । टेर ।

देवकी को नंदन है नीको, हुआ जादव कुल में टीको,  
भादवा वदी अष्टमी को, जनम जब हुआ हरिजी को ।

दोहा : तिन अवसर वसुदेवजी, मन का सोध मिटाय ।

कोमल कर में लेय कान्ह को, जावे गोकुल मांय ।

भवन से आय उतर हेटा, द्वार के ताला जड़्या सेंठा ।

कंस का पहरा बाहर बैठा, निकल जाने का नहीं रास्ता ।

दोहा : चरण अंगुल लगावियो, गोविंद को तिण वार ।

खड़-खड़ ताला टूट पड़्या, कांई सड़ सड़ खुल्यो द्वार ।

अखण्डित निकल गए बाहरी, जगत में...

अंधेरी रात घटा छाई, जोर से गाजे गगन माई ।

चमकती बिजल्यां दर्शाई, वायरी बाजे जोश खाई...

दोहा : अति उमंग आकाश से, पड़ रही जल की धार ।

सहस्र नाग छांया कर दीनि, पड़े न बूंद लगाय ।

जिन्हों का पुण्य बड़ा भारी, जगत में महिमा...

निकल मथुरा से गोकुल धावे, अपट जमुनाजी पुर जावे ।

निकलवा मारग नहीं पावे, विविध मिसतल मन में ठावे ।

दोहा : पग फरस्यो गउपाल को, जमुना हुई दो भाग ।

वसुदेवजी तुरन्त निकल गये, हुलस्यो हियो अथाग ।



गोकुल पहुंचे गिरधारी, जगत में...

यशोदा के हाथ जाय दीनो, प्रेम से गिरधर को लीनो,  
नन्दजी महोत्सव खूब कीनो, दान बहु याचक को दीनो ।

दोहा : आए मथुरा में निज घरे, वसुदेव जी चाल ।

दिन-दिन बीज कला ज्यों बढ़ता, आनंद में नंदलाल ।

कोई नहीं जाने नर-नारी, जगत में...

कृष्ण दिन-दिन भैया मोटा, हाथ में दण्ड लिया छोटा ।

ग्वाल संग रमे दही होटा, शत्रु के हुआ जेम सोटा ।

दोहा : सोलह वर्ष गोकुल विषे, लीला करी अनेक ।

तीन खण्ड का नाथ हुआ तो, पूरब पुण्य तो देख ।

जगत बल्लभ कहे नरनारी, जगत में...

दलाल्यां धर्म तिणि कीनि, शास्त्र में साख देख लीनि ।

दोहा : महामुनि नन्दलालजी, तस्य शिष्य कहे एम ।

पुण्यप्रताप वछित फल पावे, रखो धर्म का नेम ।

मांगलगढ़ जोड़ करी त्यारी, जगत में महिमा... ३७

(१४) नेमिनाथ और राजुल—कविवर नेमिचंद जी म०

(राग—कुवरां साधु तणो आचार)

इम किम छोड़ी नेमकुमार । राणी राजुल रा भरतार ॥टेरा॥

छप्पन करोड़ प्रभु जान बनाई, आया हर्ष अपार ।

तोरण थी रथ पाछो फेर्यो, दया धर्म दिलदार ॥१

पशुअन की प्रभु पीड़ा देखी, मारी नहीं सुणी रे पुकार,

बीन्द किणी विलमाया थाने, पाछा बल्या इण वार । इम. । २

जो थारे वालम नहीं परणणो तो, पेली करता विचार ।

तेल चड़ी हमने छिटकाई, किम निकले जमार । इम. । ३

जो थारे प्रीतम या हीज करणी तो, फेरा फिरता चार ।

हूं पण संजम साथे लेती, नहीं करती मनवार । इम. । ४

हूंस रही म्हारे सासरिया री, नहीं देख्यो घर बार ।

नेणां सुं परनाला बरसे, भुर रही राजुल नार । इम. । ५

खैर करी पिया थांने ओलुम्बो, काई देऊ बाग्म्बार ।  
 आठ भवारी प्रीत बंधाणी, नव में तोड़यो तार । इम । ६  
 इम कही ने कांकण डोरड़ा, तोड़यो नवसर हार ।  
 सखी सहेलियां वरजत सारी, जाय चढ़ी गिरनार । इम । ७  
 आप तो नेमजी पेली पधार्या, मुझे न लीधी लार ।  
 आप पेली मूं जाऊं मुगत में, जाणजो थांरी नार । इम । ८  
 चौपन्न दिनों रे पेली यों सती, पोहती मोक्ष मभार ।  
 नेम राजुल या सरीखी जोड़ी, थोड़ी इण संसार । इम । ९  
 पूज्य अमर सिंघजी रो सिंघाड़ो, दीपत ज्यूं दिनकार ।  
 पूज्य पूनम महाराज प्रसादे, भणे नेम अणगार । इम । १०  
 समत उगणीसे साल त्रेपने, भाद्रव पंच शनिवार ।  
 गाम रेडेडे कियो चौमासो, घणो हुवो उपगार । इम । ११<sup>३८</sup>

### रथनेमि एवं राजीमती

रथनेमि भगवान् अरिष्टनेमि के लघुभ्राता थे । रथनेमि का आकर्षण राजीमती की ओर प्रारंभ से ही रहा । जब भगवान् अरिष्टनेमि ने राजीमती को बिना विवाह किये ही छोड़ दिया तो रथनेमि उसके साथ विवाह करने के लिए लालायित हो उठा और अपनी भावना राजीमती के सामने व्यक्त करने लगा । राजीमती ने वमन कर उसे पीने के लिए कहा । रथनेमि ने क्रुद्ध होकर कहा—क्या तू मेरा अपमान करती है ? राजीमती ने कहा—भाई के द्वारा वमन किये हुए को ग्रहण करना क्या तुम्हारे लिए उपयुक्त है ? रथनेमि का विवेक जागृत हो उठा । यहां एक प्रश्न चिंतनीय है । वह यह है—अर्हत अरिष्टनेमि के दीक्षा लेने के पश्चात् रथनेमि ने भी दीक्षा ग्रहण की । आवश्यक निर्युक्ति, वृत्ति और आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित में लिखा है—रथनेमि चार सौ वर्ष गृहस्थावस्था में रहे, एक वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहे और पांच सौ वर्ष केवली पर्याय में । उनका नौ सौ वर्ष का आयुष्य हुआ । इसी तरह कुमारावस्था, छद्मस्थ अवस्था और केवली अवस्था का विभाग करके राजीमती ने भी उतनेही आयुष्य का उपभोग किया ।

३८. नेमिनाथ और राजुल—कविवर नेमिचंद जं. महाराज ।

अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष कुमारवस्था में रहे, सात सौ वर्ष छद्मस्थ व केवली अवस्था में रहे, इस तरह उन्होंने एक हजार वर्ष का आयुष्य भोगा ।

जिज्ञासा यह है कि रथनेमि भगवान् अरिष्टनेमि के लघुभ्राता हैं । भगवान् तीन सौ वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे तथा रथनेमि और राजीमती चार सौ वर्ष । राजीमती और अरिष्टनेमि के निर्वाण में सिर्फ चौपन दिन का अंतर है । चौपन दिन के अंतर का उल्लेख कवियों की रचना में मिलता है । यदि उस उल्लेख को प्रामाणिक माना जाय तो यह स्पष्ट है कि राजीमती का दो सौ वर्ष तक दीक्षित न होना तथा गृहस्थाश्रम में रहना चितनीय विषय है । विज्ञों को इस संबंध में अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत करना चाहिये ।

उत्तराध्ययन सूत्र की सुखबोधा वृत्ति तथा वादीवेताल शांतिसूरि रचित बृहद्वृत्ति, मलधारी आचार्य हेमचन्द्र के भवभावना ग्रंथ कि दृष्टि से अरिष्टनेमि के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर राजीमती दीक्षा ग्रहण करती है और कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार गजसुकुमाल मुनि के मोक्ष जाने के पश्चात् राजीमती नंद की कन्या एकवासा तथा यादवों की अनेक महिलाओं के साथ दीक्षा ग्रहण करती है । राजीमती यह सोचने लगी कि भगवान् अरिष्टनेमि धन्य हैं जिन्होंने मोह को जीत लिया । मुझे धिक्कार है जो मैं मोह के दलदल में फंसी हूँ । इसलिए यही श्रेयस्कर है की मैं दीक्षा ग्रहण करूँ । इस प्रकार राजीमती ने दृढ़ संकल्प कर कंधी के संवारे काले केशों को उखाड़ डाला । श्रीकृष्ण ने आशीर्वाद दिया—हे कन्ये ! इस भयंकर संसार रूपी सागर से तू शीघ्र तिरजा । रथनेमि ने भी उसी समय भगवान् के पास संयम ग्रहण किया ।

एक दिन की घटना है—बादलों की गड़गड़ाहट से दिशाएं कांप रही थीं । रेवतक का वनप्रांतर सांय-सांय कर रहा था । साध्वी समूह के साथ राजीमती रेवतक गिरि पर चढ़ रही थी । एकाएक छमाछम वर्षा होने लगी । साध्वी समूह आश्रय की खोज में इधर-उधर बिखर गया । बिछुड़ी हुई राजहंसिनी की तरह राजीमती ने एक अन्धेरी गुफा का शरण लिया । राजीमती ने एकांत स्थान निहार कर संपूर्ण गीले वस्त्र उतार दिये और उन्हें सूखने के लिए फैला दिये ।

राजीमती की फटकार से प्रबुद्ध बना हुआ रथनेमि श्रमण बनकर उसी गुफा में पहले से ही ध्यान मुद्रा में अवस्थित था। बिजली की चमक में निर्वस्त्र राजीमती को निहार कर रथनेमि विचलित हो गया। राजीमती की भी दृष्टि रथनेमि पर पड़ी। वह अपने अंगों का गोपन कर बैठ गई। काम-विह्वल रथनेमि ने मधुर स्वर से कहा—हे सुरूपा ! मैं तुझे प्रारम्भ से ही चाहता रहा हूँ। तू मुझे स्वीकार कर। मैं तेरे बिना जीवन धारण नहीं कर सकता। तू मेरी मनोकामना पूर्ण कर, फिर समय आने पर हम दोनों पुनः संयम ग्रहण कर लेंगे।

राजीमती ने देखा कि रथनेमि का मनोबल ध्वस्त हो गया है। वे विह्वल होकर संयम से च्युत होना चाहते हैं। उसने कहा—तुम चाहे कितने भी सुन्दर हो मैं किन्तु तुम्हारी इच्छा नहीं करती। अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प मर जाना पसंद करते हैं किन्तु वमन किये हुए विष का पान नहीं करते। फिर तुम इस प्रकार की इच्छा क्यों कर रहे हो ? जैसे अंकुश से हाथी वश में हो जाता है, वैसे ही रथनेमि का मन संयम में सुस्थिर हो गया।

यह कथा प्रसंग नारी की महत्ता को उजागर करता है। नारी सदा मानव की पथ-प्रदर्शिका रही है। जब मानव पथ से विचलित हुआ तब नारी ने उसका सच्चा पथ प्रदर्शित किया। जैसे—ब्राह्मी और सुन्दरी ने बाहु-बलि को अहंकार के गज से उतरने की प्रेरणा दी।

इस तरह अरिष्टनेमि के युग के अनेक श्रमणों का निरूपण इस अध्याय में हुआ है। इसके पश्चात् पुरुषादानीय भगवान् पार्श्व के तीर्थ में अंगति, सुप्रतिष्ठित, पूर्णभद्र आदि की बहुत ही संक्षेप में कथाएं हैं। जितशत्रु और सुबुद्धि प्रधान की कथा भी उसमें दी गई है। इस कथा में दुर्गन्धयुक्त जल को विशुद्ध बनाने की पद्धति पर चिंतन किया गया है। आधुनिक युग की फिल्टर पद्धति भी उस युग में प्रचलित थी। विश्व में कोई भी पदार्थ एकांत रूप से न पूर्ण शुभ है और न पूर्ण रूप से अशुभ ही है। प्रत्येक पदार्थ शुभ से अशुभ में परिवर्तित हो जाता है तथा प्रत्येक पदार्थ अशुभ से शुभ में परिवर्तित हो जाता है। अतः अंतर्मानस में किसी के प्रति घृणा करना अनुचित है यह बात प्रस्तुत कथानक में स्पष्ट की गई है।

यहाँ पर एक बात स्मरण रखने योग्य है—भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावीर इन दोनों तीर्थकरों के अतिरिक्त शेष बावीस तीर्थकरों के श्रमण चातुर्याम महाव्रत के पालक थे। पर बावीस तीर्थकरों के श्रमणो-

पासक द्वादश व्रतों को ही धारण करते थे। उनके लिए पांच ही अणुव्रत थे, चार नहीं।<sup>42</sup>

तथ्य और निष्कर्ष :

मुक्तक काव्य में जीवन का अंतर्दर्शन और रागात्मकता की अभिव्यक्ति होती है। इसमें भावना की और अनुभूति की अधिक गहराई होती है। मिलन-विरह, हर्ष-शोक और आनंद-विषाद के चित्र सीमित रूप में ज्ञेयता द्वारा लय और गति के साथ उपस्थित होते हैं।

इस प्रकार के काव्य में आत्मनिष्ठा और आत्मानुभूति का भाव प्रकाशन सामने आता है। हिंदी जैन मुक्तक साहित्य में लावणी, ढाल, बारहमासा, भजन, पद जैसा विपुल साहित्य मिलता है। विषय किसी व्यक्ति या प्रसंग को लेकर ही क्यों न हों उसमें शृंगार से आरंभ होकर उसकी परिणति वीतराग रस में होती है। संसार की स्वार्थपरता से भयभीत होकर अंत में शांति प्राप्ति के लिए अंतर्मुख होकर अंतरात्म से प्रेरणा प्राप्त की जाती है। ऐसे पदों में आत्म-चेतना की जागृति और गहरी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति उसका लक्ष्य होता है। उसमें आत्मनिवेदन भी एक विशेषता है। जीवन के सूक्ष्म व्यापक सत्यों का उद्घाटन करना, मानव के प्रकृत रागद्वेषों का परिमार्जन करना और मानव की स्वभावगत इच्छाओं तथा आकांक्षाओं और प्रवृत्ति-निवृत्तियों का सामंजस्य करना जैन मुक्तक काव्यों का वर्ण्य विषय है। काव्य के “सत्यं शीलं सुंदरम्” इन तीन अवयवों में से जैन मुक्तक काव्यों में लोकहित, शिवत्व की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह एवं संयम की विवेचना सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्ति हुई है। वैराग्य भावना संसार की असारता को प्रकट करती है। जनकल्याण के लिए मानवता का चरम विकास आवश्यक होता है, जैन मुक्तक काव्यों में यह सब सरसता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। मैंने इस अध्याय में जिन मुक्तक काव्य-विधाओं को अध्ययन में लिया है, उन सब में यही आत्म-निष्ठता और वैराग्य से उत्पन्न वीतराग रस प्रधान है। शृंगार रस को भी उदात्तीकरण के साथ वीतराग रस में परिणत करना यही हिंदी जैन मुक्तक काव्यों की अन्यतम विशेषता है। मैंने अपने अनुशीलन में इसे यथासंभव दिखाने की भरसक चेष्टा की है।

४२. धर्मकथानुयोग : एक समीक्षात्मक अध्ययन, देवेन्द्र मुनि शास्त्री, पृ० ५५ भूमिका।

इस अध्याय में कुल दो फागु काव्य, ३ बेलियां, १ नेमीब्याह, १ नेमिचंद्रिका और कई बारहमासे हैं। इनके अतिरिक्त कई नेमि-राजुल संवाद, वाणी, कृष्ण और नेमि लावणियां भी विद्यमान हैं। तथा एक परिच्छेद रथनेमि और राजीमती विषयक है। ये सारी कृतियां हिंदी जैन कृष्ण काव्य के मुक्तक काव्य विधा को प्रस्तुत कर देती हैं। मैंने भरसक इनको ठीक-ठीक परखने का पूरा प्रयत्न किया है। लावणियां, बारहमासे और संवाद जैसी विधायें लोकमानस में सांस्कृतिक रूप में अधिक प्रतिष्ठित होती रही हैं। इनकी गेयता और इनकी भाव गंभीरता और अनुभूति की तीव्रता उन्हें जनमानस-पटल पर अधिक प्रभाव उत्पन्न करने में सहायक हो जाती हैं। इसमें अनुभूति की प्रामाणिकता भी इसमें चार चांद लगा देती है। मुक्तक काव्य की इस जैन विधा में राजीमती का विरह वर्णन विप्रलंभ का विषय होने पर भी वह जैन दार्शनिकता का वीतरागी तत्त्व आत्मसात करता हुआ सांसारिक असारता और मोह से उबार कर उसको एक ऊंची आध्यात्मिक धरातल पर ला कर बैठा देता है। यह तथ्य अत्यंत मार्क के और अपने ढंग का अनोखा है।

बाधाओं के कगारों पर बैठी हुई राजीमती अपने ध्येय पथ से टस से मस नहीं होती। यहां तक की अरिष्टनेमि का सहोदर भाई रथनेमि भी उसको नहीं डिगा सकता। उसके चरित्र का यह अत्यंत अनमोल और उज्ज्वल पक्ष है जो उसे जैन श्रीकृष्ण साहित्य में और वीतरागी जैन परंपरा के साहित्य में सर्वोपरि स्थान देने में हिचकिचाहट नहीं महसूस करेगा। यही मेरा शोध निष्कर्ष इस हिंदी जैन श्रीकृष्ण साहित्य का महत्वपूर्ण तथ्य है।

गेयता और लोकसाहित्यपरक सांस्कृतिक अक्षुण्ण लोकप्रियता यह एक अन्यतम तथ्य और निष्कर्ष इस शोधाध्ययन में मेरे हाथ आया है।

इसके बाद मैं अपने समूचे अध्ययन के तथ्यों और निष्कर्षों को लेकर एक तुलनात्मक उपसंहार प्रस्तुत करने का प्रयास करने वाला हूँ। यहां पर उसको मैंने केवल सूचित मात्र कर दिया है।

—————

## तुलनात्मक निष्कर्ष, तथ्य एवं उपसंहार

यह अंतिम अध्याय है। मैंने अब तक जो अनुशीलन किया उसको अब भारतीय साहित्य की विभिन्न परंपराओं के साथ श्रीकृष्ण के स्वरूप पर विहगावलोकन करते हुए उसको तुलनीय रूप में देखकर जैन परंपरा में श्रीकृष्ण के श्रीकृष्ण-स्वरूप के तथ्यों को प्रथम प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इसके बाद अपने समग्र अध्यायों के निष्कर्षों और तथ्यों को प्रस्तुत कर अपने इस उपसंहार को पूर्ण करूँगा। इस उपक्रम में जो तथ्य हाथ लगे हैं उनको सामने रखकर इस क्षेत्र में अलग से अनुशीलनप्रद क्या हो सकता है उस पर केवल इंगित करते हुए मैं इसका समापन करूँगा।

### भारतीय साहित्य की विभिन्न परंपराओं में श्रीकृष्ण

वासुदेव श्रीकृष्ण 'भारत ही नहीं वरन् समस्त विश्व की महान विभूतियों में अग्रगण्य हैं। भारतीय संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र को उनकी महत्वपूर्ण देन रही है। धर्म, राजनीति, अध्यात्म, दर्शन, समाजशास्त्र आदि सभी श्रीकृष्ण के व्यापक शीलयुक्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व से उपकृत हैं। उनके इतने गहन और विशद प्रभाव का प्रमाण इस तथ्य से भली-भांति मिल जाता है कि साहित्य और कला का प्रत्येक क्षेत्र हमें श्रीकृष्णमय मिलता है।

श्रीकृष्ण चरित्र को देश की सभी भाषाओं के साहित्य में महत्वपूर्ण अपनापन मिला है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी आदि सभी भाषाओं में श्रीकृष्ण सम्बन्धी साहित्य प्राचुर्य के साथ मिलता है। प्रादेशिक भाषाओं में भी श्रीकृष्ण चरित्र को महत्वपूर्ण स्थान मिला है और लोक-साहित्य में भी। साहित्य की लगभग सभी विधाओं के माध्यम से इस महान चरित्र को उजागर करने की सफल चेष्टाएं भारतीय साहित्य के कोष को समृद्ध करने

में समर्थ रही हैं। वैदिक, जैन, बौद्ध, आदि धर्म-परंपराओं ने भी अपने-अपने आदर्शों व सिद्धान्तों की व्याख्या दी और श्रीकृष्ण के जीवन-चरित्र का अपने-अपने ढंग से उपयोग किया है, उससे श्रीकृष्ण चरित स्वयं ही और अधिक व्यापक हो गया है। हिंदी साहित्य का इतिहास तो श्रीकृष्ण युक्त है ही। विशेष रूप से भक्ति काल तो श्रीकृष्ण चरित की अमूल्य निधि से धन्य ही हो उठा है। रीतिकाल घोर लौकिकता के लिए विख्यात है ही। इस काल में भी श्रीकृष्ण को जितना अपनापन मिला है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण लोक-जीवन में कितने घुले मिले हुए हैं और उनका चरित्र कितना अधिक लोकप्रिय है।

जैन साहित्य तो विशेषतः श्रीकृष्ण चरित की दृष्टि से बड़ा ही समृद्ध है। एक दीर्घ-परंपरा हमें जैन वाङ्मय में ऐसी मिलती है जिसमें श्रीकृष्ण चरित को प्रतिपाद्य विषय के रूप में स्वीकार किया गया है। जैन आगमों में भी इस कथा को महत्वपूर्ण स्थान मिला है और आगमेतर ग्रंथों में भी।

जैन परंपरा में सर्व प्रथम आगमों में ही श्रीकृष्ण चरित वर्णित मिलता है। जैन कृष्ण साहित्य के इस प्राचीनतम रूप के अस्तित्व में आने और इसके विकसित होने का अपना एक निराला ही ढंग रहा है। वस्तुतः जैन आगमों में—अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर की वाणी का संकलन है। भगवान् अपने विचारों को सामान्य जन के समक्ष लोक-प्रचलित इति-वृत्तों और आख्यायिकाओं और कथानकों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रभावी प्रयत्न किया करते थे। इस क्रम में विभिन्न सिद्धांतों की समुचित व्याख्या एवं पुष्टि के प्रयोजन से उन्होंने श्रीकृष्ण जीवन की विविध घटनाओं का उपयोग भी उक्त प्रयोजन से किया। स्पष्ट है कि भ० महावीर से पूर्व भी श्रीकृष्ण चरित का लोक में किसी-न-किसी रूप में प्रचलन रहा, तभी भगवान उसका उपयोग कर सके और उसे उन्होंने उपयोग के योग्य भी समझा। योग्य से अर्थ यह कि भगवान महावीर ने अनुभव किया कि श्रीकृष्ण चरित को लोक-मानस द्वारा इतना हृदयंगम किया जा चुका है कि मैं अपने सिद्धांतों के प्रतिपादन एवं स्पष्टीकरण के हेतु यदि इसका उपयोग करूँ तो मेरे प्रयोजन की सफलता में यह एक उत्तम साधन सिद्ध हो सकता है। यह उल्लेखनीय है कि भगवान का निर्वाण ईसा से ५२७ वर्ष पूर्व हुआ था। इस तथ्य से यह भली-भांति विदित होता है कि कृष्ण कथा का प्रचलन अत्यंत प्राचीन काल से है।

**जैन श्रीकृष्ण कथा का अपना आगम**

आगम ग्रंथों में धर्म सिद्धांतों का निरूपण हुआ है। जब जिस सिद्धांत



के प्रतिपादन में श्रीकृष्ण जीवन के जिस प्रसंग का उपयोग समीचीन समझा गया तब उसका उपयोग कर लिया गया। अस्तु, आगमों में श्रीकृष्ण जीवन के अनेकों प्रसंग सम्मिलित अवश्य हो गये हैं, किन्तु जैन श्रीकृष्ण-कथा के इस आरंभिक स्वरूप में ये प्रसंग क्रमबद्धता के साथ प्रस्तुत नहीं हो पाए हैं। वहां इन प्रसंगों में न तो कार्य-कारण संबंध स्थिर हो पाता है और न पूर्वापर स्वरूप ही बन पाता है। साथ ही ये विभिन्न प्रसंग अन्यान्य विषयक कथाओं के बीच-बीच में बिखरे पड़े हैं। इन्हें एकत्र कर व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप देने के प्रयासों से आगमेतर ग्रंथ अस्तित्व में आए। आगमेतर ग्रंथ भी विभिन्न विषयों और प्रयोजनों से सम्बद्ध रहे हैं। साहित्य क्षेत्र में ज्यों-ज्यों भाषा माध्यम बदलता गया त्यों-त्यों यह कथानक युगीन भाषा में ढलता गया और जैन कृष्ण कथा संबंधी विशाल कृति-समुच्चय निर्मित हो गया।

ऐतिहासिक महापुरुष श्रीकृष्ण के जीवन चरित को निःसंदेह सभी दिशाओं से अपनाया गया है और वैदिक वाङ्मय भी इसका अपावद नहीं है। वैदिक साहित्य का विपुल भाग श्रीकृष्ण संबंधी है। इन ग्रंथों से श्रीकृष्ण के स्वरूप, व्यक्तित्व, जीवन और विशिष्टताओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वैदिक परंपरा के ग्रंथों का अध्ययन एक और तथ्य भी प्रकाशित करता है कि श्रीकृष्ण नामक एक ही नहीं एकाधिक विशिष्ट व्यक्ति रहे हैं। देवकी-वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण तो वैदिक साहित्य में प्रतिपाद्य रहे ही हैं, किन्तु इनसे भी भिन्न इसी नाम के (श्रीकृष्ण) अन्य जन भी रहे हैं और उनकी चर्चा भी इस साहित्य में हुई है। उन सभी श्रीकृष्णों का स्वरूप भिन्न-भिन्न रहा है और अपनी-अपनी विशेषताओं के निरूपण हेतु उन्हें इस साहित्य में यथोचित स्थान प्राप्त हुआ है। इन अनेक श्रीकृष्ण-स्वरूपों में से देवकीनंदन श्रीकृष्ण को भिन्न करके पहचानना अपने आप में अवश्य ही एक गंभीर और महत्वपूर्ण कार्य रहा होगा। इन्हीं श्रीकृष्ण (देवकीनंदन) के चरित का चित्रण भी वैदिक परंपरा में अपनी मान्यताओं और दृष्टिकोणों के अनुरूप ही हुआ है। इसी प्रकार बौद्ध साहित्य में भी श्रीकृष्ण को समुचित स्थान मिला है, किन्तु बौद्ध धर्म और सिद्धांतों के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व निरूपित हुआ है। बौद्ध धर्म-ग्रंथों में जातक कथाओं का विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से घट जातक का संबंध श्रीकृष्ण चरित से है। जैन श्रीकृष्ण चरित की अपेक्षा वैदिक श्रीकृष्ण का चरित काफी भिन्न है। बौद्ध साहित्य में उपलब्ध उनका रूप और भी भिन्न है। सभी ने इस एक चरित का उपयोग अपने ढंग से व अपनी दृष्टि से किया है। परिणामतः इन सभी श्रीकृष्ण-स्वरूपों का

अध्ययन करने से इन विभिन्न धर्मों का पारस्परिक दृष्टि-भेद स्पष्ट हो जाता है।

### जैन कथा साहित्य में कृष्ण

प्रत्येक देश, जाति और धर्म के साहित्य में कथाओं का बड़ा जनप्रिय स्थान रहा है। लोक साहित्य में भी कहानियों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कुतूहल और जिज्ञासा की प्रवृत्ति के कारण कथाएं श्रोता का मन आकर्षित करने में अत्यन्त सफल रही हैं। और, अंत तक अपने साथ उन्हें जोड़ कर रखने की क्षमता भी रखती हैं। कोरे उपदेश शुष्क व नीरस हो जाते हैं। सर्वसाधारण उनके प्रति आकर्षित नहीं हो पाता। इसी कारण उपदेशों का लाभ उन तक पहुंच वहीं पाता। जब उपदिष्ट कथ्य कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो रुचिकर हो जाता है और लक्षित व्यक्तियों तक सुगमता से पहुंच जाता है। धार्मिक नेता अनुयायियों में ऐसी कथाओं के माध्यम से अपेक्षित परिवर्तन लाने में अन्य मार्गों की अपेक्षा अधिक सफल होते हैं। कथा-कहानियों में किसी सिद्धांत का कोरा दर्शन न होकर दृष्टांत रूप में व्यावहारिक रूप से घटित घटना का रूप होता है, अतः वह सिद्धांत सजीव, सहज और अधिक विश्वसनीय हो उठता है और प्रभावशाली ढंग से परिवर्तन उपस्थित कर देता है।

जैन वाङ्मय में भी कथा साहित्य के इस अद्भुत चमत्कारपूर्ण प्रभाव के कारण इसे असाधारण प्रश्रय मिला है। केवल तात्त्विक विवेचन, दार्शनिक विचार और धार्मिक क्रियाओं को ही जैन साहित्य का प्रतिपाद्य समझने वाले भ्रम में हैं। यथार्थ में उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण, रोचक तथा लोक-प्रिय अंश तो कथा साहित्य का ही है। वस्तुतः जैन कथा साहित्य का एक विशाल भण्डार है। जैन कथाएं विभिन्न भाषाओं में विभिन्न शैलियों और रूपों में मिलती हैं। जैन कथाओं में लोक कथाएं भी हैं तो नैतिक आख्यायिकाएं भी हैं, साहसिक कहानियां भी हैं तो पशुपक्षियों की और देवी देवताओं की कहानियां भी हैं। मुक्तक रूप में स्वतंत्र कहानियां भी मिलती हैं और कहानियों के समुच्चय भी मिलते हैं जिन्हें शृंखालाबद्ध कर विशद कथानक का रूप दिया गया है।

जैन कथाओं के कथानक कल्पना पर आधारित भी हैं तो इतिहास पुराणादि पर भी आधारित हैं। महाभारत, श्रीमद् भागवत आदि प्रतिष्ठित जैनतर ग्रंथों का आश्रय भी निस्संकोच भाव के साथ ग्रहण किया गया है। इस प्रकार कथानक चाहे इतिहास-पुराणों से ग्रहण किए गए हों और चाहे

वे कल्पना प्रसूत हों, जैन कथा साहित्य की एक शाश्वत विशेषता यह रही है कि वे विशुद्ध भारतीय धरातल पर अवस्थित हैं। उस पर भारतीय संस्कृति का आच्छादन रहा है तथा उसके द्वारा प्रतिपादित आदर्श सदा भारतीयता की गरिमा से संपन्न रहा है।

### जैन कथाकारों का तंत्र

जैन कथाकर अपने कथ्य के विषय में सदा मुक्त और स्वाधीन रहा है। उसके मानस में किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं होता। इस दृष्टि से बौद्ध कथाओं और जैन कथाओं में एक अंतर अत्यंत स्पष्ट रूप में उद्घाटित हो जाता है। बौद्ध कथाओं को केवल साधन का रूप ही दिया गया है ; जिनके माध्यम से धार्मिक सिद्धांतों का विवेचन ही उनका परम लक्ष्य होता है। यह विवेचन ही उनका प्रमुख रहा है और कथा गौण ही गयी है। जैन कथाओं में कथा को प्रमुख, साध्य का स्वरूप मिला है। कथाकारों के लिए कथा का वस्तुपरक स्थान रहा है। वह तो अपने पात्रों, घात-प्रतिघातादि परिस्थितियों में रमकर कहानी कहता चलता है। इस दौरान उसका चित्त कथानक के बाहर किसी ऐसे तथ्य के पीछे नहीं भटकता है जिसको अप्रत्यक्ष रूप में प्रकट करने मात्र के लिए कहानी कहने का बहाना भर किया गया हो। कथा-कथन ही उसका लक्ष्य है जो किसी सिद्धांत के प्रतिपादन हेतु प्रतिबद्ध नहीं है। यही कारण है कि कहानी में किसी अन्य उद्देश्य की गंध न पाकर उसके प्रति पाठक भी समग्रता के साथ रुचिशील हो उठता है। कथा स्वरूप का निर्वाह भी इसी विशेषता के कारण भली-भांति सम्भव हो सका है।

जैन कथाएं होने से, जैनत्व का रंग उन पर न चढ़े तो साधारण अन्य कहानी न होकर इन्हें जैन कथाओं की संज्ञा क्यों कर दी जा सकती थी ? इन पर जैन दर्शन का हल्का सा पुट रहता अवश्य है किंतु उल्लेखनीय यह है कि वह पुट न तो इतना गाढ़ा चढ़ाया जाता है कि इस में निरे धर्म प्रचार का स्वरूप बढ़कर कथा स्वरूप को समाप्त कर दे। प्रायः किया यह गया है कि कहानी तो अपनी समस्त स्वच्छंदता के साथ चलती रही है अथ से इति तक, केवल संबंधित जैन दर्शन का संकेत मात्र उनमें भर दिया गया है। इन्हें कथा के माध्यम से पुण्य के सुफल और दुष्कर्म के दुष्परिणामों को स्पष्ट कर दिया गया है। इससे यह इंगित स्पष्ट मिल जाता है कि प्रस्तुत कथा जैन धर्म या जैन दर्शन के अमुक सिद्धांत के दृष्टान्त रूप में कथित है। दृष्टांत और इन जैन कथाओं में अंतर यह आभासित हो जाता है कि दृष्टांत में

पोषित सिद्धांत का कथन पूर्व में ही हो जाता है और सिद्धांत के तात्त्विक एवं स्पष्ट विवेचना के लिए एक छोटी-मोटी कथा भी कह दी जाती है। इस क्रम में कथा की स्वतंत्रता का निर्वाह नहीं हो पाता। इधर जैन कथा ही प्रमुख स्थान ग्रहण कर लेती है। अतः निष्कर्षतः ही किसी नैतिक सिद्धांत की पुष्टि हो गयी हो—ऐसा प्रतिभासित भर कर दिया गया है। इस प्रकार अप्रतिबद्ध रूप में जैन कथाएं जन साधारण के साथ स्वस्थ मनोरंजन कराने में भी समर्थ रही हैं।

### कथाकार की सफलता

इस अप्रतिबद्धता के कारण एक सुपरिणाम और भी बन गया है जो बड़ा ही महत्वपूर्ण है। अपनी इस स्वच्छंदता के कारण कथाकार प्रत्येक प्रकार की मानसिता को ग्रहण करने में सफल रहा है, जीवन की दशाएं और भावनात्मक परिस्थितियों को कथाओं में अपनापन मिला है। फलतः कथा साहित्य का दायरा फैलकर बड़ा व्यापक हो गया और वह जीवन के अंत-रिक्ष को स्पर्श करने लगा। जैन कथा साहित्य, जीवन और समाज का दर्पण बन गया है। अपनी इस व्यापक-परता के कारण जैन कथा साहित्य सर्व सामान्य की रुचि का विषय बन गया। यही तो इस कथा साहित्य की प्रक्रिया है। मनोरंजन के लक्ष्य से जन-मन को आकर्षित कर बड़े ही सहज और सरस ढंग से किसी न किसी तात्त्विक या दार्शनिक सिद्धांत को सुगम बना कर इस में प्रस्तुत कर दिया जाता है। कथा का आश्रय पाकर यह सम्प्रेषण सुगम और प्रभावपूर्ण हो जाता है।

### इनकी लोकप्रियता

जैन कथाएं लोकप्रियता की कसौटी पर उच्चतम रीति से खरी उतरी हैं। न केवल सारे राष्ट्र की रुचि इस ओर जागृत हुयी है, अपितु अंतर्राष्ट्रीय रुचि भी इस कथा साहित्य के प्रति विकसित हुई है। योरोप के अनेक प्राच्यविदों ने जैन कथा साहित्य के प्रति आंतरिक आकर्षण व्यक्त करते हुए गहन गवेषणा का कार्य किया है। ऐसे विद्वानों में टाने, हर्टल, बूलर, ल्यूमेन, तेस्सितोरी, जेकोबो आदि के नाम सम्मान के साथ लिए जाते हैं। यह भारतीय जैन साहित्य राष्ट्रीय सीमा लांघ कर विदेशों तक भी पहुंच गया है। इन तथ्यों से इस मान्यता की पुष्टि हो जाती है कि जैन कथाएं जहां एक ओर प्रबल जन रुचि से युक्त हैं, वहां दूसरी ओर उनमें जैन-धार्मिकता का संश्लेषण प्रगाढ़ता के साथ नहीं है। उनका अपना स्वतंत्र

साहित्यिक स्वरूप है, अन्यथा अन्य धार्मिक साहित्य में वे घुल-मिलकर एकाकार कदापि नहीं हो पाती।

हमारा जैन कथा साहित्य इस दृष्टि से एक विराट घरातल पर अवस्थित है। वह अखिल भारतीय संस्कृति सापेक्ष है। किसी प्रकार का सांस्कृतिक संकोच इसमें दृष्टिगोचर नहीं होता। यही कारण है कि इस कथा-साहित्य का सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक अक्षुण्ण महत्व है। जैन कथाओं में जीवन का बड़ा ही प्रभाव पूर्ण चित्र मिलता है।

**वैदिक परंपरा और जैन परंपरा में श्रीकृष्ण कथा का तुलनात्मक विवेचन**  
**वासुदेव श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण वासुदेव**

जैन एवं वैदिक परंपराओं में श्रीकृष्ण के जीवन वृत्त के स्वरूप पर्याप्त रूप से समरूप हैं, क्योंकि दोनों ही के लिए उद्गम स्रोत इतिहास ही है। यह अन्य बिंदु है कि दोनों परंपराओं में उस एक ही ऐतिहासिक वृत्त को प्रस्तुत करने के प्रयोजन भिन्न-भिन्न हैं, अतः स्वरूप वैभिन्न भी आ गया है। इस दृष्टि से एक प्रमुख असमानता यह पायी जाती है कि यद्यपि दोनों ही परंपराओं में श्रीकृष्ण वासुदेव के पुत्र हैं, किंतु जहां वैदिक परंपरा में वे वासुदेव श्रीकृष्ण हैं, वहां जैन परंपरा में वे “श्रीकृष्ण वासुदेव” हैं। सामान्यतः इन दोनों में चाहे अंतर नहीं किया जाए और दोनों का प्रयोग किसी स्थल के लिए हो सकने के योग्य प्रतीत होता है। फिर भी दोनों में मौलिक अंतर हैं। वैदिक परंपरा में “वासुदेव श्रीकृष्ण” का तात्पर्य मात्र यही है—वासुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण और इस रूप में समग्र इतिहास में श्रीकृष्ण ही एक मात्र पात्र हैं। यद्यपि वासुदेव के अन्य अनेक पुत्र थे। बलराम भी उन्हीं के पुत्र थे, किंतु वे वासुदेव के अपर नाम का वहन नहीं करते। “वासुदेव” शब्द श्री कृष्ण के पर्यायवाची रूप में ही रूढ़ और सीमित हो गया है। “वासुदेव” शब्द के प्रयोग से अकेले श्रीकृष्ण का ही परिचय प्राप्त होता है, किसी अन्य वासुदेव पुत्र का नहीं।

इसके विपरीत जैन परंपरा में जब श्रीकृष्ण को वासुदेव कहा जाता है तो इसका प्रयोजन यह है कि वे एक वासुदेव थे। यहां “वासुदेव” का अर्थ वासुदेव-पुत्र कदापि नहीं हैं। वासुदेव तो एक श्रेणी या वर्ग है। इस दृष्टि से वासुदेव एकाधिक हों—इसमें कोई अस्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती।

**नियति का काल चक्र**

जैन परंपरा में कालचक्र की एक समग्र व्यवस्था है। काल अपने प्रवाह के साथ-साथ सदा परिवर्तनशील रहता है, कभी धार्मिक प्रवृत्ति एवं

सदादर्शों का उत्थान होता चलता है और कभी उसके चरम पर पहुंचकर समय अधोमुखी होने लगता है। जैसे घड़ी की सुईयां ६ से १२ के अंको तक निरंतर उच्च से उच्चतर होती रहती हैं और तत्पश्चात् १२ से ६ तक की यात्रा में वे निम्न से निम्नतर दिशा में गमन करने लगती हैं। तात्पर्य यही है कि पतन से उन्नति की ओर और उन्नति से अपकर्ष की ओर की यह गति जगत की नियति है जो सदा निरंतरित रहा करती है। धर्मभावना भी क्रमशः विकसित होती रहती है और पुनः संकुचित होने लगती है। विकास और हास की यह अवस्था सर्पवत् कही जाती है। सर्प की पूंछ से फन की ओर आकार उत्तरोत्तर विकास का प्रतीक माना जा सकता है, और फन से पूंछ की ओर क्रमशः हास की ओर। प्रथम स्थिति को उत्सर्पिणी काल और द्वितीय को अवसर्पिणी काल कहा जाता है। उत्सर्पिणी के बाद अवसर्पिणी और अवसर्पिणी के बाद पुनः उत्सर्पिणी काल का यह अजस्र क्रम असमाप्य माना जाता है। घड़ी की सुईयां भी तो ६ से १२ तक चढ़कर १२ से ६ तक नीचे उतरती रहती हैं और पुनः ६ से १२ तक की उत्कर्ष यात्रा आरम्भ कर देती हैं। सुईयों की ये दोनों यात्राओं को जैसे ६-६ भागों में बांटा गया है, वैसे ही प्रत्येक उत्सर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल भी ६-६ खण्डों में विभक्त होता है। प्रत्येक खंड को “आरा” कहा जाता है। इन आरों की अवधि समान नहीं होती है कोई छोटा और कोई बड़ा होता है।

इस प्रकार एक काल चक्र में एक उत्सर्पिणी काल और एक अवसर्पिणी काल रहता है और कुल १२ अरक होते हैं। प्रत्येक काल चक्र के तीसरे और चौथे अरक में २४-२४ तीर्थंकर होते हैं। वर्तमान समय में जो धर्म भावना का अपकर्ष और क्षीणता दृष्टिगत होती है, इससे भी यही तथ्य संकेतित होता है कि यह अवसर्पिणी काल है। इस अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थंकरों की परंपरा समाप्त हो गयी। २४वें तीर्थंकार भगवान महावीर हुए हैं और अभी यह ५वां आरा है।

स्पष्ट है कि प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में एक-एक तीर्थंकर-परंपरा (२४ तीर्थंकर) रहती है। इसी प्रकार प्रत्येक काल में १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक काल में ६३ श्लाघनीय महापुरुष होते हैं। “त्रिषष्टिशलाका-महापुरुष” में इस अवसर्पिणी काल के इन्हीं ६३ श्लाघनीय पुरुषों के चरित वर्णित हैं। भगवान अरिष्टनेमि इस अवसर्पिणी काल के २२वें तीर्थंकार हुए हैं। इन्हीं के काल में ९वें वासुदेव श्री कृष्ण, ९वें प्रति वासुदेव जरासंध और ९वें बलदेव बलराम हुए हैं।

श्रीकृष्ण एवं वासुदेव हैं

वासुदेवों को तीर्थंकरों की भांति एक परंपरा होती है और श्रीकृष्ण इस परंपरा के ६ वासुदेवों में से एक हैं। वासुदेव इस प्रकार एक वर्ग, एक परंपरा, एक श्रेणी है, एक उपाधि है। जैन परंपरा में वासुदेव का अर्थ वासुदेव पुत्र कदापि नहीं है। निश्चित विधान है कि वासुदेव के हाथों प्रति-वासुदेव का पराभव होता है और बलदेव वासुदेव का सहायक होता है। त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र के अतिरिक्त स्थानांग, समवायांग, आवश्यक निर्युक्ति आदि में इन सभी ६३ महापुरुषों के विस्तृत परिचय के अंतर्गत उनके माता-पिता के नाम, उनके शारीरिक आकार, आयुष्यादि के विषय में विवरण मिलता है। यथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष और स्थानांग-समवायांग के अनुसार बलदेव और वासुदेव वंश मंडन-सदृश थे, वे उत्तम थे, प्रधान थे। वे ओजस्वी, तेजस्वी, बलशाली तथा शोभित शरीर वाले थे। वे कांत, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन, सुरूप, और सुखशील थे। उनके पास प्रत्येक व्यक्ति सुख रूप से पहुंच सकता है। सभी लोग उनके दर्शन के पिपासु हैं। वे महाबली हैं। वे अप्रतिहत और अपराजित हैं। शत्रु का मर्दन करने वाले और हजारों शत्रुओं का मान नष्ट करने वाले हैं। दयालु, अमत्सरी, अचपल और अचण्ड हैं। मृदु, मंजुल और मुस्कराते हुए वार्तालाप करने वाले हैं। उनकी वाणी गंभीर, मधुर और सत्य होती है। वे वात्सल्य युक्त होते हैं, और शरण योग्य होते हैं। उनके शरीर लक्षण और चिन्ह युक्त हैं तथा सर्वांग सुन्दर होता है। वे चंद्र के समान शीतल और ईर्ष्या रहित हैं। प्रकाण्ड दण्ड नीति वाले हैं। गंभीर दर्शन वाले हैं। बलदेव के ताल ध्वज और वासुदेव के गरुड ध्वज हैं। वे महान धनुष्य का टंकार करने वाले हैं। वे महान बल में समुद्र की तरह हैं। रणांग में वे दुर्धर धनुर्धर हैं। वे वीरधीर पुरुष हैं और युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने वाले हैं। वे महान कुल में पैदा हुए हैं और वज्र के भी टुकड़े कर दें—ऐसे बलवान हैं। वे सौम्य हैं, राजवंश के तिलक के समान हैं, अजित हैं, अजितरथ हैं। बलदेव हाथ में हल रखते हैं, और वासुदेव शंख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते हैं। उनके मुकुट में श्रेष्ठ, उज्ज्वल, विमल कौस्तुभ मणि होती है, कान में कुण्डल होते हैं जिससे उनका मुख शोभायमान होता है। उनको आंखें कमलसदृश होती हैं, उनकी छाती पर एकावली हार लटका रहता है। उनके श्रीवत्स का लांछन है। उनके अंगोपांग में ८०० प्रशस्त चिन्ह शोभित होते हैं। क्त्रोच पक्षी के मधुर और गंभीर शारद स्वर जैसा उनका निनाद है। बलदेव नीले रंग के और वासुदेव पीले रंग के वस्त्र पहनते हैं। वे तेजस्वी, नरसिंह,

नरपति, नरेंद्र हैं। वे नर-वृषभ हैं और देवराज इंद्र के समान हैं। राजलक्ष्मी से शोभित वे राम और केशव दोनों भाई होते हैं।

इस प्रकार के श्रीकृष्ण जैन परंपरा में अकेले श्रीकृष्ण तो हैं किंतु वे और केवल—वे ही वासुदेव नहीं हैं। श्रीकृष्ण तो ६ वासुदेवों में से एक हैं। वासुदेव की जो सामान्य भूमिका है, उससे श्रीकृष्ण का जैन परंपरा में जो स्थान है, जो व्यक्तित्व है वह भली-भांति स्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक वासुदेव की भांति श्रीकृष्ण भी त्रिखंडाधिपति हैं। उनका तीनों खण्डों पर एकछत्र आधिपत्य है। वासुदेव पद निदान-कृत होता है।

प्रत्येक वासुदेव के पूर्व प्रतिवासुदेव होता है। उसका भी तीन खण्डों पर आधिपत्य होता है। जीवन के अंतिम भाग में वह अधिकार के मद में उन्मत्त रहते लगता है और अन्यायी व अत्याचारो हो जाता है। अत्याचार को समाप्त करने के लिए वासुदेव प्रतिवासुदेव के साथ युद्ध करते हैं और उनसे प्रतिवासुदेव पराजित हो जाता है। वासुदेव के हाथों प्रतिवासुदेव का संहार होता है। प्रतिवासुदेव का हनन स्वचक्र से ही हो जाता है। प्रति-वासुदेव के त्रिखंड साम्राज्य का संपूर्ण अधिकार वासुदेव को प्राप्त हो जाता है। श्रीकृष्ण वासुदेव और जरासन्ध प्रतिवासुदेव के प्रसंग ऐसे ही घटित हुए हैं। वासुदेव महान वीर और अपराजेय होते हैं। वे ३६ युद्ध करते हैं और कभी किसी भी युद्ध में उनका पराभव नहीं होता। उनमें ३० लाख अष्टापदों की शक्ति होती है किंतु वे कभी अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करते। वासुदेव बलशाली तो होते हैं, किंतु वे उपास्य नहीं होते। तीर्थंकर ही उपास्य होते हैं और वासुदेव भी उनकी उपासना करते हैं। श्रीकृष्ण वासुदेव भी तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के परम श्रद्धालु भक्त थे। वासुदेव भौतिक दृष्टि से अपने युग के सर्व श्रेष्ठ अधिनायक होते हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में वे निदान-कृत होने के कारण चौथे गुणस्थान से आगे नहीं बढ़ पाते। जैन परंपरा में तीर्थंकरत्व सर्वोच्च आध्यात्मिक उपलब्धि मान्य रही है। श्रीकृष्ण वासुदेव रहें हैं और वासुदेव इस स्थिति तक नहीं पहुंचते। जैन धर्म में तीर्थंकर ही धर्म-प्रणेता, प्रवर्तक एवं तीर्थंकर ही उपास्य और आराध्य होते हैं।

**श्रीकृष्ण का अवतारत्व और वासुदेवत्व :**

इसके विपरीत वैदिक परंपरा में श्रीकृष्ण आराध्य हैं, उपास्य हैं, वे भगवत् धर्म के प्रवर्तक हैं। पाणिनि के आधार पर यह भी स्थिर किया



जाता है कि ईसा पूर्व ७वीं शती में वासुदेव की पूजा प्रचलित थी।<sup>१</sup> भागवत धर्म के मूल प्रवर्तक नारायण थे किंतु कालांतर में नारायण और वासुदेव को अभिन्न माना जाने लगा। महाभारत में एक स्थल पर उल्लेख किया गया है कि सात्वत धर्म या भागवत धर्म का उपदेश सर्वप्रथम वासुदेव श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया।<sup>२</sup> इससे स्पष्ट होता है कि भागवत धर्म प्रवर्तक श्रीकृष्ण और वासुदेव एक ही हैं, ये दोनों एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं।

हां, भाण्डारकर ने अवश्य ही यह मान्यता दी है कि ये दोनों पृथक्-पृथक् व्यक्ति रहे, जो आगे चलकर एक दूसरे के रूप में देखे-जाने लग गये। उनकी मान्यता तो यह भी है कि भागवत धर्म में स्वीकृत श्रीकृष्ण की विविधता को लिया हुआ जो स्वरूप है, वह किसी एक ही व्यक्ति का नहीं अपितु श्रीकृष्ण नामधारी एकाधिक व्यक्तियों के गुणों का सम्मिलित रूप है, किंतु इस मत में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। श्रीकृष्ण एक ही है और उन्हीं का व्यक्तित्व भागवत में चित्रित हुआ है। इस प्रसंग पर “गीता रहस्य” में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने भी अपना निष्कर्ष इस प्रकार प्रकट किया है—“हमारे मत में श्रीकृष्ण चार-पांच नहीं हुए, वे केवल एक ही ऐतिहासिक महापुरुष थे।<sup>३</sup> भांडारकर की इस धारणा पीछे तिलक ने कल्पना तत्त्व का आधार ही माना है, कोई ठोस और प्रामाणिक आधार नहीं।

इतना निश्चित हो गया है कि वैदिक परंपरा में नारायण द्वारा प्रवर्तित भागवत धर्म का प्रतिपादन करने वाले श्रीकृष्ण और वासुदेव दो भिन्न व्यक्ति नहीं अपितु वे एक ही एवं अभिन्न हैं। नारायण अथवा विष्णु के अवतार ही वासुदेव कृष्ण हैं। ये ही श्रीकृष्ण नारायण या विष्णु के अवतार रूप में पृथ्वीतल पर उत्पन्न हुए। भागवत धर्म को लोक-जीवन के अधिक निकट लाने की आवश्यकता के कारण ही इस अवतारवाद का अस्तित्व बना। धर्म के कोरे दर्शन के रूप से निकालकर जन आस्था का विषय बनाना आवश्यक था और ब्रह्म के निराकार रूप को आकार देना अनिवार्य समझा जाने लगा था। इसके लिए परिचय-सामीप्य की

१. डा. भाण्डारकर (वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म) तथा हेमचंद्रराय चौधरी (अलि हिस्ट्री ऑफ वैष्णव सेक्ट) ने पाणिनी के इस सूत्र को तदर्थ आधार माना है—  
वासुदेवाज्जुनाभ्यां वुनं

२. महाभारत : शान्तिपर्व

३. गीतारहस्य : लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक।

अनिवार्यता को देखते हुए अवतारवाद सहायक सिद्ध होने लगा। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी<sup>४</sup> ने भी “महाकवि सूरदास में इसी तर्क को अवतारवाद के आधार रूप में मान्यता दी है। रामायण काल तक इस अवतारवाद को प्रतिष्ठा मिलने लगी थी।

#### अवतारवाद

‘ब्रह्मा का अवतार मानव धर्म के रक्षणार्थ, दुष्टों के दलनार्थ एवं भक्तों के रंजनार्थ होता है’ ऐसा स्वीकार किया जाने लगा और अवतारवाद का विकास होने लगा। स्वयं गीता के अनुसार ही ईश्वर अजर और अमर है और अपनी इस अंतहीनता को माया से संकुचित कर वह शरीर धारण कर लोक में अवतरित होता है। ईश्वर का इस प्रकार मानव रूप में अवतरित होना, मानव शरीर धारण कर जन्म लेना ही अवतार की परिकल्पना का बुनियादी और सीधा-सादा तात्पर्य है। मनुष्य तो कभी ईश्वर नहीं बन सकता, किंतु ईश्वर अवश्य ही मनुष्य बन सकता है। और, इस अवतरण का प्रयोजन जगत में व्याप्त अधर्मन्धिकार का विनाशन धर्म लोक का प्रसारण करना है। साधुओं की रक्षा करना और दुष्टों का विनाश कर धर्म की पुनः स्थापना करना अवतारवाद की भूमिका है—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थान-मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दूष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि युगे-युगे ॥<sup>५</sup>

पृथ्वी के दुःख से दुःखी होकर देवताओं और ब्रह्मा जी ने पृथ्वी का भार उतारने की प्रार्थना भगवान विष्णु से की। भगवान विष्णु ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की और पृथ्वी पर मानव रूप में जन्मे। राक्षसों का नाश करने के लिए भगवान विष्णु ने देवको-वासुदेव के यहां भी कृष्ण रूप में जन्म लिया। महाभारत के आदिपर्व ६३/६८ के इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि वैदिक परंपरा में श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार हैं। लोक-संग्रह एवं लोक-रंजन के रूप के लिए विष्णु ने श्रीकृष्ण रूप में शरीर धारण किया और श्रीकृष्ण व्यापक लोकमंगल के लक्ष्य की पूर्ति ही करते रहे।<sup>६</sup>

४. महाकवि सूरदास—आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी।

५. श्रीमद् भगवद् गीता।

६. महाभारत—आदि पर्व ६३/६८।

### जैन परंपरा में उत्तारवाद

इसके विपरीत जैन परंपरा में श्रीकृष्ण को वासुदेव रूप में माना गया है। उसमें उनके अवतार होने की मान्यता प्राप्त नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि जैन अवतारवाद को ही स्वीकार नहीं करता। तीर्थंकर को भी अवतार नहीं माना गया है। जैन दर्शन में तो मनुष्य ही सर्वोपरि महत्ता संपन्न है। वही संमार्गानुसरण से शीर्षस्थ स्थान पर पहुंच जाता है। ईश्वर जैसी परिकल्पना भी जैन-चिंतन का विषय कभी नहीं रही। मानव सत्ता से ऊपर किसी का अस्तित्व स्वीकार्य नहीं समझा गया है। ऐसी स्थिति में जैन-विश्वास अवतारवाद के पक्ष में नहीं अपितु उत्तारवाद के पक्ष में है। ईश्वर की स्थिति तो निर्विकार है। अवतार लेकर उसे विकारों की ओर अग्रसर होना पड़ता है। निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति को चुनना पड़ता है। पुण्य और पाप में उसे पुण्य का मार्ग अपनाना होता है।

यह महानता उसकी आंतरिक शक्तियों का विकास है

इसके विपरीत जैन-परंपरा उत्कर्ष की परंपरा होने से जैन साधक विकार से निर्विकार की ओर, प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर और आसक्ति से विरक्ति की ओर यात्रा करता है। यह पवित्र यात्रा है, इसी को जैन परंपरा में उत्तार कहते हैं। इस उत्तार में मानव नीचे से ऊपर की ओर जाता है। वैदिक परंपरा में ईश्वर ऊपर से नीचे की ओर जाता है, तो जैन परंपरा में इसका ठीक उल्टा है। जैन परंपरा मनुष्य को विकृति से संस्कृति की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। यही नहीं संस्कृति से भी प्रकृति की ओर बढ़ाती है। मनुष्य जन्म और स्वभाव से ही राग-द्वेष-ग्रस्त प्राणी होता है। इस विकृति से क्रमशः मुक्त होकर वही विकारहीन अनासक्त और निर्लिप्त रूप ग्रहण कर लेता है। यह संस्कृति का विकास है। पूर्ण रूप से कर्म-मुक्त होकर वह शुद्ध सिद्ध अवस्था ग्रहण कर लेता है। यही तो प्रकृति है। यह सिद्धावस्था वह दशा है जिसमें वह अनंतकाल के लिए अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन अनंत सुख और अनंत शक्ति में लीन हो जाता है। जैन धर्म इसी परमावस्था की प्रेरणा सामान्य जन को देता है, उसे इस हेतु मार्ग और साधन सुझाता है और मार्ग पर गतिमान होने की शक्ति भी देता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य चाहे कितना ही विषय-वासना में लिप्त हो वह उच्चतम स्थिति में पहुंचने की क्षमता रखता है। तीर्थंकर गण जो महानतम पुरुषों की गणना में आते हैं, वे भी आरंभिक जीवन में अतिसाधारण से सांसारिक मनुष्य रहे। उनका उत्तार हुआ। तीर्थंकरों को ईश्वर का अव-

तार नहीं माना जाता। उनकी महानता, उनकी साधना की उपलब्धि उनकी अर्जित संपदा है। अवतारों की भांति बिना उपक्रम के ईश्वर से वह उनमें उतर आयी हो—ऐसा नहीं है। यह महानता मनुष्य के आंतरिक शक्तियों के विकास का परिणाम है, वह किसी की अनुकंपा का नहीं। अतः तीर्थ-कर की महानता आत्माधारित है। 'मनुष्य स्वयं ही अपना कल्याण कर सकता है' यह संदेश देने वाली जैन परंपरा किसी भी स्थिति में अवतारवाद की समर्थक नहीं हो सकती। वह मनुष्य को अपने कल्याण के लिए किसी अवतार पर आश्रित रहने के भ्रम में ग्रस्त नहीं करती।

जैन परंपरा में श्रीकृष्ण को अवतार मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वे शक्तिशाली हैं, शीलवान हैं, सुन्दर हैं, दुष्कर्मियों के संहारक और सज्जनों के त्राता भी हैं। त्रिखण्डेश्वर और गरिमाभय हैं किंतु हैं वे मनुष्य। ईश्वर के अंश रूप में भी श्रीकृष्ण को जैन परंपरा ने स्वीकार नहीं किया है। इस रूप में उनके किसी दिव्य और अलौकिक व्यवहार को भी मान्य नहीं किया गया है। वैदिक और जैन परंपरा में श्रीकृष्ण के स्वरूप संबंधी यह असमानता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वैदिक परंपरा में जहां वे अवतार हैं वहां जैन परंपरानुसार वे श्लाघनीय पुरुष, मनुष्य मात्र हैं। उनमें कोई अलौकिकता या दिव्यता नहीं। उनका उत्कर्ष इतना ही है, जितना मानव-मुलभ स्वाभाविक और आत्मप्रयास-जन्य रूप में प्रत्येक मनुष्य के लिए संभव है। वे अपने समय के वासुदेव थे—बस इतना ही। जैन श्रीकृष्ण कथा का उपयोग जैन दर्शनों व मतों के साधन के रूप में जैन साहित्यकारों ने अपनाया जो पर्याप्त रूप से सफल रहा। जैन श्रीकृष्ण कथा द्वारा जैन धर्म के मूल तत्त्वों और आदर्शों का अनुमोदन और पुष्टि हो सके इसीलिए उसे इस रूप में ढालना आवश्यक था। कम-से-कम उसका विपरीत रूप तो श्रीकृष्ण कथा में ग्राह्य हो ही नहीं सकता था। जैन धर्म के आदर्शानुरूप ही श्रीकृष्ण को जैन कथा में अवतार नहीं स्वीकार किया गया है। जैन कथाओं के माध्यम से श्रीकृष्ण का जो स्वरूप उभरता है वह अवतारी पुरुष का न होकर पराक्रमी और शक्तिशाली राजा का रूप है। वे द्वारका सहित समस्त दक्षिण भारत के भूपति थे, एक मात्र अधिपति थे, राजाओं में सर्वाग्र पूज्य थे। पृथ्वी पर वे देवराज इन्द्र की भांति सुशोभित थे। वे कंस, शिशुपाल, जरासंध जैसे शक्तिशाली किंतु अन्यायी और अनाचारी शासकों के संहारक और अत्यधिक धर्मानुरागी थे। ईश्वर के अवतार नहीं थे। जैन परंपरा में उनका वासुदेवत्व ही प्रतिष्ठित हुआ है।

साहित्यकार प्रछन्न दार्शनिक और चिंतक हुआ करता है। वह अपने आसपास के जगत और जीवन को सूक्ष्मता के साथ देखता-समझता और प्रख्यात करता है। यदि चिंतनशीलता को सचेतनता का एक प्रमुख लक्षण माना जाए तो इस दृष्टि से साहित्यकार को सर्वाधिक चैतन्य युक्त मानना अयुक्ति-युक्त नहीं होगा। वह जिन परिस्थितियों में स्वयं जीता और अन्य का जीवन यापन देखता है तो उनसे कुछ अनुभूतियां बटोरता चलता है। इनके संग्रह की प्रवृत्ति उसके स्वभाव का एक सहज अंग बन जाती है। इसके समानांतर ही उसकी एक दुर्निवार्य प्रवृत्ति और हो जाती है, जिसका संबंध इन बटोरी हुई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति से है। उसका मन तब तक एक विशिष्ट उद्विग्नता की स्थिति में रहता है, जब तक वह अपने अनुभूत तथ्य को व्यक्त कर अन्य जन के मानस तक नहीं पहुंचा देता। इस संवेदनशील अभिव्यक्ति को ही कोई अग्राह्य मानकर उपेक्षित रख दे—तो इसकी उसे साहित्यकार को सर्वथा स्वतंत्रता है। यही नहीं, अपने उद्देश्य की पूर्ति के पक्ष में यदि कथानक में यत्किंचित् परिवर्तन भी नितांत आवश्यक माने तो रचनाकार के नाते वह ऐसा कर सकता है और करता भी आया है। वह इतिहासकार नहीं है और उसे इतिहासकार के रूप में देखने-परखने एवं उसकी रचना में ऐतिहासिक प्रामाणिकता की खोज करने के प्रयत्न भी समीचीन नहीं कहे जा सकते। इतिहास के स्थान पर इतिहास है और साहित्य के स्थान पर साहित्य—यह विचार ही युक्तियुक्त कहा जा सकता है।

अस्तु, पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानक पर आधारित रचनाएं युग की आवश्यकताओं के अनुरूप न्यूनाधिक रूप में इतिहास-भिन्न हो सकती हैं। इतिहासानुमोदन उनके लिए अनिवार्य शर्त नहीं होती। यही कारण है कि पौराणिक और ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित रचनाएं भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न रूपों में मिलती हैं। क्योंकि, उस युग की अपेक्षाएं और मांग अन्य युग से भिन्न होती हैं। यही क्यों, किसी एक ही युग की दो रचनाओं में भी किसी एक ही ऐतिहासिक कथानक के भिन्न रूप हो सकते हैं। कारण यह है कि प्रत्येक रचनाकार अपने पृथक् उद्देश्य की पूर्ति के पक्ष में किसी एक ही कथानक का प्रयोग करता है। ऐसी स्थिति में एक रचनाकार एक प्रकार का परिवर्तन कर देता है तो दूसरा रचनाकार अन्य प्रकार का। दोनों मौलिक कथानक से भी भिन्न हो जाते हैं और परस्पर भिन्न भी।

श्रीकृष्ण चरित भारतीय वाङ्मय का एक अति महत्वपूर्ण पक्ष रहा है। प्रत्येक युग, प्रत्येक भाषा और प्रत्येक सांस्कृतिक धारा में श्रीकृष्ण साहित्य को अपनत्व मिला है। लोक-जीवन, लोक-संस्कृति एवं लोक-साहित्य भी श्रीकृष्णमय रहा है। जैन साहित्य भी इसका अपवाद कैसे हो सकता है? श्रीकृष्ण जीवन को जैन साहित्यकारों ने भी अपनाया और जैन साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि भी हुई।

निश्चय ही साहित्य इतिहास नहीं हो सकता, दोनों के कार्य क्षेत्र ही भिन्न-भिन्न हैं। साहित्य अपने कार्य क्षेत्र—“वर्तमान” में ही रमे रहने के लिए है। वह सदा सजीव, सामयिक और आज के जीवन को उन्नत करने वाला होगा। उसे बीते काल की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं मिलता। आज को संवारने के लिए अपने लक्ष्य में उसे कल का भी कोई रंग उपयुक्त लगता है तो वह उसे प्रयुक्त कर लेता है। मात्र कथानक ही ऐतिहासिक होता है, कथ्य नहीं। वह जो कुछ कहता है—वह आज की बात है, जिसे कल की बात के ब्याज से कह दिया है।

इस दृष्टि से ऐतिहासिक घटना का यथावत् वर्णन करने को साहित्य-कार प्रतिबद्ध नहीं होता। अक्षरशः अविकल रूप में ऐतिहासिक वृत्तान्त का प्रस्तुतीकरण साहित्यकार के लिए आवश्यक नहीं होता। वह जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐतिहासिक कथानक का आश्रय ले रहा है उस निमित्त जितना भाग आवश्यक है, उतना वह अपना लेता है और कथानक के शेष भाग को छोड़ देता है। जैन साहित्यकारों ने भी यही किया।

इस कोटि की साहित्यिक रचनाओं को छोड़कर इस वर्ग के रचना-कारों ने अपने-अपने युग की धार्मिक (जैन) अपेक्षाओं, जैन विचार-धाराओं एवं आस्थाओं के अनुरूप ही श्रीकृष्ण चरित को अपनाया। अतः इस कथाधारा द्वारा वैदिक परंपरा में प्रचलित कृष्ण कथा के रूप से भिन्न आकार ग्रहण किया जाना स्वाभाविक ही है। इसी प्रकार जैन साहित्य-कारों ने अपने अलग-अलग दृष्टिकोणों के साथ और अलग-अलग उद्देश्यों के साथ श्रीकृष्ण चरित को अपनाया है। अतः जैन साहित्य में ही श्रीकृष्ण कथा के परिवर्तित रूप मिल जाते हैं। मौलिक रूप में तो प्रमुख तथ्य वैदिक और जैन परंपरा में समान ही रूप से वर्णित मिलते हैं, किंतु दृष्टिकोण की भिन्नता से श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व को दोनों परंपराओं में तनिक भिन्न ही रूप-रंग मिल गया है। इसी प्रकार जैन परंपरा में श्रीकृष्ण चरित प्रायः सभी ग्रन्थों में एक ही सामान्य धरातल पर अवस्थित होते हुए भी उन में

पार्थक्य किए जाने योग्य अंतर भी है। इनका उल्लेख मैंने यथास्थान कर दिया है।

### मेरे निष्कर्ष

- (१) मेरा यह अनुशीलन इस महत्वपूर्ण तथ्य को स्थापित करता है कि जैन साहित्य परंपरा में श्रीकृष्ण का विवेचन एक अपने ढंग का और अनुपमेय है, पूर्ण रूप से स्वतंत्र है, संपूर्णतः मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित है तथा इसका साहित्यिक रूप भी स्लाघनीय है।
- (२) दूसरा तथ्य यह प्रस्तुत होता है कि इस जैन परंपरा के श्रीकृष्ण साहित्य में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व अवतारी पुरुष न होकर ६वें वासुदेव हैं और समस्त जैन परंपरा के भिन्न-भिन्न श्रीकृष्ण साहित्य में पार्थक्य होते हुए भी एक सामान्य धरातल में यह उपस्थित है।
- (३) अपने विषय की शोधानुकूलता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए अपने विषय प्रवेश में मैंने इन कारणों पर विचार किया है, जिनसे मैं इस अनुशीलन कार्य में प्रवृत्त हुआ। इसमें एक तथ्य श्रीकृष्ण की लोकप्रियता का है। उनका महत्व जैन साहित्य में अवतारवादी न होकर ६वें वसुदेव का है।
- (४) श्रीकृष्ण के साथ नेमिनाथ का पारिवारिक रूप से चचेरे भाई का संबंध है और जैन परंपरा में श्रीकृष्ण की ही तरह नेमिनाथ तीर्थंकर होने से भी महत्वपूर्ण हैं।
- (५) मैंने अपने अनुशीलन का विभाजन भी विषय की दृष्टि से प्रस्तुत कर अपने शोध की दिशाएं और सीमाएं निर्धारित कर दी हैं।
- (६) द्वितीय अध्याय में प्राकृत भाषा में उपलब्ध जैन-आगम श्रीकृष्ण साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए मेरे सामने कुछ निष्कर्ष भी आए जो अंत में मैंने दे दिये हैं। एक तरह से इसमें मेरे अध्ययन के सात सूत्र हाथ लगे हैं। वे सात प्राकृत ग्रंथों के अध्ययन से उपलब्ध हुए। ये सप्त सोपान महत्वपूर्ण इसलिए हैं कि इनके बिना इस अध्ययन का उपक्रम करना संभव नहीं था।
- (७) तृतीय अध्याय में प्राकृत भाषा के आगमेतर जैन—श्रीकृष्ण

साहित्य को लेकर मैंने थोड़े विस्तृत रूप में उसका आलोडन किया है। इसमें जैन कथाओं के माध्यम से कृष्ण-जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंगों की जानकारी को तथ्य रूप में मैंने ग्रहण किया है। इससे जैन परंपरा में श्रीकृष्ण साहित्य को समझने और समझाने में सहायता उपलब्ध हो गयी है जो समीचीन ही है।

- (८) चतुर्थ अध्याय मेरे शोधार्थ अध्ययन की रीढ़ की हड्डी कही जा सकती है। इसमें विस्तृत रूप से संस्कृत भाषा में उपलब्ध जैन श्रीकृष्ण साहित्य के चरित महाकाव्य, पुराण महाकाव्य, नेमि-विषयक काव्य और पुराणों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया। इस अध्ययन से प्रद्युम्न का चरित्र उभरकर सामने आया।
- (९) अर्जुन और श्रीकृष्ण की मैत्री के आयाम उपलब्ध हो गये।
- (१०) पांडव और श्रीकृष्ण के संबंधों पर जैन दृष्टि से प्रकाश डालने का नया साधन प्राप्त हो गया। जो अपने आप में महत्वपूर्ण माना जा सकता है।
- (११) नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के संबंध जैन तात्त्विक दृष्टि से सुलझे हुए रूप में उपस्थित हो गये।
- (१२) राजीमति के चरित्र की जानकारी जैन श्रीकृष्ण साहित्य के करुण वीतरागी रस की जानकारी प्रदान करती है। काव्याध्ययन करने से जैन तत्त्वज्ञान को पारंपरिकता मेरे हृदय पटल पर अंकित होती गयी है। यह भी एक उपलब्धि मानी जा सकती है।
- (१३) जैन साहित्यकारों की ये संस्कृत कृतियां अन्य जैनैतर संस्कृत साहित्यकारों के साथ एक स्वस्थ और संतुलित स्पर्धा है जो श्रेष्ठ मानी जा सकती है। ऐसी मेरी विनम्र प्रणति है।
- (१४) पंचम अध्याय में अपभ्रंश में उपलब्ध जैन श्रीकृष्ण साहित्य का अनुशीलन मैंने किया। इससे श्रीकृष्ण के समग्र रूप से जैन धरातल पर अध्ययन करने की एक भूमि प्राप्त हो गयी।
- (१५) षष्ठ अध्याय में मैंने अपने अब तक के अनुशीलन के आधार पर ससंदर्भ समग्र जैन श्रीकृष्ण कथा का आलोडन प्रस्तुत कर



दिया है। यह अनुशीलन का अन्यतम निष्कर्ष और तथ्य है जो अपने आप में एक नूतन प्रयत्न है।

- (१६) सप्तम और अष्टम अध्यायों में राजस्थानी से अनुप्राणित वृज और आदिकालीन हिंदी भाषा के जैन श्रीकृष्ण रास, पुराण तथा स्फुट और मुक्तक गेय काव्यों का मैंने अनुशीलन प्रस्तुत किया है। इनका जैन परंपरा के श्रीकृष्ण साहित्य के अध्ययन में ऐतिहासिक महत्व है। यह दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। प्रथम जैन साहित्य के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से और दूसरा हिन्दी साहित्य के अध्ययन में इसकी देन की दृष्टि से। ये दोनों तथ्य-परक उपलब्धियां कम महत्वपूर्ण नहीं वरन् अत्यंत महत्व की हैं। स्मरण रहे कि इनमें श्रीकृष्ण चरित्र का आधार वही मेरा श्रीकृष्ण-अध्ययन ही है, जिसे मैंने षष्ठ अध्याय में उपस्थित कर दिया था।
- (१७) गजसुकुमाल का चरित्र नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के सम्बन्धों को स्पष्ट करता है। इसके साथ प्रद्युम्न और गजसुकुमाल के द्वारा जैन तत्त्वों का ग्रहण करना जैन दर्शन के लक्ष्य को उपस्थित कर देता है।
- (१८) गजसुकुमाल का चरित्र एक उज्ज्वल चरित्र है। यह जैन वीतराग रस का एक श्रेष्ठ आदर्श उपस्थित कर देता है जो एक अन्यतम उपलब्धि है।
- (१९) जैन मुक्तक काव्य गेयता के साथ करुण विप्रलंभ का एक ऐसा बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिसको परिणति जैन वीतराग रस की पुष्टि करती है। इससे राजीमति का चरित्र उज्ज्वल रूप में सामने आता है। सांसारिक असारता से ऊपर उठकर वह साधक को एक उच्च आध्यात्मिक धरातल प्रस्तुत कर देती है जो असामान्य और असाधारण है।
- (२०) लोकसाहित्य और लोक-संस्कृति को स्पर्श करने वाली ये कृतियां एक सांस्कृतिक अक्षुण्ण लोकप्रियता का क्षेत्र उपस्थित कर देती हैं।
- (२१) मेरे इस अध्ययन से एक नहीं तो अनेक प्रदेश अध्ययन और अनुशीलन के क्षेत्र में नये आयाम उपलब्ध कर देते हैं। इनमें से कुछ का निर्देश कर मैं अपना उपसंहार करूंगा। यथा—

- (१) श्रीकृष्ण के इस जैन साहित्य का अन्य परंपरा के साथ तुलनात्मक अध्ययन ।
- (२) जैन श्रीकृष्ण साहित्य में उपलब्ध दार्शनिकता और अन्य जैनेतर श्रीकृष्ण साहित्य की दार्शनिकता का तुलनात्मक अध्ययन ।

इस प्रकार और भी निर्देश दिये जा सकते हैं, पर मैं इतना ही कह कर अपना यह अनुशीलन समाप्त करता हूं। मेरी यह विनम्र धारणा है कि अध्येताओं का ध्यान यह अनुशीलन आकृष्ट कर सकेगा ।

---

## परिशिष्ट-१

### वंश-परिचय तालिकाएँ

#### हरिवंश

दसवें तीर्थंकर भगवान् शीतलनाथ के निर्वाण के पश्चात् और ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ के पूर्व हरिवंश की स्थापना हुई।<sup>१</sup> उस समय वत्सदेश में कौशंबी नामक नगरी थी, वहाँ का राजा सुमुख था। उसने एक दिन वीरक नामक व्यक्ति की पत्नी वनमाला देखी। वनमाला का रूप अत्यन्त सुन्दर था, वह उस पर मुग्ध हो गया। उसने वनमाला को राजमहलों में बुला लिया। पत्नी के विरह में वीरक अर्द्ध विक्षिप्त हो गया। वनमाला राजमहलों में आनन्द क्रीड़ा करने लगी।

एक दिन राजा सुमुख प्रिया वनमाला के साथ वन विहार को गया। वहाँ पर वीरक की दयनीय अवस्था देखकर अपने कुकृत्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा। मैंने कितना भयंकर दुष्कृत्य किया है। मेरे ही कारण वीरक की यह अवस्था हुई है। वनमाला को भी अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने उस समय सरल और भद्र परिणामों के कारण मानव के आयु का बंधन किया। सहसा आकाश से विद्युत् गिरने से दोनों का प्राणान्त हो गया और वे हरिवर्ष नामक भोगभूमि में युगलिक के रूप में उत्पन्न हुए।

कुछ समय के पश्चात् वीरक भी मरकर बालतप के कारण सौधर्म कल्प में किल्बिषी देव बना। विभंग ज्ञान से उसने देखा कि मेरा शत्रु 'हरि' अपनी प्रिया 'हरिणी' के साथ अनपवर्त्य आयु से उत्पन्न होकर आनन्द क्रीड़ा कर रहा है।

वह क्रुद्ध होकर विचार करने लगा कि क्यों न मैं इन दुष्टों को निष्ठुरतापूर्वक कुचल कर चूर्ण कर दूँ? मेरा अपकार करके भी ये भोगभूमि में उत्पन्न हुए हैं। किन्तु, मैं इस प्रकार इन्हें मार नहीं सकता; क्योंकि युगलिक निश्चित रूप से मरकर देव ही बनते हैं। भविष्य में ये यहाँ से मरकर देव न बनें और ये अपार दुःख भोगें ऐसा मुझे प्रयत्न करना चाहिए।

उसने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा भरत क्षेत्र में चंपानगरी का नरेश अभी-अभी काल धर्म को प्राप्त हुआ है, अतः इन्हें वहाँ पहुँचा दूँ; क्योंकि एक दिन भी

आसक्ति पूर्वक किया गया राज्य दुर्गति का कारण है, फिर लम्बे समय की तो बात ही क्या है ?

देव ने अपनी देवशक्ति से हरि-युगल की करोड़ पूर्व की आयु का एक लाख वर्ष में अपवर्तन किया तथा अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) को भी घटाकर १०० धनुष की कर दी ।

देव उनको उठा कर ले गया और नागरिकों को सम्बोधित करके कहा— आप राजा के लिए चिन्तित क्यों हैं ? मैं तुम्हारे लिए परम कष्टाकार राजा लाया हूँ । नागरिकों ने 'हरि' का राज्याभिषेक किया । सप्त व्यसन के सेवन करने के कारण वे नरक गति में उत्पन्न हुए ।

युगलिक नरक की गति में नहीं जाते, पर वे गये । इसलिए यह घटना जैन साहित्य में आश्चर्य के रूप में उद्भूत की गई है । राजा हरि की जो सन्तान हुई वह हरिवंश के नाम से विश्रुत हुई । हरि के ६ पुत्र थे—

१. पृथ्वीपति
२. महागिरि
३. हिमगिरि
४. वसुगिरि
५. नरगिरि
६. इन्द्रगिरि

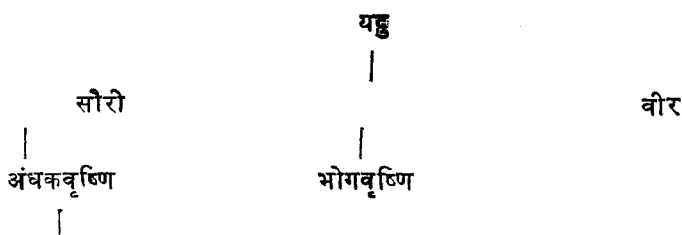
अनेक राजाओं के पश्चात् २०वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत भी इसी वंश में हुए । हरिवंशपुराण के अनुसार यदुवंश का उद्भव हरिवंश में हुआ है ।

भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण हरिवंश में उत्पन्न हुए थे ।

**श्रीकृष्ण वंश परिचय**

श्रीकृष्ण के जैन व वैदिक परम्परा के अनुसार वंश परिचय इस प्रकार है<sup>१</sup>—

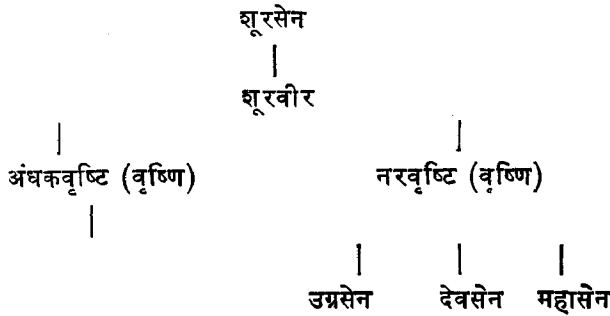
(१) श्वेताम्बर जैन पम्परा



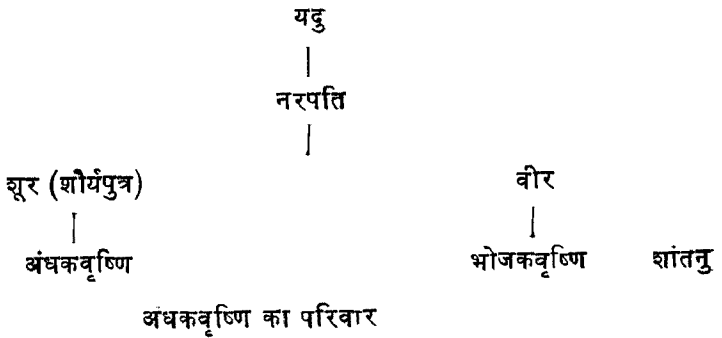
१. जैन धर्म का मौलिक इतिहास

१. समुद्रविजय के पुत्र — अरिष्टनेमि, रथनेमि, सत्यनेमि, दृढनेमि
२. अक्षोभ
३. स्तिमित
४. सागर
५. हिमवान्
६. अचल
७. धरण
८. पूर
९. अभिचन्द
१०. वसुदेव के पुत्र — श्रीकृष्ण, बलराम

(२) दिगंबर उत्तरपुराण के अनुसार यदुवंश परिचय<sup>२</sup>



१. समुद्रविजय
२. अक्षोभ
३. स्तिमित
४. सागर
५. हिमवान
६. अचल
७. धारण
८. अभिनन्दन
९. वसुदेव
१. कुन्ती दो पुत्रियाँ
२. माद्री

(३) दिगम्बर हरिवंश<sup>१</sup> के अनुसार यादववंश परिचय

## पुत्र

## पौत्र

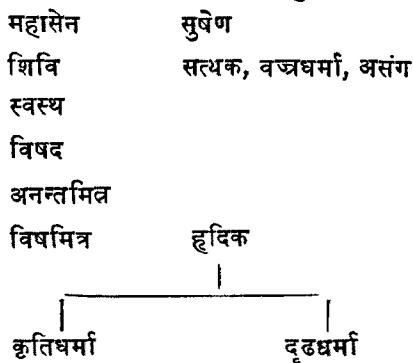
१. समद्रविजय —महासेन, सत्यनेमि, दृढनेमि, भ. अरिष्टनेमि, सुनेमि, जयसेन, महीजय, सुफल्गु, तेजसेन, मय, मेघ, शिवचन्द्र, गीतम आदि ।
२. अक्षोम्य —उद्भव, अम्भोधि, जलधि, वामदेव, दृढव्रत,
३. स्तिमित —ऊर्मिमान, वसुमान वीर, पाताल, स्थिर,
४. हिमवान —विद्युत्प्रभ, माल्यवान, गंधमादन,
५. विजय —निष्कम्प, अकंप, बलि, युगन्त, केशरिन्, अलम्बुष
६. अचल —मलय, सहन, गिरि, शैल, नग, अचल,
७. धारण —वासुकि, धनंजय, कर्कोटक, शतमुख, विश्वरूप
८. पूरण —दुष्पूर, दुर्मुख, दुर्दश, दुर्धर,
९. अभिचन्द्र —चन्द्र, शशांक, चन्द्राभ, शशिन, सोम, अमृतप्रभ
१०. वसुदेव —[इनकी सन्तान अगले चार्ट ४ में देखें ।]
१. कुन्ती, २. माद्री—इन दोनों का पाणिग्रहण पाण्डुराजा से हुआ ।

## (४) भोजकवृष्णि का परिवार

१. उग्रसेन                      कंस, देवकी, धर, गुणधर, युक्तिक, दुधर, सागर, चन्द्र
२. महासेन
३. देवसेन

१. हरिवंशपुराण—जिनसेन—अ. १८; जैनेन्द्रसिद्धान्तकोश भाग १ से उद्धृत

शांतनु का परिवार



(५) हरिवंशपुराण में वसुदेव की २३ रानियां व उनकी संतानें

रानियां                      सन्तान

१. विजयसेना—अक्रूर, क्रूर
२. श्यामा—ज्वलन, अग्निवेष,
३. गन्धर्वसेना—वायुवेग, अमितगति, महेन्द्रगिरि
४. प्रभावती—दारू, वृद्धार्थ, दारुक,
५. नीलयशा—सिंह, मतंगज,
६. सोमश्री—नारद, मरुदेव,
७. मित्रश्री—सुमित्र
८. कपिला—कपिल
९. पद्मावती—पद्म, पदक
१०. अश्वसेना—अश्वसेन
११. पौण्ड्रा—पौण्ड्र
१२. रत्नवती—रत्नगर्भ, सुगर्भ
१३. सोमदत्तपुत्री—चन्द्रकान्त, शशिप्रभ,
१४. वेगवती—वेगवान, वायुवेग
१५. मदनवेगा—दृढमुष्टि, अनावृष्टि, हिममुष्टि,
१६. बंधुमति—बन्धुसेन, सिंहसेन
१७. प्रियंगुसुन्दरी—शिलायुध
१८. प्रभावती—गान्धार, पिगल
१९. जरा—जरत्कुमार, बाह्यिक
२०. अवन्ती—सुमुख, दुर्मुख, महारथ

२१. रोहिणी—बलदेव, सारण, विदुरथ,

२२. बालचन्द्रा—वज्रदंष्ट्र, अमितप्रभ

२३. देवकी—नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न, जितशत्रु, श्रीकृष्ण

### वसुदेव के पुत्र

### पुत्रों की सन्तानें

जरत्कुमार—वसुध्वज, सुवसु, भीमवर्मा, कापिष्ठ, अजातशत्रु, शत्रुसेन, जितारि, जितशत्रु आदि ।

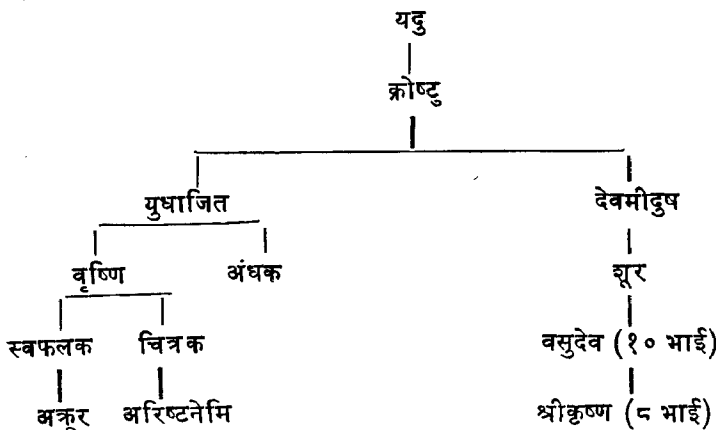
बलदेव —उन्मुण्ड, निषध, प्रकृतिद्युति, चारुदत्त, ध्रुव, पीठ, शकृन्दमन, श्रीध्वज, नन्दन, धीमान, दशरथ, देवनन्द, बिद्रभ, शान्ततु, पृथु, शतघनु, नरदेव, महाधनु, रोमशैल्य,

श्रीकृष्ण —भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, सुभानुक, बृहद्रथ, अग्निशिख, विष्णुसंजय, अकम्पन, महासेन, धीर, गंभीर, उदधि, गौतम, वसुधर्मा, प्रसेनजित, सूर्य, चन्द्रवर्मा, चारुकृष्ण, सुचारु, देवदत्त, भरत, शंख, प्रद्युम्न, शाम्ब, इत्यादि ।<sup>१</sup>

### (६) वैदिक परम्परा विष्णुपुराण के अनुसार उग्रसेन<sup>२</sup> की सन्तानें—

कंस, न्यग्रोध, सुनाम, आनकाह, शंकु, समूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि, संतुष्टिमान  
चारपुत्रियाँ—कंसा, कंसावती, सुतनु, और राष्ट्रमालिका  
सुतनु का ही दूसरा नाम राजीमती है ।

### (७) विष्णुपुराण के अनुसार यदुवंश



१. जैनेन्द्रसिद्धांतकोष, भा० १ पृ० ३५८ से उद्धृत

२. हरिवंश पर्व-२, अध्याय ३७, श्लोक १२ और ४४ तथा हरिवंश पर्व २, अध्याय ३८, श्लोक १ से ५२ तक



वैदिक हरिवंश<sup>१</sup> के अनुसार यादववंश परिचय

१. यदु
२. माघव
३. सव्वत
४. भीम
५. अन्धक
६. रैवत
७. विश्वगर्भ
८. वसु
९. वसुदेव
१०. श्रीकृष्ण

महाभारत<sup>२</sup> के अनुसार यादववंश परिचय

१. यदु
२. क्रोष्टा
३. वृजिनिवान
४. उषंगु
५. चित्तरथ
६. शूर (लघुप्रभ)
७. वसुदेव
८. श्रीकृष्ण

महाभारत द्रोणपर्व<sup>३</sup> के अनुसार यादववंश परम्परा

१. यदु
२. दो या उससे अधिक राजाओं का नामोल्लेख नहीं हुआ है।
३. देवमोह
४. शूर
५. वसुदेव
६. श्रीकृष्ण

- 
१. हरिवंश पर्व २, अध्याय ३७, श्लोक १२ और ४४ तथा हरिवंश पर्व २, अध्याय ३८, श्लोक १ से ५२ तक
  २. महाभारत अनुशासन पर्व अ० १४७, श्लोक २७-३२
  ३. महाभारत द्रोण पर्व अ० १४४ श्लोक ६-७

वैदिक परंपरा के पुराणों में इनकी वंशावली भिन्न-भिन्न प्रकार से दी गयी है।

पूर्ण विस्तृत वर्णन के लिए देखें—पारजीटर एन्साएण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्राईडीशन, पृ० १०४-१०७।

### जरासन्ध के पुत्र

१. कालयवन् <sup>१</sup>	२. सहदेव <sup>२</sup>	३. द्रुमसेन
४. द्रुम	५. जलकेतु	६. चित्रकेतु
७. धनुर्धर	८. महीजय	९. भानु
१०. कांचनरथ	११. दुधर	१२. गंधमादन
१३. सिहांक	१४. चित्रमाली	१५. महीपाली
१६. बृहद्धवज	१७. सुवीर	१८. आदित्यनाग
१९. सत्यसत्त्व	२०. प्रदर्शन	२१. धनपाल
२२. शतानीक	२३. महाशुक्र	२४. महावसु
२५. वीर	२६. गंगदत्त	२७. प्रवर
२८. पार्थिव	२९. चित्रांगद	३०. वसुगिरि
३१. श्रीमान्	३२. सिंहकटि	३३. स्फुट
३४. मेघनाद	३५. महानाद	३६. सिहनाद
३७. वसुधवज	३८. वज्रनाभ	३९. महाबाहु
४०. जितशत्रु	४१. पुरन्दर	४२. अजित
४३. अजितशत्रु	४४. देवानन्द	४५. शद्रुत
४६. मन्दर	४७. हिमवान	४८. विद्युत्केतु
४९. माली	५०. कर्कोटक	५१. हृषीकेश
५२. देवदत्त	५३. धनंजय	५४. सगर
५५. स्वर्णबाहु	५६. मद्यवान	५७. अच्युत
५८. दुर्जय	५९. दुर्मुख	६०. वामुकि
६१. कम्बल	६२. त्रिशिरस्	६३. धारण

१. त्रिषष्टि के अनुसार जो अग्नि में जलकर मरा।

२. जिसे कृष्ण ने मगध का चतुर्थ हिस्से का राज्य दिया था।

६४. माल्यवान	६५. सम्भव	६६. महापद्म
६७. महासेन	६८. महानाग	६९. महाजय
७०. वासत्र	७१. वरुण	७२. शतानीक
७३. भास्कर	७४. गरुत्मान	७५. वेणुदरी
७६. वायुवेग	७७. शशिप्रभ	७८. वरुण
७९. आदित्यधर्मा	८०. विष्णु स्वामी	८१. सहस्रदिक्
८२. केतुमाली	८३. महामाली	८४. चन्द्रदेव
८५. बृहद्बलि	८६. सहस्ररश्मि	८७. अचिष्मान्

समग्र सूची जैन ग्रन्थों के आधार पर दी गयी है ।

---

## परिशिष्ट-२

### राधा और राजीमती

राधा ऐतिहासिक पात्र है अथवा नहीं ?

लोक साहित्य एवं लौकिक साहित्य में श्रीकृष्ण का राधा के साथ इतना घनिष्ठ संबंध प्रतिपादित मिलता है कि राधा के अभाव में श्रीकृष्ण का नाम भी अपूर्ण प्रतीत होता है। (राधाकृष्ण) किंतु यह एक विचारणीय प्रश्न होता है कि क्या वास्तव में इस नाम की स्त्री श्रीकृष्ण के जीवन में आयी और रही भी थी ? क्या राधा ऐतिहासिक पात्र है ?

इतना स्पष्ट है कि जैन आगम और आगमेतर ग्रंथों में कहीं भी राधा नाम की किसी स्त्री की कोई चर्चा नहीं मिलती। जैन और वैदिक ग्रंथों में श्रीकृष्ण की प्रमुख रानियों के नाम गिनाए गये हैं उनमें राधा जैसा कोई नाम नहीं है, किन्तु गवेषणा के मार्ग पर केवल इस तथ्य के कारण ही गतिहीन हो जाना औचित्यपूर्ण और समीचीन प्रतीत नहीं होता। हिंदी साहित्य के आसन्न-भूतकालीन अतिमहत्वपूर्ण ब्रज-साहित्य श्रीकृष्ण के साथ-साथ ऐसा राधामय हो गया है कि उस आधार पर भी राधा के अस्तित्व को हठात् ही सुगमता से नकारा नहीं जा सकता। ब्रज-भाषा के साहित्य से हमारी संस्कृति भी दूर तक प्रभावित हुई और यही संस्कृति आगे से आगे प्रबल और गहन होती गयी है। भारतीय संस्कृति में राधा और श्रीकृष्ण का अनन्य संबंध है। ये दोनों नाम परस्पर ऐसे अन्योन्याश्रित हो गये हैं कि एक के अभाव में अन्य के नाम की कल्पना भी नहीं की जा सकती। काव्य, चित्र, मूर्तिकला आदि सभी क्षेत्रों में श्रीकृष्ण के साथ अभिन्न रूप में राधा की उपस्थिति मिलती है। इनमें प्रमुखता निश्चित रूप से श्रीकृष्ण को ही प्राप्त हुई है। तथापि कतिपय ग्रंथों में राधा की महिमा और गरिमा अपेक्षा कृत अधिक भी आँकी गयी है। राधा के माता-पिता, जन्मस्थान एवं अन्य स्वजन-परिजनों के नामोल्लेख भी हैं। ऐसी स्थिति में अविचारित रूप में ही राधा को अनैतिहासिक या कल्पनाप्रसूत पात्र मान लेना युक्तियुक्त नहीं हो सकता। कम से कम इतना तो है ही कि यह व्यापक विचार की अपेक्षा रखने वाला महत्वपूर्ण प्रश्न है। श्रीकृष्ण की लीलाओं का आधार भी राधा ही रही है। और, यह महत्वपूर्ण बिंदु है कि कृष्ण साहित्य का अधिकांश भाग इसी लीला गान

से धन्य हो उठा है एवं माधुरी भक्ति के लिए राधाकृष्ण की प्रेमलीला ही प्रमुख आधार शिला रूप में दिखाई देती है।

इसके विपरीत अनेक प्राचीन कृष्ण चरित्र ग्रंथों में राधा का उल्लेख भी नहीं मिलता। महाभारत, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराणादि ग्रंथ इस रूप में उल्लेखनीय हैं। राधाभक्त विद्वानों की धारणा है कि 'राधा' एक अति प्राचीन नाम है। उनका कथन है कि वेदों से लेकर आज के अर्वाचीन साहित्य तक के सुदीर्घ कालीन साहित्य में राधा वर्णित है। संभवतः यह वर्णन कहीं विपुल हो गया हो और कहीं विरल रह गया हो, किंतु रहा अवश्य है। ऐसे विद्वानों ने अपने अनुसन्धान के आधार पर स्वविचार के समर्थन में अनेक संदर्भ एवं प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। ऋग्वेद में राधा का नाम मिलता है (१।३०।४० एवं ३।४१।१०)। इसी प्रकार सामवेद (१६।५७।३७) और अथर्ववेद (२०।४५।२) में भी "राधा" शब्द का प्रयोग हुआ है। बृहद् ब्रह्मसंहिता में राधा और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं माना गया है।

यः कृष्णः सापि राधा या राधा कृष्ण एव सः।

जो कृष्ण है सो ही राधा है, जो राधा है सोई कृष्ण है। सनत्कुमार संहिता में भी इसी प्रकार राधा और कृष्ण में अभिन्नत्व स्थापित किया गया है।

राधाकृष्णेति संज्ञाद्वयं राधिकाकृष्णमंगलम्।

कृष्णोपनिषद्<sup>१</sup> एवं कठवल्ली उपनिषद् में भी राधा के रूप सौंदर्य का वर्णन मिलता है। राधिका महिमा का प्रतिपादन भी राधिकोपनिषद् में मिलता है। पद्म-पुराण में भी राधा का नाम आता है और उसकी महत्ता को प्रतिपादित किया गया है।<sup>२</sup> शिवपुराण<sup>३</sup> में ब्रह्माजी की घोषणा है कि राधा साक्षात् गोलोक में निवास करने वाली गुप्त स्नेह में निबद्ध हुयी कृष्ण की पत्नी होगी। नारदपुराण में 'राधिका नाथ' संबोधन के साथ नारद जी ने श्रीकृष्ण की स्तुति की है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में प्रमुखतः राधा-कृष्ण की लीलायें ही वर्णित की गयी हैं। मत्स्यपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, भविष्यपुराण आदि पुराण ग्रंथों में भी राधा का उल्लेख उपलब्ध होता है। देवी भागवत में राधा को श्रीकृष्ण के वामांग से उत्पन्न हुई बताया गया है।

१. वामाङ्गसंहिता देवी राधावृन्दावनेश्वरी।

सुन्दरी नागरी गौरी कृष्णहृद्मृगमंजरी ॥

२. देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परमदेवता।

सर्वलक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी ॥५३॥

३. कलावती सुता राधा, साक्षात् गोलोकवामिनी।

गुप्तस्नेहनिबद्धा सा कृष्णपत्नी भविष्यति ॥४०॥ शिवपुराण

### भागवत में राधा नहीं है

इन सारे उल्लेखों एवं वर्णनों के बावजूद एक गंभीर प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि फिर श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख क्यों नहीं हुआ ? इस ग्रन्थरत्न में श्रीकृष्ण का प्रामाणिक एवं सविस्तार वर्णन हुआ है । ऐसे ग्रन्थ में राधाकृष्ण चित्रण न होना, राधा के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह अंकित नहीं कर देता, बल्कि उसकी सदिग्धता को रेखांकित भी कर देता है ।

श्रीमद्भागवत में राधा की अनुपस्थिति से यह अनुमान स्वस्थ व सुदृढ़ बन जाता है कि राधा की प्राचीनता मान्य नहीं हो सकती । इसका अर्थ यह भी स्पष्टतः आभासित होता है कि संभवतः राधा एक काल्पनिक पात्र है और इसकी कल्पना ईसा-पूर्व की कदापि नहीं है । एक प्रयोजन विशेष है कि केवल हठात् इसकी कल्पना प्रतीक रूप में कर ली गयी है । इस बात का वजन ज्यों-ज्यों समस्या पर विचार किया जाए त्यों-त्यों बढ़ता चला जाता है ।

### क्या राधा आभीर बाला है ?

राधा की ऐतिहासिकता का प्रश्न कुछ ऐसा महत्वपूर्ण रहा है कि इस पर प्रत्येक युग में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से चिंतन, मनन और अध्ययन किया है । सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का मत भी विचारणीय है । डा. भण्डारकर भी राधा की प्राचीनता को अस्वीकार करते हुए आती मान्यता को इस आश्रय के साथ व्यक्त करते हैं कि गोसाव, गोय और गोपियों की भांति राधा का संबंध भी उस विदेशी आभीर जाति से था जो आब्रजित होकर भारत में आयी और यहीं बस गयी । आर्यों के साथ उनका संपर्क धीरे-धीरे बढ़ने लगा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान होने लगा । तभी उनकी राधा विशय कथा कृष्ण कथा में सम्मिलित हो गयी ।

उक्त मान्यता के विवेचन में जो महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है वह यह नहीं है कि क्या राधा आभीर बाला थी ? यह तो सर्व स्वीकार्य हो भी सकता है, किंतु प्रश्न तो यह है कि क्या आभीर जाति विदेशी थी ? इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि आभीर जाति विदेशी नहीं थी, और न ही इतिहास के किसी काल में वह भारत में आब्रजित हुयी । पुराणकाल से भी पूर्व उनकी भारतीय जनता में सम्मिलित धारणा के प्रमाण अनेक उल्लेखों से मिलते हैं । डा. मुन्शीराम शर्मा का कथन है कि—“इस देश के किसी भी साहित्यिक ग्रन्थ में आभीरों को बाहर से आया हुआ नहीं कहा गया है ।”<sup>1</sup> विष्णु-पुराण में आभीर वंश का उल्लेख है, वायुपुराण में इस जाति की विस्तृत वंशावली भी दी गयी है, आभीर स्वयं अपने आपको यदुवंशी आहुक की संतति मानते हैं ।

१. भारतीय साधना और सूर साहित्य, ले० डा० मुन्शीराम शर्मा, पृ० १६४

महाभारत में यदुवंश के साथ आभीर वंश का घनिष्ठ संबंध बताया गया है और उल्लेख है कि श्रीकृष्ण की एक लाख नारायणी सेना मुख्यतः आभीर क्षत्रियों से निर्मित हुई थी और महाभारत के युद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़ी थी।

### राधा का स्रोत

डा० शशिमूषणदास गुप्त ने अपने बंगला भाषा में रचित शोध ग्रन्थ “राधार क्रम विकास” में राधा विषयक अनुसंधान में उपलब्ध अनेक महत्वपूर्ण मंतव्य प्रस्तुत किए हैं।<sup>१</sup> सामान्यतः उनके निष्कर्ष से किस सीमा तक सहमति स्थिर हो सकती है ? यह अन्य प्रश्न है, किंतु उनसे विचार का आधार अवश्य बनता है। डा० दास गुप्त का एक मत तो यह है कि राधावाद का बीज भारतीय शक्तिवाद में है। जो पहले शक्ति रूप में थी, वही कालान्तर में परम प्रेममयी राधा के रूप में परिणत हो गयी। क्या विचार दृष्टि से और क्या भाषा की दृष्टि से किसी भी दृष्टि से शैव-शाक्त तंत्रोक्त शक्तिवाद और वैष्णव शास्त्रोक्त शक्तिवाद में कोई विशेष पार्थक्य करना संभव नहीं प्रतीत होता। सम जातीय विचार और भाव ही मानों भिन्न-भिन्न वातावरण में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट हुए हैं।

डा० दास गुप्त का मत राधापूजक संप्रदायों एवं उनकी मान्यताओं के समझने में कितना सहायक हो सकता है, यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है, किंतु उनकी यह धारणा सर्वथा उपयुक्त है कि साहित्य का अवलंबन करके ही राधा का आविर्भाव और क्रम प्रसार हुआ है।<sup>२</sup>

उक्त आधार को समीचीन मानकर चला जाये तो राधा का सर्व प्रथम उल्लेख “गाहासत्तसई” में मिलता है जिसका संकलन (अन्तःसाक्ष्य के अनुसार) विक्रमी संवत् के आरंभ में हुआ प्रतीत होता है। इसके अनुसार राधा की कल्पना इसके पूर्व तो थी ही नहीं। कुछ विद्वानों का कथन यह भी है कि इस ग्रंथ में मौलिक रूप से राधा के उल्लेख नहीं हैं। छठी शताब्दी में ये अंश इस ग्रंथ में जोड़ दिए गए थे। अस्तु, यह प्रायः निश्चित है कि ५ वीं शताब्दी के पश्चात् ही राधा अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त कर सकी है। यही वह काल था जिसमें राधा का स्वरूप न केवल साहित्यिक रचनाओं में अपितु कला के अन्यान्य क्षेत्रों की कृतियों में भी स्थान प्राप्त करने लगा। राधाकृष्ण की एक युगल मूर्ति बंगाल के पहाडपुर में उपलब्ध हुई है, जो इस प्रकार की प्राचीनतम प्रतिमा मानी जाती है और इसका निर्माण-काल सातवीं-आठवीं शताब्दी का माना जाता है।

१. राधार क्रम विकास : डा० शशिमूषण दास गुप्त।

२.

”

”

### पूर्ण भारत में राधा की लोकप्रियता

ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि भारत के किसी विशेष भाषा में ही राधा के प्रति मान्यता और भक्ति भावना उदित एवं विकसित हुई हो। इस आलोक से तो लगभग सारा देश ही एक साथ जगमगा उठा था। दक्षिण में अलवार जाति के लोगों द्वारा माधुर्य भक्ति भावना का प्रादुर्भाव माना जाता है। ये भक्त गण ५ वीं से ८वीं शती के मध्य हुए थे। आभीर का तमिल में शाब्दिक अर्थ होता है—गोप। और, इस क्षेत्र में राधा को आभीरों की देवी माना जाता है। इस देवी का तमिल नाम “नाप्पिन्नाई” मिलता है।

राधा संबंधी विभिन्न अनुसंधानों से निष्कर्षतः यह अनुमान होता है कि मथुरा के निकटवर्ती जिस गोप-बस्ती में श्रीकृष्ण का बाल्यकाल व्यतीत हुआ, उसके समीप निवास करने वाली किसी अहीर बालिका से उनका परिचय हो गया। परिचय घनिष्ठता और स्नेह प्रीति में परिणत हो गया तथा उस अनन्य प्रेम का आदर्श आभीर जाति में प्रचलित हो गया होगा एवं पीढ़ी दर पीढ़ी उस प्रेम कहानी को कहा सुना जाता रहा। यह प्रेम संबंध आभीर जाति के लिए एक धरोहर हो गया हो ऐसा संभव प्रतीत होता है। इसी प्रकार इस जाति में राधा ने किसी युग में प्रेम की देवी का गौरव प्राप्त कर लिया और श्रीकृष्ण बालदेवता के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

राधा और कृष्ण के प्रेमगीत पहले लोक भाषा में प्रचलित हुए और तब क्रमशः उन्हें संस्कृत में स्थान मिलने लगा। जब धार्मिक क्षेत्र में विष्णु की शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ तो विष्णु के अवतार रूप में श्रीकृष्ण और उनकी शक्ति के रूप में राधा का चित्रण पुराणादि ग्रंथों में होने लगा। श्रीकृष्णोपासक संप्रदायों की प्रबलता के साथ-साथ राधा का महत्व भी उत्तरोत्तर प्रबल होता गया। इस प्रकार राधा लोकजीवन और लोकमान्यताओं में ही शताब्दियों तक बनी रही और उसका परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप ही आगे चलकर साहित्य में उभरा। यही कारण है कि राधा का संबंध लोकजीवन, संस्कृति, साहित्य एवं कलाओं से जितना प्राचीन रहा, उतना इतिहास से नहीं रहा। ब्रह्मवैवर्तपुराण और गरुड संहिता में राधाकृष्ण की लीलाएँ विस्तार पूर्वक वर्णित मिलती हैं। ब्रजभाषा का काव्य तो इसका अनूठा कोष ही है। श्रीकृष्णराधा की लीलाओं के गान से ब्रज भाषा के माधुर्य और क्षमता में भी अद्भुत अभिवृद्धि हुई है। अभिव्यक्ति के लिए लीलागान जैसा सर्वोच्च विषय क्षेत्र पाकर यह भाषा स्वयं कृतार्थ एवं धन्य हो उठी है।

### राधा के स्वरूप की सहज प्रक्रिया

राधा के स्वरूप विकास की यह प्रक्रिया अतीव सहज और प्राकृत लगती है।



अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार जब लोक मान्यता और लोक जीवन में ही राधा के स्वरूप का प्रादुर्भाव हुआ होगा, तभी वहाँ से सदियों के पश्चात् वह साहित्य और पुराणों में आया हो तो कतिपय वैदिक ग्रंथों में उसका उल्लेख क्यों कर नहीं हुआ होगा ? पर राधा का कोई उल्लेख ऐसा नहीं मिलता । जैसा कि पहले ही वर्णित हो चुका है कि श्रीकृष्ण का अधिकतम विस्तृत जीवन चरित्र श्रीमद्भागवत में उपलब्ध होता है । इस ग्रंथरत्न में राधा का उल्लेख ही नहीं है । यदि राधा का उल्लेख इसी राधा के अर्थ में अन्य वेदादि ग्रंथों में हुआ हो तो श्रीमद्भागवत में उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी । इन अन्यान्य वेदादि ग्रंथों में उल्लिखित राधा का प्रयोग कदाचित् अन्यार्थ में ही हुआ होगा ।

उक्त धारणा के समर्थन में डॉ० हरवंशलाल की मान्यता विशेषतः उल्लेखनीय है कि यद्यपि पौराणिक पण्डित राधा का संबंध वेदों से जोड़ते हैं, किंतु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में श्रीकृष्ण की प्रेमिका के रूप में उसे वेदों तक घसीटना असंगत ही लगता है । गोपाल कृष्ण की कथाओं से परिपूर्ण भागवत, हरिवंशपुराण और विष्णुपुराणादि ग्रंथों में राधा का अभाव अनेक प्रकार के संदेहों को जन्म देता है ।<sup>१</sup>

फिर अन्य प्राचीन ग्रंथों में राधा के प्रयोग का कोई इतर प्रयोजन तो नहीं है, इस अनुमान की पुष्टि और एक दिशा का संकेत पं० बलदेव उपाध्याय से मिलता है । उनका मत है कि राध तथा राधा दोनों शब्दों की उत्पत्ति 'राध वृद्धौ' धातु से है । इसमें आ उपसर्ग जुड़ने पर आराधयति धातुपद बन जाता है । फलतः इन दोनों शब्दों का समान अर्थ है—आराधना, अर्चना, अर्वा । राधा इस प्रकार वैदिक राधः या राधा का व्यक्तिकरण है । राधा पवित्र तथा पूर्णतम आराधना का प्रतीक है । आराधना की उदात्तता उसके प्रेमपूर्ण होने में हैं । इस प्रकार राधा शब्द के साथ प्रेम की प्रचुरता का, भक्ति की विपुलता का, भाव की गहनीयता का संबंध कालांतर में जुड़ता गया और धीरे-धीरे राधा विशाल प्रेम की प्रतिमा के रूप में साहित्य और धर्म में प्रतिष्ठित हो गयी ।<sup>२</sup>

समग्र विचार दोहन से निष्कर्ष यही प्राप्त होता है कि राधा के रूप में जिस पात्र के साथ हमारा मानसिक परिचय है, वह ऐतिहासिक नहीं है । यह स्वरूप मात्र कल्पना-प्रसूत है । परवर्ती कवियों द्वारा यह कल्पना कर ली गयी है और बाद के कवियों द्वारा वह कल्पना इस प्रचुरता के साथ अपनायी और पुष्ट की जाती रही कि

१. सूर और उनका साहित्य—डॉ० हरवंशलाल शर्मा, पृ० २६५

२. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० ३१

इसमें एक सत्याभास की प्रतीति होने लगी। राधा एक प्रतीक है जो इस रूप में प्रतिष्ठित हो गयी है।

### राजीमति : एक विरहिणी जैन वीतरागी रस की

श्राविका और उच्चतम आध्यात्मिक धरातल का उज्ज्वल एवं देदीप्यमान चरित्र—अरिष्टनेमि की पूर्वभव की साधिन और पत्नी राजीमति अपने पूर्व भवों में रत्नवती और चित्रगति, अपराजित और प्रीतिमति के रूप में पति-पत्नी थे। आचार्य जिनसेन के अनुसार अपराजित अनुत्तरविमान में बाईस सागर की स्थिति वाला अहमिन्द्र देव बना<sup>१</sup>। वही महाराजा समुद्रविजय की पत्नी शिवादेवी की कोख से अरिष्टनेमि के रूप में पैदा हुआ। यशोमती का जीव राजा उग्रसेन की कन्या राजीमती के रूप में पैदा हुई।

जब वह बड़ी हुई तो एक बार श्रीकृष्ण ने अरिष्टनेमि से कहा—“कुमार ऋषभ आदि अनेक तीर्थंकर भी गृहस्थाश्रम में दीक्षित हुए थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम का भोग किया था और परिणत वय में दीक्षित हुए थे। उन्होंने भी मोक्ष प्राप्त कर लिया था। तुम भी ऐसा ही करो।” नियति की प्रबलता जानकर अरिष्टनेमि ने उनकी बात स्वीकार की। श्रीकृष्ण ने भोजकुल के राजा उग्रसेन से राजीमती की याचना अरिष्टनेमि के लिए की। वह सर्व लक्षणों से संपन्न, विद्युत् और सौदामिनी के समान दीप्तिमान राजकन्या थी।<sup>२</sup> राजीमती के पिता उग्रसेन ने श्रीकृष्ण की बात मान ली और श्रीकृष्ण से कहा, यदि कुमार यहाँ आयें तो मैं अपनी राजकन्या उन्हें व्याह दूँ।

### विवाहपूर्व तैयारी

बात तय हुई। विवाह के पूर्व समस्त कार्य संपन्न हुए। मंगलदीप जलाए गये। विवाह का दिन भी आया। वाजे बजाये गये। खुशी के गीत गाये जाने लगे। राजीमती अलंकृत हुई। पर होनी कुछ और ही थी।

राजीमती ने देखा बारात आ रही है। दिव्य आभूषण पहने हुए, दिव्य वस्त्र परिधान किये हुए, मदोन्मत्त गंधहस्ती पर आरूढ़ होकर दशार्ह चक्र से चारों ओर घिरे हुए चतुरंगिणी सेना के साथ वे अरिष्टनेमि आ रहे हैं। राजीमती ने अपने भावी पति को देखा। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। उस युग में क्षत्रियों में मांसाहार का प्रचलन था। उग्रसेन ने बारातियों के भोजनार्थ सैंकड़ों पशु-पक्षी एकत्रित किए थे। उनका करुण क्रन्दन अरिष्टनेमि ने सुना। भगवान ने पूछताछ की। सारथी ने बताया कि ये सारे

१. हरिवंशपुराण—३४:१५०; पृ० ४४० आचार्य जिनसेन।

२. अहसा सायरकन्ना सुसीला चारु-पेहिणी।

सव्वलक्खण संपन्ना, विज्जु सोदामणिप्पभा ॥७॥

मूक और निरीह प्राणी बारातियों के भोजनार्थ रखे गये हैं। अरिष्टनेमि का हृदय दया से द्रवित हुआ। वे तोरण से वापिस लौट गये। श्रोकृष्ण ने उन्हें समझाया पर वे न माने।

### राजीमती का दुःख

यह सब जानकर राजीमती के चेहरे की गुलाबी खुशियाँ गायब हो गयीं। उसे अतीव दुःख हुआ। उसने कहा—विवाह की बाह्य रीति रस्म भले ही न हुई हो किन्तु अंतरंग हृदय से मैंने उन्हें वर लिया है। अब मैं आजन्म उन्हीं स्वामी की उपासना करूँगी। माता-पिता ने उसे बहुत समझाया, पर वह न मानी।

राजीमती को सखियों ने बहुत समझाया। उसके आँसू पोंछे और कहा, राजुल, तुम बहुत भोली हो। जो तुम्हें नहीं चाहता उसके लिए क्यों आँसू बहा रही हो जिसके पास नारी के कोमल हृदय को परखने की वृत्ति नहीं—अन्तःकरण नहीं—जो दारुण वेदना को नहीं पहचान सका ऐसे निरीह हृदय वाले पर तुम अपना दिल क्यों लुटाती हो? वे कायर थे इसीलिए जीव दया का बहाना बना कर बिना विवाह किये चल दिये।

राजीमती अपने प्रेम में दृढ़ थी। उसने सखियों को फटकारा। तुम क्या जानो वे कैसे करुणावतार थे! जिसने अपने समस्त सुखों को पशुओं की करुण पुकार पर त्याग दिया वे कितने बीर हैं! उनको कायर कहते तुम को लज्जा क्यों न आई? तुम सब मुझे अकेली छोड़कर चली जाओ। सखियों ने पुनः उसे समझाया। इस पर राजीमती ने पुनः डाँटा और कहा—चुप रहो। मुंह से ऐसी-वैसी बातें न निकालो। अरिष्टनेमि मेरे प्रियतम हैं। मैं उनका हृदय से वरण कर चुकी हूँ। पागल मैं नहीं तुम सब हो। मैं क्षत्रिय बाला हूँ। एक ही बार वह अपना जीवन साथी चुनती है। मैंने भी वैसा ही तय किया है। अब जो उनकी राह होगी वही मेरी होगी।

### प्रेममूर्ति राजीमती

प्रेममूर्ति राजीमती अरिष्टनेमि की अपलक प्रतीक्षा करती रही। वह नित्य सोचती रहती—भगवान एक-न-एक दिन अवश्य मेरी पुकार सुनेंगे। किन्तु, उसकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। एक सालभर उसके अन्तर्मानस में अनेक संकल्प डूबते-उतरते रहे। इस अन्तर्व्यथा को लेकर अनेक जैन कवियों ने बारहमासे लिखे हैं। राजीमती के माध्यम से इस विधा को कंठाभरण और लिखित रचना के रूप में ज्ञात और अज्ञात जैन कवियों ने अपनाया।

यह वियोग शृंगार वर्णन अनूठा और हृदयग्राही है। यह गेय और लोक-गीत का रूप पकड़ चुका है। एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है “जो न होते नेम राजीमती तो क्या करते जैन यति”। राजीमती की उपासना देह की नहीं देही की है। इसमें भौतिक

वासना नहीं है बल्कि आध्यात्मिक स्तर की उदात्त भावना है जो संयम पर आधारित है। अरिष्टनेमि ने जिस कठोर साधना को अपनाया उसको राजीमती ने भी अपनाया और वह अरिष्टनेमि से पूर्व ही मुक्त हो जाती है।

### रथनेमि और राजीमती

राजीमती के रूप पर अरिष्टनेमि का सहोदर रथनेमि आसक्त था। वह उसके पास नित्य नये उपहार भेजता। सरलहृदया राजीमती उसकी कुटिल बात न समझ सकी। इन उपहारों को वह अरिष्टनेमि के ही उपहार समझती रही। पर, एक दिन एकान्त में रथनेमि ने अपनी अभिलाषा व्यक्त की। जब राजीमती ने यह सुना तो वह सारा रहस्य समझ गयी। उसे समझाने के लिए उसने सुगन्धित पयःपान किया और उसके वमन के लिए दवा भी ले ली। जब वमन हुआ तो उसे एक स्वर्णपात्र में लेकर रथनेमि को देकर कहा “लीजिए, इसे पान कीजिए” तो रथनेमि ने कहा, क्या मैं कुत्ता हूँ? वमन का पान इनपान नहीं करता—कुत्ता करता है। राजीमती ने उत्तर दिया, “मैं अरिष्टनेमि द्वारा वमन की हुई हूँ। फिर तुम क्यों मुग्ध होकर मेरी इच्छा कर रहे हो? क्या तुम्हारा विवेक नष्ट हो गया है? जो वमन की हुई चीज की इच्छा करता है उसे मर जाना चाहिए। लगता है तुम्हारा विवेक नष्ट हो गया है।” राजीमती की इस फटकार ने काम किया। राजीमती दीक्षाभिमुख होकर तप और संयम करने लगी। राजीमती ने अनेक महिलाओं के साथ दीक्षा ले ली। पर, एक दिन की घटना है—बादल गरज रहे थे। बिजलियाँ कौंध रही थीं। रैवतक पर्वत पर साध्वी महासती राजीमती अन्य साध्वी सहित चढ़ रही थी। अचानक वृष्टि शुरू हो गयी। साध्वियों का झुंड बिखर गया। अपने दल से बिछुड़ी हुई राजीमती ने वर्षा से बचने के लिए एक अंधेरी गुफा का आश्रय लिया। इस गुफा के एकान्त स्थान को देखकर राजीमती ने अपने गीले वस्त्र उतारकर फैला दिये। रथनेमि ने भी प्रव्रज्या ली थी। वे भी इसी गुफा में ध्यानमग्न थे। अचानक बिजली चमकी। राजीमती को अकेली और निर्वस्त्र देखकर उसका मन विचलित हो गया। राजीमती ने भी जब उसे देखा तब वह अपने अंगों का गोपन कर जमीन पर बैठ गयी। रथनेमि उसको मनाने लगा। उसने कहा—“तुम्हारे बिना मैं शरीर धारण नहीं कर सकता। मेरी मनोकामना तुम पूर्ण करो। फिर हम दोनों संयम ग्रहण कर लेंगे। राजीमती ने पुनः फटकारकर कहा—“श्रमण होकर भी तुम भोगलीन होने की इच्छा करते हो। वमन की हुई विषवस्तु खाकर तुम जीवित रहना चाहते हो? तुम चाहे नल-कुबेर या साक्षात् इन्द्र के समान क्यों न हो, मैं तुम्हारी इच्छा नहीं करती। तुम्हारे लिये मृत्यु को वरण कर लेना ही श्रेयस्कर है।” साध्वी राजीमती के इन वचनों को सुनकर रथनेमि का मन स्थिर हो गया। राजीमती

भी केवली और मुक्त हो गयी । रथनेमि भगवान के पास गये और सब बताया । अन्त में तपस्या कर वे मोक्षगामी बने ।

वैदिक साहित्य में जो स्थान राधा-कृष्ण का है वैसा ही स्थान जैन साहित्य में अरिष्टनेमि और राजीमती का है । मैंने परिशिष्ट-२ में इसके पूर्व राधा पर विवेचन दिया है । राधा आत्मादिनी शक्ति और श्रीकृष्ण की प्रेम देवी है । पर, राजीमती, विरहिणी होकर भी साध्वी है और अतुलनीय संयम की मूर्ति है : इसलिए बेजोड़ और अनुपम है । इन दोनों की तुलना अपने-अपने क्षेत्र में अतुलनीय है ।

---

## परिशिष्ट-३

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. अन्तकृतदशा सूत्र, सं०—युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी ।  
प्र०—आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, सन् १९८१
२. अरस्तू का काव्य शास्त्र, अनुवादक—डा० नगेन्द्र  
प्र०—हिंदी अनुसंधान परिषद, दिल्ली, वि० सं० १९१४
३. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, ले०—डा० बीरेन्द्र श्रीवास्तव ।
४. अपभ्रंश कथाकाव्य एवं हिंदी प्रेमाख्यान, ले०—प्रेमचन्द जैन  
प्र०—सोहनलाल जैन धर्मप्रचारक समिति, अमृतसर, सन १९७२
५. अपभ्रंश साहित्य, ले०—प्रो० हरिवंश कोछड़  
प्र०—भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, वि० सं० १०१३
६. आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना, ले०—डा० पुस्तूलाल शूक्ल
७. आदि पुराण में प्रतिपादित भारत, ले०—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री  
प्र०—वर्णी ग्रंथमाला, काशी ।
८. आदि पुराण, ले०—आचार्य जिनसेन  
प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सन् १९६३
९. इतिहास प्रवेश, ले०—जयचन्द्र विद्यालंकार  
प्र०—सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, सन् १९४१
१०. इण्डियन फिलासफी, ले०—डा० राधाकृष्णन्
११. उत्तराध्ययन सूत्र, सं०—राजेन्द्र मुनि  
प्र०—आगम प्रकाशन समिति, व्यावर सन् १९८४

१२. उत्तरपुराण, (हस्तलिखित प्रति)

लिपिकार—खुशालचन्द काला

१३. उत्तरपुराण, प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५४

१४. उपदेशमाला प्रकरण

प्र०—ऋषभ देव केशरीमल, संस्था इन्दौर, १९२६

१५. काव्यमाला (४६), सं०—शिवदत्त शर्मा

प्र०—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९०५

१६. करकंडु चरित्र, सं०—हीरालाल जैन

प्रथम सं०—जैन सीरीज, कारंजा, १९३४

द्वितीय सं०—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९६४

१७. कृष्ण मेरी दृष्टि में, ले०—भगवान श्री रजनीश

प्र०—जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई-६

१८. कण्हचरित, ले०—देवेन्द्र सूरि

प्र०—केशरीमल संस्था, रतलाम, १९३०

१९. काव्य में रहस्यवाद, ले०—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

प्र०—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९८३

२०. कृष्ण-लावणी, मुनि नन्दलाल शिष्य

२१. कुमारपाल पडिबोह, संपादक—मुनि जिन विजय जी

प्रकाशक—ओरिएण्टल गायकवाड़ सीरीज, बड़ौदा, १९२०

गुजराती अनुवाद—आत्मानन्द सभा, बम्बई

२२. गजसुकुमाल रास (हस्तलिखित), अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर

२३. गजसुकुमाल रास (हस्तलिखित),

ग्रंथ भण्डार जैसलमेर

२४. ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र, सं०—युवाचार्य मधुकर मुनि जी

प्र०—आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, १९८१

२५. चतुर्मुख वन ऑफ दि अर्लिएस्ट अपभ्रंश ए पीक् पोइंट्स

प्र०—जनरल ऑफ दि ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, प्र० ७ अंश ३

ले०—डा० हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी, मार्च १९४८

२६. चउपन्न-महापुरिस चरियं, सं०—अमृतलाल मोहनलाल भोजक  
प्र०—प्राकृत ग्रंथ परिषद्, वाराणसी, १९६१
२७. चौपन्न महापुरुषोनां चरितो, अनु०—आचार्य हेमसागरसूरि  
प्र०—मोतीचंद मगनभाई चोकसी, बम्बई, १९६६
२८. जसहर चरित्र, ले०—कवि पुष्पदत्त, सं०—डा० पी० एल० वैद्य  
प्र०—जैन-सीरीज, कारंजा, १९३१
२९. जम्बूसामि चरित्र, ले०—वीर कवि  
सं०—डा० वी० पी० जैन, १९६७
३०. जयवाणी, सं०—युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी  
प्र०—सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, २०२६
३१. जैन महाभारत, ले०—मुनि धनराज जी
३२. जैन आगम साहित्य मतन और मीमांसा, ले०—देवेन्द्र मुनि शास्त्री  
प्र०—तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर
३३. जैन धर्म का मौलिक इतिहास—खण्ड १, २  
ले०—आचार्य हस्तिमल जी महाराज,  
प्र०—सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर
३४. जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास, ले०—प्रो० हीरालाल रं० कापड़िया  
प्र०—पन्नालाल चंदनलाल, वड़ोदा, १९६६
३५. जैन श्रीकृष्ण साहित्य विषयक लेख, ले०—महावीर कोटिया  
प्र०—जिनवाणी पत्रिका, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर
३६. जैन स्तोत्र समुच्चयम्, सं०—चतुर विजय मुनि  
प्र०—निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई
३७. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, ले०—मोहनलाल द० देसाई
३८. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, ले०—डा० गुलालचन्द चौधरी  
प्र०—पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, १९७३
३९. जैन साहित्य का इतिहास, भाग—१, २ ले०—पं० कैलाशचन्द शास्त्री  
प्र०—श्री गणेशीप्रसाद वर्णी जैन ग्रंथमाला, वाराणसी



४०. जैन साहित्य और इतिहास, ले०—नाथूराम प्रेमो  
प्र०—हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्रा० लि० बम्बई, १९५६
४१. जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास, ले०—डा० भागचन्द्र भास्कर  
प्र०—नागपुर विद्यापीठ, नागपुर, १९७७
४२. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, ले०—डा० जगदीशचन्द्र जैन  
प्र०—चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
४३. दशवैकालिकसूत्र : हरिभद्र वृत्ति  
प्र०—मनसुखलाल महावीर प्रिंटिंग वर्क्स, बम्बई
४४. द्विसन्धानम्, सं०—शिवदत्त शर्मा  
प्र०—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९२४
४५. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र,  
ले०—इयाम शंकर दीक्षित  
प्र०—मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, १९६९
४७. नाट्य दर्पणम्  
प्र०—ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा, १९४६
४८. नाममाला, प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५०
४९. नेमिदूत, सं०—म० विनयसागर  
प्र०—सुमति सदन, कोटा, २००५
५०. नेमजी और राजुल का संवाद, मंगल पाठ  
सं०—राजेन्द्र मुनि, प्र०—तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर, १९८२
५१. नेमवाणी, सं०—देवेन्द्र मुनि शास्त्री  
प्र०—तारक गुरुजैन ग्रंथालय, उदयपुर
५२. नेमि निर्वाणम्, सं०—पण्डित शिवदत्त शर्मा व काशीनाथ शर्मा  
प्र०—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३६
५३. नेमिचन्द्रिका (हस्तलिखित प्रति)  
जैन मंदिर बड़ा तेरापन्थियों का, जयपुर

५४. नेमिस्वर बेलि, ले० कवि घेल्हसुत ठाकुरसी
५५. नेमि बारह मासा, (कण्ठाभरण)
५६. नेमिस्वर रास (हस्तलिखित प्रति)  
लिपिकार—दयाराम पाण्डेय, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर
५७. नेमिनाथ निर्वाणम् (हस्तलिखित)  
जैन सिद्धान्त भवन, आरा (बिहार)
५८. नयनानन्द, सं०—एच० आर० कापडिया  
प्र०—ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बडोदा, १९३२
५९. प्रमेय कमल मार्तण्ड  
प्र०—माणिकचन्द ग्रंथमाला, बम्बई
६०. पंच पाण्डव चरित्र रास : हिंदी के अज्ञात रास काव्य  
प्र०—संग्रह प्रकाशन, जयपुर
६१. प्राचीन जैन शिलालेख संग्रह, भाग-२, सं०—मुनि जिन विजय  
प्र०—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९२१
६२. प्रद्युम्न चरित्र  
सं०—पं० चैनसुखदास व डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल  
प्र०—अतिशय क्षेत्र महावीर जी
६३. पउमसिरि चरित्र ले०—चाहिल  
सं०—डा० एच० सी० भायाणी  
प्र०—भारतीय विद्या भवन, बम्बई, वि०२००४
६४. पउम चरित्र—कवि स्वयम्भू  
सं०—डा० एच० सी० भायाणी  
प्र०—भारतीय विद्या भवन, बम्बई
६५. प्रश्न व्याकरण सूत्र, सं०—अमर मुनि जी  
प्र०—सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा
६६. प्रबन्ध कोश, सं०—मुनि जिन विजय जी  
प्र०—सिधी जैन विद्यापीठ, अहमदाबाद, १९३३

६७. प्रद्युम्न चरित्र, सं०—नाथुराम प्रेमी  
प्र०—हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर, कार्यालय, बम्बई
६८. प्राकृत साहित्य का इतिहास, ले०—जगदीशचन्द्र जैन  
प्र०—चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, १९६१
६९. पाण्डव पुराण, ले०—भट्टारक शुभचन्द्र  
सं०—प्रो० ए० एन० उपाध्ये  
प्र०—जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर, १९५४
७०. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास  
ले०—नेमिचंद शास्त्री प्र०—तारा पब्लिकेशन, वाराणसी, १९६६
७१. प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ  
सं०—डा० वासुदेव अग्रवाल
७२. पाण्डव यशो रसायन (महाभारत)  
ले०—मरुधरकेशरी मिश्रीमल जी म०  
प्र०—रघुनाथ भण्डार, सोजतसिटी
७३. बलभद्र ब्रेली, रचनाकार—कवि सालिग
७४. भगवद् गीता, गीता प्र०—प्रेस, गोरखपुर
७५. भगवान् नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ५  
ले०—मुनि चौथमल जी  
प्र०—दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर
७६. भवभावना (२ भागों में प्रकाशित)  
प्र०—ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वे० संस्था, रतलाम, १९६२
७७. भविष्यत्तकहा तथा अपभ्रंश कथा काव्य  
ले०—डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री  
प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९७०
७८. भगवान् अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण योगी एक अनुशीलन  
ले०—देवेन्द्र मुनि शास्त्री  
प्र०—तारक गुरु जैन ग्रंथालय, उदयपुर १९७१
७९. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान  
ले०—डा० हीरालाल शास्त्री  
प्र०—मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल, १९६२

८०. भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य—भाग १, २

सं०—डा० भगीरथ मिश्र व विनय मोहन शर्मा

प्र०—मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, भोपाल, १९८१

८१. महाभारत, ले०—प्रवर्तक शुक्लचंद जी म०

८२. महाभारत ले०—सूर्य मुनि जी

८३. महाभारत, प्र०—गीता प्रेस, गोरखपुर

८४. महामात्य का साहित्य मण्डल और संस्कृत साहित्य में उसकी देन

ले०—डा० भोगीलाल सांडेसरा

प्र०—जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, वाराणसी

८५. रंगसागर नेमिफागू, ले०—सोमसुंदर सूरि

८६. रङ्ग साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन

ले०—राजाराम जैन

८७. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा

ले०—अगरचंद जी नाहुटा, प्र०—राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६७

८८. राजस्थानी वेलि साहित्य

ले०—डा० नरेन्द्र भानावत

प्र०—राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

८९. राजस्थान का जैन साहित्य

प्र०—प्राकृत भारती, जयपुर, वि० २०३४

९०. राजस्थानी भाषा और साहित्य, ले०—मोतीलाल मेनारिया

९१. वस्तुपाल का विद्या मंदिर, ले०—भोगीलाल सांडेसरा

प्र०—जैन कल्चर रिसर्च सासायटी, बनारस,

हिंदू युनिवर्सिटी पत्रिका नं० १६

९२. वसन्त विलास

९३. वसुदेव हिण्डी, ले०—संघदास गणि

सं०—मुनि चतुरविजय, पुण्यविजय

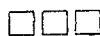
प्र०—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९३०

६४. वणिहदसाओ, सं०—पुष्पभिक्षू  
प्र०—सूत्रागम प्रकाशन समिति, गुडगांव (पंजाब)
६५. वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म एण्ड अदर माइनर सेक्ट  
ले०—डा० भण्डारकर व हेमचन्द्रराय चौधरी, पुणे
६६. वैष्णव धर्म का प्राचीन इतिहास, ले०—डा० राय चौधरी
६७. सन्तकवि रायचंदजी और उनकी रचनाएं  
प्र०—मरुधर केशरी अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, ब्यावर
६८. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान  
ले०—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री  
प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९०१
६९. समवायांग सूत्र, सं०—पं० कन्हैयालाल जी 'कमल'  
प्र०—आगम अनुयोग प्रकाशन समिति, सांडेराव, १९६६
१००. स्थानांग, सं०—पं० कन्हैयालाल जी कमल  
प्र०—आगम अनुयोग प्रकाशन समिति, सांडेराव, १९७२
१०१. संस्कृत साहित्य का इतिहास ले०—वाचस्पति गैरोला  
प्र०—चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, १९६०
१०२. सप्तसन्धान काव्य  
प्र०—जैन साहित्य वर्धक सभा, सूरत, सं० २०००
१०३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ले०—बलदेव उपाध्याय  
प्र०—शारदा मंदिर, काशी
१०४. साहित्य और सौन्दर्य, ले०—डा० फतेहसिंह  
प्र०—संस्कृति सदन, कोटा
१०५. श्रीकृष्ण चरित्र, ले०—पं० महासेन
१०६. श्रीमद् भागवत, प्र०—गीता प्रेस, गोरखपुर
१०७. हरिवंश पुराण (हस्तलिखित) ले० १७५९  
आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर
१०८. हरिवंश पुराण (हस्तलिखित) ले०—सं० १९०९  
श्री पल्लीवाल दिगम्बर जैन मंदिर, धुलियागंज, आगरा

१०६. हरिवंश पुराण (हस्तलिखित), ले०—शालिवाहन, आगरा  
 ११०. हरिभद्र के प्राकृत साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन.  
 ले०—नेमिचन्द्र शास्त्री  
 १११. हरिवंश पुराण ले०—आचार्य जिनसेन  
 सं०—पन्नालाल जैन, प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६२  
 ११२. हिंदी साहित्य का आदिकाल, ले०—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी  
 ११३. हिंदी साहित्य में राधा, ले०—द्वारका प्रसाद मिश्र  
 ११४. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास  
 ले०—डॉ० रामकुमार वर्मा  
 ११५. हिंदी साहित्य का इतिहास, ले०—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल  
 प्र०—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी  
 ११६. हिंदी जैन साहित्य परिशीलन, ले०—नेमिचंद्र शास्त्री  
 प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५६  
 ११७. हिंदी आदि और मध्यकालीन कृतियां  
 सं०—डा० गोविन्द रजनीश, प्र०—मंगल प्रकाशन, जयपुर  
 ११८. हिंदी रास काव्य, ले०—डा० हरीश  
 प्र०—मंगल प्रकाशन, जयपुर  
 ११९. हिंदी और मराठी का वैष्णव साहित्य एक तुलनात्मक अध्ययन  
 लेखक—डा० न० चि० जोगलेकर  
 प्रकाशक—जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, १९६६  
 १२०. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, ले०—डा० गणपतिचंद्र गुप्त

### पत्रिकाएं

१. अनेकान्त—दिल्ली
२. श्रमण—पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी
३. अहिंसा दर्शन—अखिल भा० अ० प्रचार संघ, बेंगलोर
४. शोधपत्रिका—वर्ष २९, अंक दो, एप्रिल-जून १९७८  
 सं० डा० देवीलाल पालीवाल और डा० देव कोठारी  
 साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर
५. जिनवाणी मामिक पत्रिका—जुलाई १९६९  
 सम्यग्ज्ञान प्रचार मण्डल, जयपुर
६. जैन हितैषी—भाग-११, अंक ७-८



नाम—राजेन्द्र मुनि

जन्म सं०—२०६०

जन्म स्थल—बडूगांव

पिता नाम—पूनमचंद डोसी

माता नाम—धाप कुंवर बाई

(महासती प्रकाशवती)

भ्राता नाम—रमेश मुनि शास्त्री

गुरु नाम—उपाचार्य देवेन्द्र मुनि जी

शिक्षा—जैन सिद्धान्ताचार्य, शास्त्री, साहित्यरत्न, साहित्य  
महोपाध्याय, एम.ए., काव्यतीर्थ

भाषा ज्ञान—प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी

सम्पादन—उत्तराध्ययन सूत्र, जीवाभिगम सूत्र, आदि

पच्चीस पुस्तकें ।

विहार स्थल—कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश,  
महाराष्ट्र, दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश,  
मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान ।

\* मिलनसार एवं मधुर प्रकृति, वक्ता, प्रेरणा से  
अनेक संस्थाओं के संस्थापक ।

\* पी-एच.डी. के लिए शोधरत ।

